श्री दादू महाविद्यालय रजत-जयन्ती ग्रन्थ



सम्पादक—

सुरजनदास स्वामी आचार्य, एम० ए०

सहसम्पादक—

केशवदास स्वामी वेदान्तशास्त्री

प्रकाशक :—

श्री दादू महाविद्यालय रजत-जयन्ती महोत्सव समिति

मोतीडूंगरी, जयपुर।

संवत् २००६

दो शब्द

पच्चीस वर्ष समाप्त होने के बाद ही सं० २००१ मे बड़े मेले के अवसर पर प्रचलित प्रथानुसार इस महा विद्यालय का भी रजतजयन्ती महोत्सव मनाने का संकल्प किया और उस समय मेले पर समागत स्नातकमंडल का एक अधिवेशन कर इसके कार्य का प्रारम्भ भी कर दिया था। उस समय इसके लिये स्नातकों से कुछ कोष भी संगृहीत कर लिया गया था, किन्तु युद्धजन्य विषम परिस्थितियों के कारण प्रत्येक वस्तु मे महार्घता आ जाने से तव इस कार्य को स्थगित कर दिया गया और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा की जाने लगी।

परन्तु वर्ष पर वर्ष बीत गये। महायुद्ध भी समाप्त हो गया। भयङ्कर अत्याचारों के सहन, देश के सुपूतों की महती आहुति और राष्ट्रविभाजन आदि महान् निष्क्रयों के बाद देश भी स्वतन्त्र हो गया। किन्तु इतने से ही देशवासियों के दुर्भाग्य का अन्त न हुआ, इतने से ही दुर्भाग्यमूर्ति निर्ऋतिदेवी तृप्त न हुई। उसने स्वतन्त्रता के निष्क्रयरूप मे लाखों देशवासियों के अत्युष्ण शोणित से अपनी पिपासा शान्त करने की भी चेष्टा की और देश के लाखों मनुष्य उसकी बलि रूप में काल के कराल चक्र में सदा के लिए चूर्णित कर दिये गये, मातायें पुत्रहीना बन गईं, रमणियां विधवा हो गईं और कुलाङ्गनाओं को अपना सतीत्व नष्ट करना पड़ा। देशविभाजन के कारण देश में विस्थापितों की भी भयावह समस्या पैदा हुई। इसी तरह पाकिस्तान-निर्माण तथा अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियो के कारण देश को अन्य अनेक समस्याओं मे उलझना पड़ा। उन समस्याओं के समाधान करने में,नवनिर्मित राज्य को सुदृढ़ करने में तथा देशवासियों के जीवनस्तर को उठाने मे देश का धन अत्यधिक व्यय हुआ। साथ ही प्रकृति ने भी 'दैवोऽपि दुर्बलघातक:' इस उक्ति के अनुसार अपना कोप प्रदर्शित किया। कही बाढ, कहीं भूकम्प, कही अनावृष्टि और कही अतिवृष्टि तथा कहीं ईतियों के कारण देश की अन्न समस्या अति भयंकर हो गई। इस कारण व्यवहारोपयोगी वस्तुओ मे महार्घता पहिले से भी अधिक बढ़ी और जिस अनुकूल समय की प्रतीक्षा की जा रही थी, उसके आने की अपेक्षा प्रतिकूल ही समय आता गया और वह प्रतिकूलता भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। अत: अन्त मे कुछ स्नातकों के, जिनमें श्री भूरारामजी देवास निवासी का नाम मुख्य है, कहन से दो वर्ष पूर्व फिर इस कार्य को पूर्ण करने का विचार किया गया, और निश्चय किया गया कि स्वर्गीय पूज्यपाद प्रात:स्मरणीय परमहंस श्री सेवारामजी महाराज के जीवनकाल नें ही इस कार्य को पूर्ण कर लिया जाय। किन्तु 'दैवी विचित्रा गति:' इस उक्ति के अनुसार कार्य सङ्कल्प से विपरीत ही हुआ। कुछ अप्रत्याशित आकस्मिक विघ्नों के कारण व कुछ मेरी परिस्थितियों व शिथिलता के कारण यह कार्य समय पर पूरा नही हो सका और पूज्यपाद वावाजी श्री सेवारामजी महाराज का अकस्मात् कलकत्ते में स्वर्गवास हो गया। वावाजी के शरीर व स्वास्थ्य को देखते हुए इतना जल्दी उनका स्वर्गवास हो -

जायेगा यह अनुमान भी नहीं होता था, अन्यथा कुछ शीघ्रता भी की जाती। किंतु नियति शक्ति के समक्ष मानव का कुछ वश नही चलता अत जो कुछ उसे अभीष्ट था वही हुआ और हमारे विचार धरे ही रह गए । उनके जीवित रहते जो सहायता व सहयोग इस कार्य में हमें प्राप्त होता उसका अब सर्वथा अभाव हो गया । कार्यकर्त्ताओ में भी उस समय जो उमग व उत्साह था वह समाप्त हो गया । और इस कार्य का सौन्दय व महत्त्वही नष्ट हो गया । अब केवल प्रचलित परम्परा के अनुसार इस कार्य को पूर्ण करना अवशेष रहा है ।

इस जयन्ती के आयोजन का विचार करते समय यह भी निश्चय किया गया था कि इस अवसर पर एक जयन्ती-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय जिसमें सप्रदाय का सक्षिप्त इतिहास, महाविद्यालय का इतिहास, विद्यालय के विषय में विभिन्न सज्जनो से प्राप्त समतियो का प्रकाशन एव कार्यकर्त्ताओ व स्नातकों का सक्षिप्त परिचय रहे। तदनुसार इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है । इस ग्रन्थ में पूर्व निश्चयानुसार ५ खण्ड रखे गये है । प्रथम खड में दादू सम्प्रदाय का सक्षिप्त इतिहास है, द्वितीय में श्री दादू महा,विद्यालय व छात्रावास का इतिहास तथा अध्यापको व कार्यकर्त्ताओ का सक्षिप्त परिचय हैं । तृतीय में विभिन्न विद्वानो द्वारा प्राप्त सम्मतियो का प्रकाशन है । चतुर्थ खण्ड में स्नातक-परिचय है । प्राय शास्त्री व आचार्य परीक्षोत्तीर्ण छात्रो का तथा कतिपय मध्यमा परीक्षोत्तीर्ण छात्रो का सक्षिप्त परिचय इसमें दिया गया है । किन्तु इस परिचय खण्ड में शास्त्री व आचार्य परीक्षोत्तीण समस्त स्नातकों का परिचय नही दिया जा सका हैं । क्योकि प्रयास करने पर भी कितने ही स्नातको का परिचय हमें प्राप्त नही हुआ । इस खण्ड के अन्तमें विभिन्न परीक्षोत्तीण स्नातको की सूची भी हैं । अन्तिम व पचम निबन्धखण्ड है । इसमें स्नातको द्वारा विरचित पाच शास्त्रीय निबन्धो का सग्रह है ।

इस खण्ड के प्रकाशित करने का विचार देरी में होने से, अर्थ की न्यूनता से तथा ग्रन्थ का कलेवर आशा से अधिक बढ जाने से यह निबन्धखण्ड- उपादेय होते हुए भी अपूर्ण रखना पड़ा है ।

इन पाचो खण्डो के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में सस्थापक, सरक्षक, सचालक, अध्यापक व कार्यकर्त्ताओ का सक्षिप्त सामान्य परिचय भी दिया गया है ।

द्वितीय खण्ड के अन्त में इस सस्था के प्राणभूत गुरुवय त्यागमूर्ति श्री स्वामी मगलदासजी महाराज का सक्षिप्त परिचय भी दिया गया हैं । उस परिचय का इस ग्रथमें देना यद्यपि उनकी इच्छा के सर्वथा विरुद्ध है, तथापि सबका परिचय देते हुए उनके परिचय का इस ग्रन्थ में न देना सर्वथा असगत था व उसके विना ग्रथ तथा विद्यालय का परिचय भी अपूर्ण ही रहता । इसलिए उनकी इच्छा के विरुद्ध भी यह धृष्टता की गई है । पूर्ण जानकारी के विना सभवत इस परिचय में त्रुटिया भी रह गई ह, क्योंकि उनकी पूरी जानकारी उन्ही से हो सकती थी और इस विषय में उनसे पूछना उनकी इच्छा के विरुद्ध काय होने से सम्भव न था । ऐसी परिस्थिति में उसमें जो त्रुटिया रह गई हैं उनके लिए तथा उनकी इच्छा के विरुद्ध परिचय प्रकाशन सम्बन्धी अपराध के लिए म उनसे करबद्ध प्रार्थना करते हुए क्षमाप्रार्थना करता हू । और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे तथा स्नातको के इस

अपराध व धृष्टता को अब तक जीवन में घटित अन्य अपराधों व धृष्टताओं के समान ही वे क्षमा करेंगे। क्योंकि—

'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'।

इस ग्रंथमें संस्थापक, संचालक, अध्यापको व कार्य-कर्त्ताओं के तथा इस महाविद्यालय में चलने वाली विविध प्रवृत्तियों को बतलाने वाले आवश्यक चित्रों का भी समावेश है। स्नातक परिचय मे कितने ही स्नातकों के भी चित्र दिये गए है। इस तरह इस ग्रंथ को जयन्ती-ग्रंथ के विचार से उपयोगी व पूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास कहां तक सफल हुआ है इसका निर्णय पाठक स्वयं करे।

इस अवसर पर इस ग्रंथके प्रकाशित करने का उद्देश्य उस महान् कर्मयोगी की एक कृति का निदर्शन जनता के सामने उपस्थित करना है जिसने सर्वथा अनासक्त रहकर 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि' इस गीता सिद्धान्त को अपनाते हुए इस विद्यालय रूपी वृक्ष को एक छोटे सेपौधे से बढाकर इतना पल्लवित, पुष्पित व फलित किया है। साथ ही भविष्य के लिये समाज, विद्यालय तथा उससे सम्बन्धित अध्यापकों, कार्य-कर्त्ताओं व विद्यार्थियों का परिचय उपस्थित कर संस्था की ऐतिहासिक सामग्री उपस्थित करना भी इसका उद्देश्य है।

यह महाविद्यालय व छात्रावास जिस कर्मयोगी की अनासक्त कृति व लोकसंग्रह-बुद्धि का परिणत फल है यह ग्रन्थ भी उसी महापुरुष की कृति का परिणाम है। आधे से अधिक ग्रन्थ तो उनने स्वयं लिखा है और शेष भी उन्हीं की कृपा का फल है। इस कार्य के लिए मै अपनी तरफ से तथा स्नातकों की तरफ से उनके प्रति विनयपूर्वक हार्दिक श्रद्धा-प्रसूनाञ्जलि-समर्पण के अतिरिक्त समर्पित ही क्या कर सकता हूं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन मे शीघ्रतावश, प्रमादवश व प्रेस की असावधानी के कारण सम्पादन-सम्बन्धी जो त्रुटियां रह गई हैं उनके लिए अब केवल क्षमायाचना ही की जा सकती है।

इसके सम्पादन कार्य में मुझे मेरे परम मित्र व-सतीर्थ्य श्री केशवदासजी वेदान्त शास्त्री तथा अन्य स्नातकों का जो अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है इसके लिए मै उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

विनीत—

सुरजनदास स्वामी आचार्य, एम०ए०
मंत्री
श्री दा०म०वि० रजत-जयन्ती समिति

जयपुर
शिवरात्रि २०००

इतिहास खण्ड

{ १ }

श्री दादूसम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय

प्रारम्भ

विद्यालय के रजतजयन्तीमहोत्सवग्रन्थ में विद्यालयसम्बन्धी क्रिया-कलाप का दिग्दर्शन कराना ही उचित है। उसके उत्सवग्रन्थ में अन्य विषय का समावेश सङ्गति-परक नहीं समझा जा सकता, फिर भी उसके विवरण में इस लेख का समावेश किया जा रहा है उसका कुछ विशेष कारण है।

विद्यालय कोई सामाजिक दृष्टिकोण की संकुचित संस्था नहीं है, उसमें संस्कृतशिक्षाप्राप्तिकी आकांक्षा रखने वाला कोई भी व्यक्ति प्रवेश पा सकता है। अबतक यही नियम व्यवहार में बराबर आता रहा है। बिना किसी भेदभावके सभी ने इस संस्थामें समान रूप से ज्ञानोपार्जन किया है। पर यह सर्वविदित है कि इसकी स्थापना तथा इसके पोषणका श्रेय दादूपन्थी सम्प्रदायको ही अन्योंकी अपेक्षा अधिक है। आरम्भसे अब तक इसी सम्प्रदायके व्यक्तियोंने इसका अधिक भार वहन किया है।

विद्यालय ने जिसके विचारोंसे जन्म पाया तथा जिसकी सहायता व सेवा से अब तक अपना जीवन-यापन किया, उस मूल आधार दादूपन्थी सम्प्रदायका विवरण विद्यालयके विवरणमें आए तो कुछ अनुचित नहीं है। अपितु कुछ तटस्थ महानुभावों का तो यह विशेष सुझाव है कि विद्यालयके विवरणमें दादूसम्प्रदायका संक्षिप्त परिचय अवश्य दिया जाय ताकि सर्वसाधारण उक्त सम्प्रदायकी सामान्य जानकारी प्राप्त कर सके।

सम्वत् २००० में दादूजी महाराजके अवतरण को चारसौ वर्ष हुए थे। उस समय एक बृहत् आयोजन "दादूचतुःशताब्दीमहोत्सव" के नामसे सम्पन्न किया गया था। उस उत्सवके समय ही शताब्दीमहोत्सवग्रन्थके प्रकाशनका भी विचार किया गयाथा। पर निबन्धोंके समय पर न आने तथा आवश्यक अनेक विषयोंपर निबन्ध तैयार न होनेसे यह कार्य उस समय परिपूर्ण न होसका। यह लेख उसी निबन्ध-मालाका एक अंश है। शताब्दी-ग्रन्थमें देनेके लिये ही यह लिखा गया था। इसीसे इसमें कुछ विवरण आवश्यकता से भी अधिक संक्षिप्त किये गए हैं, क्योंकि उनपर

स्वतन्त्र लेख लिखवानेका निश्चय था। वह प्रकाशन भी अवश्य होना है, इस लिये उन विषयोंका इसमे विस्तार नही किया गया है।

सामान्य जानकारी के विचारसे इसमे सभी अशो पर दृष्टिपात किया गया है। परिचयका बहुतसा भाग इसमे नही आ पाया है, तदर्थ कुछ सूचियां इसमें सम्मिलित करदी गई हैं। जिससे सम्प्रदायकी बहुमुखी स्थितिका सामान्य परिचय प्राप्त होसके। आशा है विज्ञ जन इसको इसी रूपमें ग्रहण करनेकी कृपा करेंगे।

१—स्वामी श्री दादूजी का अवतरण

दादूजी के जन्म तथा जातिके बारे मे इस समय तक जो कुछ विभिन्न लेखकों द्वारा लिखा गया है, वह एक दूसरे से पर्याप्त भिन्नता रखता है। इसका प्रधान कारण है—लेखकोंकी अति न्यून जानकारी। इस बारे मे सबसे पहिले जो कुछ लिखा गया है, वह अंग्रेज लेखको द्वारा लिखित है।

उनकी जानकारी मे सबसे पहली कठिनाई थी भाषा की, दूसरी कठिनाई थी उस विषय को जानने की। अंग्रेज जाति के होने से अपने देश के व्यक्तियो के साथ उनका घनिष्ठ परिचय नहीं हो सकता। फिर सामग्री जिनके पास मिल सकती उन तक वे पहुचे भी नहो। इससे उनन जो कुछ थोडी बहुत जानकारी किन्ही सुने सुनाये व्यक्तियों से प्राप्त की, उसी के आधार पर उन्होंने इस विषय पर अपना मत प्रकट किया। अत वह सर्वथा ठीक कैसे हो सकता था? अंग्रेज लेखकों के लेख मे यह कमी सभी मे है। क्योंकि पीछे लिखने वालो ने पहले लिखने वालो का आश्रय लिया। इस तरह डाक्टर विलसन्, फर्यूहर, टयोमी, ग्रियर्सन, जी आर सिडन्स्, क्रुक आदि का विवेचन भ्रांतिरहित नहीं है।

अंग्रेजी के बाद हिन्दी लेखकों का नम्बर है। उनमे भी अनुसन्धान की कमी के कारण वैसे ही दोष आगये हैं जैसे अंग्रेजी लेखकों में हैं। अनुसन्धान से लिखने वालो में तीन व्यक्ति शेष रह जाते है—डाक्टर ताराचन्द गोयल, राय साहब चन्द्रिकाप्रसाद जी त्रिपाठी, आचार्य क्षितिमोहन सेन। इन तीनो मे राय साहब का वही मत है जो सम्प्रदाय में अब तक परम्परा से चला आरहा है। आचार्य सेन तथा गोयल महोदय का मत इससे भिन्न है।

दादूजी महाराज का पूरा जीवन-चरित्र ऐतिहासिक प्रकाशन मे प्रकाशित होगा जिसका कि प्रयास चल रहा है। इसलिये मैं यहा उसका विशद विवेचन

नहीं कर रहा हूँ। यहां दादूजी महाराज के जन्म व जाति का वैसा ही उल्लेख किया जाता है जैसा कि इस सम्प्रदाय में आरम्भ से अब तक माना जा रहा है।

सम्प्रदाय के मत में "दादूजी" साबरमती नदी में बहते हुए अहमदाबाद के नागर ब्राह्मण लोदीरामजी को सम्बत् १६०० की फाल्गुन सुदी ८ को प्रातःकाल प्राप्त हुये थे। उनके कोई संतान नहीं थी। इसी तरह सन्तान मिलने का महात्मा का उन्हें निर्देश था। उन्होंने इस नदीप्रवाह में प्राप्त हुए शिशु को अपना पुत्र माना, और पुत्रस्नेह से उसका पालन पोषण करना आरम्भ किया। ग्यारह वर्ष की आयु तक दादूजी का बाल्यकाल यहीं व्यतीत हुआ। जातिप्रथानुसार लोदीरामजी ने इनकी शिक्षा आदि का भी प्रबन्ध किया। ग्यारहवें वर्ष में इन्हें एक दिन कांकरिया तालाव पर अपने साथियों के साथ खेलते हुए एक महात्मा मिले। महात्मा अत्यन्त वृद्ध थे। उनको देख और बच्चे दूर भाग गये किन्तु दादूजी उनके पास गये, नमस्कार किया। वृद्ध महात्माने उपदेश दिया और चले गये।

२—साधना

दादूजी ने उस उपदेश को हृदयंगम कर अपने जीवन को सफल बनाने का ध्येय निश्चित कर लिया। वे कुछ दिन पश्चात् ही घर-बार त्याग चल दिये। साधना करनेके लिये अहमदाबादसे पेटलाद आये। वहां उन्होंने उनके सहयोगी माणकदासजी व ज्ञानदासजी को अपना ध्येय बतला उसी पथ में प्रवृत्त होने की प्रेरणा की। वहाँ से चलकर आबू, सिरोही होते हुए कल्याणपुर (करडाला) की पहाड़ी पर पहुंचे। यह स्थान इस समय जोधपुर स्टेट में है। मकराणे से पर्वतसर तक स्टेट की लाइन गई है। पर्वतसर से तीन कोश पर यह ग्राम है। यहां दादूजी ने छः वर्ष तक आराधना की थी। छः वर्ष के पश्चात् अजमेर, भीलवाड़ा, चित्तौड़ होकर करौली पहुँचे। यहां से टोडा रायगढ़ होते हुए सांभर आये। इस समय दादूजी की अवस्था करीब १६ वर्ष की थी। सांभर में आने के पश्चात् दादूजी ने साधना में छः वर्ष और विताये। पच्चीस वर्ष की आयु होने पर अपने अनुभव को व्यक्त करना आरम्भ किया।

३—उपदेश

दादूजी ने अपनी साधना में समत्व योग को सिद्ध किया था। शुद्ध चैतन्य ही उनका उपास्य देव था। आत्मनिरीक्षण द्वारा ही उन्हें आत्मानुभूति की प्राप्ति हुई थी। आत्मधर्म व आत्मसंबंध के सिवाय और बातें उनकी दृष्टि में गौण थीं।

दादूजी ने इसीलिये धर्मकी ऊपरी तह–लोकाचार को महत्त्व नही दिया। उन्होंने उस नित्य, सत्य, शाश्वत धर्म को ही धर्म माना। उसी का उपदेश आरम्भ किया। जाति, वर्ण और धर्म का केवल औपचारिक भाग जिससे भेदभाव की वृद्धि के सिवाय और कोई फल नही निकलता, बचने की सिफारिश की। कल्पित जाति, वर्ण व धर्मविशेष की अनुपादेयता बतानी आरम्भ की। दादूजी की इस उपदेशसरणि का मुख्य हेतु आत्मानुभूति तो था ही, साथ ही उन पर कुछ प्रभाव समय व परिस्थिति का भी पडा था।

दादूजी के इन विचारोंमें पूर्ववर्ती महात्मा कवीरजी की विचारधाराका भी पर्याप्त प्रभाव था। दादूजी ने इस बात को अपनी वाणी में कई स्थानों पर व्यक्त किया है। निर्गुण उपासना में अपना दृढ विश्वास तथा लययोग की साधना संभव है, उन्होंने कवीरजी की विचारधारा से ही प्राप्त की हो। लय तथा सहज अवस्था की बाबत दादूजी ने अपने प्रवचनों में अनेक बार उल्लेख किया है। उपासना में निर्गुण आधार की प्रधानता तो उनके कथनमें स्थान स्थान पर व्यक्त होती है। वाणी के प्रत्येक प्रकरण के आरम्भ में उनकी यह साखी "दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत" दोहराई गई है। दूसरी साखी "परं ब्रह्म परात्परं सो मम देव निरंजनम्" भी इस पक्ष का समर्थन करती है। भजन में भी उन्होंने "सोई देव पूजों जे टाकी नहिं घडिया" के द्वारा उसी का पोषण किया है। सुमिरण के अंग में इसका विशद निरूपण है। सुमिरण के अङ्ग की पहिली साखी यह है–

एकै अक्षर पीव का, सोई सत करि जाणि।
राम नाम सतगुरु कह्या, दादू सो परमाणि॥ १॥

यहा निर्गुण चर्तन के वाचक का निरूपण है। व्यापक परमेश्वर के ध्यान के लिये उसका वाचक शब्द कोई होना चाहिये, उसका ही दादूजी ने ऊपर की साखी में संकेत किया है। उनका उपास्य निर्गुण राम था। रामशब्द का प्रयोग उन्होंने प्रणव की तरह वाचक व लक्षक के रूपमें किया है।

निर्गुणोपासक को निर्गुण में मन पहुँचाने के लिये मन स्थैर्य की अपेक्षा है और वह मन स्थैर्य बिना किसी अवलम्बन के हो नही सकता। मन की स्थिरता के लिये तो किसी न किसी उपास्य के स्मरण की आवश्यकता रहती है। जैसा कि दादूजी ने स्वयं मनके अङ्ग में लिखा है—

बिन अवलम्बन क्यों रहै, मन चञ्चल चलि जाइ ।
रिथर मनवा तब ही रहै, सुमिरन सेती लाइ ॥

सुमिरन निर्गुणोपासना में निर्गुण के वाचक नाम के रटने के अतिरिक्त नहीं होता। वह नाम चाहे ओंकार हो या राम हो या कृष्ण हो या और कोई हो। जैसा कि निम्न साखियों में कहा गया है—

दादू नीका नाम है, तीन लोक तत सार ।
रात दिवस रटबो करै, रे मन इहै विचार ॥
दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त ।
चित आवै सो लीजिये, यों साधू सुमिरैं सन्त ॥

४—अतीत कालकी विचारधारा

दादूजीने जिस समय जन्म लिया था वह सत्रहवीं शताब्दी थी। इससे पहिले सोलहवीं शताब्दी पूरी हुई थी। भारतवर्षके क्षितिज पर ये दो शताब्दियाँ अपनी अनेक विशेषताओंको लेकर चमकती थीं। इन दो शताब्दियों ने भारतीय मानव-समाज को भिन्न क्षेत्रों के अग्रणी अनेक महान् व्यक्ति प्रदान किये। धार्मिक क्षेत्र में भी आचार्य रामानन्द, सन्त कबीर व गुरु नानक ने क्रान्ति पैदा करदी थी।

धर्म पर तथा ईश्वरकी उपासना पर जातिविशेष के अधिकार की परिधि टूटनी आरम्भ होगई थी। रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षित होकर भी रामानन्दजी ने साम्प्रदायिक घेरे को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कबीर, नामदेव, रैदास को दीक्षा दी। गुरु नानक ने उन की पक्षपातरहित पद्धति की ताईद की। नवयुग का भानु भारतीय धर्म-भूमि पर उदय हुआ। रामानन्दजी का यह कदम प्रचलित धर्मशैली का विद्रोह था। सङ्घर्ष होना स्वाभाविक था। कबीर, नामदेव, रैदास को दबाने के लिये, प्रतिहिंसा जागृत हुई; पर मिथ्या कमजोरी से सत्य की ताकत दब नहीं सकती, रामानन्दजी का प्रवाह वह चला। कबीर ने उस भावधारा को अत्यन्त बल दिया। उस ने प्रबलता से उन झूठे बन्धनों का सामना किया जिनसे जकड़ा हुआ धर्म दिनदिन निःसत्व होता जाता था। कबीर की विद्रोहवाणी में सचाई की तीखी धार थी। उसने धर्मको आवृत्त करने वाले बन्धनों को काटना आरम्भ किया। इस तरह कबीर, नामदेव, रैदास, नानक आदि महापुरुषों की जगाई हुई ज्योति दिनों दिन प्रकाशमान होती जाती थी।

उधर तुलसी, सूर, मीराँ का वह प्रेमभरा मधुर स्वर गुञ्जारित होरहा था। दादू उस सन्धिकालमें अवतरित हुए थे जब कि अन्धकार और प्रकाशका द्वन्द्व चल रहा था व प्रेम और क्षुद्रता में संघर्ष चल रहा था। इस सामयिक प्रभावसे महात्मा दादूजी की आत्मा कैसे बच सकती थी, जब उनको भी वही तथ्य, जिससे इसी प्रभावकी उत्पत्ति होती है अनुभवमें प्राप्त हुआ था।

दादूजीने अपने पूर्ववर्ती महात्मा नानक, कबीर, रैदास, नामदेव का अनुमोदन किया। वे तत्परता से उस सिद्धान्तको जिससे मानव मानवके भेद का निवारण होता है, व्यवहारमें व्यापक बनानेके लिये लग गये। वे अब केवल साधना में ही सब समय नहीं लगाते थे। साधना के साथ प्राप्त अनुभव का उपदेश भी उनने आरम्भ कर दिया था। उपदेशमें जाति, वर्ण, व धर्म के अनुचित पक्षसे उत्पन्न होने वाली घृणा व ऊँच-नीचकी भावना से बचने की प्रधानता थी। धर्म मनुष्के कल्याणके लिये है। यदि धर्ममें ही हम एक दूसरेको नीच समझें व धर्मके कारण ही हम एक दूसरेको मार गिरानेको उद्यत हों, तो उस धर्मसे हमारा क्या कल्याण होगा? धर्मकी यह स्थिति हमारे समाज को कितना छिन्न भिन्न बनाती है। यदि इसी को धर्म माना जाय, इसी को धर्म कहा जाय तो इससे अधिक धर्म की निन्दा कराने वाला कौन होगा? धर्म का यह स्वरूप कभी कल्याण देने वाला नहीं बन सकता। महात्मा दादूजी ने इस तथ्य को तीव्रता के साथ कहना आरम्भ किया। धर्म से हिन्दू और धर्म से मुसलमान होने की बात उनकी समझ में कैसे बैठती, परमेश्वर को (शाश्वत सत्य को) राम और खुदा की आकृति में ही अवरुद्ध कर देना दादूजी जैसे महात्मा को कैसे सह्य होता? उन्होंने इन कल्पनाओं को दूर करने का प्रबल प्रयास आरंभ किया।

५—संघर्ष

धर्म का आश्रय लेकर अपनी स्वार्थसिद्धि को पूरा करने वाले प्रेमी या धर्म के ठेकेदार दादूजी के उपर्युक्त ढंग को कैसे ठीक समझते? एक साधारण स्थिति का व्यक्ति इस तरह धर्म पर नुक्ताचीनी आरभ करे और लोगों को उससे छुटकारा पाने का उपदेश दे यह सहन करना उनके लिये कठिन बात थी। दोनों ही धर्मों के व्यक्ति जो धर्म के ऊपरी आवरण के बल पर ही अपना जीवन चलाते थे, दादूजी की इस प्रेरणा से उद्विग्न हो उठे।

उनने दादूजी को दबाने के लिये अपनी शक्ति का प्रयोग किया। डराने धमकाने से काम न चला तो मार पीट की नौबत आई। उससे भी काम नहीं बना।

दादूजी उनकी इन चेष्टाओं से नहीं घबराये, वे और भी तीव्रता से अपने विचारों को प्रकट करने लगे। उन्होंने अपने निश्चित सिद्धान्तों पर अधिक जोर देना आरंभ किया। सांभर उस समय मुगलों के साम्राज्य में था। धर्म के विषय में काजी ही प्रधान, चीफ जज या न्यायाध्यक्ष होता था। दादूजी ने हिन्दू तथा इस्लामी धर्म की उन बातों का, जो मजहबीपन से अपनाई गईं थीं, व्यर्थता दिखाना आरम्भ कर रक्खा था। मस्जिद, बांग, रोजा, नमाज, कुर्बानी आदि की, समालोचना काजी जी कैसे पसन्द करते ? आरती, पूजा, पाठ, मन्दिर के घण्टे घड़ियाल, बलिदान का खण्डन पुजारी कैसे सहन करते ? दादूजी दोनों सम्प्रदाय के धर्माधिपतियों के कोपभाजन हुये। उन्हें नाना प्रकार से कष्ट पहुँचाने का कार्य आरम्भ किया गया। नगर में हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों के व्यक्तियों को उनके पास जाने से रोका गया। पञ्चायतियों की तरफ से जातीय दण्ड नियत किये गये, बदमाश गुण्डों से उनको ठीक कराने की बातें सोची गईं, मदोन्मत्त हाथी से उन्हें कुचलवा देने का प्रयत्न किया गया। इन सब यत्नों से काम न बना तब उन्हें भाकसी (कैदखाने की कालकोठरी) में बन्द कर दिया गया। अत्याचारियों की इच्छा फिर भी पूरी नहीं हुई। दादूजी उनके वश में नहीं आये। उन्होंने अपने रवैये को नहीं बदला। असत्य की सत्य से हार हुई। निर्दोष सच्चे महात्मा पर अत्याचार कभी सफल नहीं हो सकता। अत्याचार के कारण जनता में उनका और भी महत्व बढ गया। धर्मान्ध अत्याचारियों के अत्याचार ने दादूजी की महत्ता को फैलाने में सफल विज्ञापन का कार्य किया। लोग दादूजी की ओर और भी आकर्षित हुए। उनकी बातों पर जनता का अधिक ध्यान जाने लगा। जितनी अधिक चेष्टा दादूजी को दबाने की की गई उतनी ही अधिक लोगों की श्रद्धा दादूजी के वाक्यों में बढ़ी। धूल का कोट आखिर कहां तक ठहरता ? झूठ आखिर सत्य के सामने कहां तक टिक सकता ? अधिकारियों का, नकली धार्मिकों का प्रयास आपसे आप मन्द पड़ने लगा। दादूजी अपनी विचारदृढ़ता से विरोधियों की बाधाओं को पार कर गये। नदी की तीव्र धारा रेतीले किनारों को ही काटा करती है, पहाड़ की स्थिर चट्टानों पर उसका कोई असर नहीं होता। दादूजी अपनी विचारधारा के साथ आगे बढ़ते गये। जिज्ञासुजन तथा साधक शिष्यों का समूह अधिकाधिक मात्रा में उन की सेवा में आने लगा। उनका सांभर का निवास पांच छः वर्ष तक इसी रूप में चला।

६—शिष्यनिर्माण व आमेरप्रयाण

सम्भव है दादूजी की ख्याति इतनी शीघ्र इस रूप में नहीं होती, पर सांभर के संघर्ष से उनकी प्रसिद्धि दूर दूर तक बहुत जल्दी फैल गई। सुख शान्ति के इच्छुक वास्तविक मार्ग की चाह वाले व्यक्ति दादूजी के पास आने लगे। उनको उनके उपदेश से शान्ति प्राप्त होने लगी। अनेक विरक्तिप्रधान-प्रवृत्तिवाले व्यक्ति दादूजी का शिष्यत्व चाहने लगे।

संवत् १६२६ में सबसे पहल बड़े सुन्दरदासजी महाराज उनके शिष्य हुये। परम्परागत कथानक है कि वडे सुन्दरदासजी जिनका पूर्व नाम भीमासिंहजी था, बीकानेर राज्य के राजकुटुम्बी थे, वे बादशाह की तरफ से काबुल की ओर युद्ध करने गये थे, पीछे से किसी ने उनकी पत्नी को उनकी मृत्यु का झूठा सन्देश दिया, उनकी पतिव्रता पत्नी ने अपना शरीर परित्याग कर दिया, इधर युद्ध से लौटकर भीमासिंहजी देहली आये। वहां से बीकानेर आते हुए मथुरा में उन्हें अपनी पत्नी के सती होने के समाचार मिला। उस समाचार से उनको अत्यन्त विरक्ति हुई, और वहीं उनने गृहस्थ का परित्याग कर ईश्वरचिन्तन में मन लगाने का निश्चय किया। संयोगवश उसी समय उन्हें दादूजी के समाचार मिले और वे साभर आकर महाराज के शिष्य बन गये। जब ये साभर आये उस समय वे राजसी क्षत्रिय भेष में थे। दादूजी किसी के भेष आदि में परिवर्तन कराने के पक्षपाती नहीं थे। सुन्दरदासजी ने उसी भेष में दादूजी से उपदेश ग्रहण किया, कुछ समय साथ रहने के बाद वे घाटड़े के पहाडी प्रदेश में चले गये, जो अलवर राज्य में है। वहीं वे अन्त तक ईश्वर चिन्तन में लगे रहे। सुन्दरदासजी के बाद बखना जी, टीला जी, जग्गाजी, बनवारीदासजी, मस्तदासजी हरिदासजी, मासोजी, घडसीदासजी, जगन्नाथजी, प्रयागदासजी मोहनजी, माधोदासजी आदि अनेक शिष्यों ने साभर में महाराज से उपदेश ग्रहण किया, साभर के परित्याग के समय शिष्यों की सख्या ५० तक पहुँच गई थी, ये वे शिष्य थे जो एकान्ततः इनके सिद्धान्तों को स्वीकार कर उसी पर चलने को दृढ़प्रतिज्ञ थे। वैसे सत्संगियों की सख्या न मालूम कितने तक पहुँची होगी।

संवत् १६१९ से १६३१ तक महाराज ने साभर में निवास किया था, साभर में रहने के समय की एक किम्वदन्ती है कि इनके पिता लोदीरामजी के भाई आनन्दी

रामजी नागर जो कि दादूजी के चचा लगते थे सम्वत् १६२६ में जब पुष्कर-स्नान को आये तब दादूजी से सांभर आकर मिले थे।

इस तरह एक युग सांभर में व्यतीत कर महाराजा ने सं० १६३२ में आमेर के लिये प्रस्थान किया। आमेर में उस समय महाराजा भगवन्तदासजी राजा थे। ये मानसिंहजी के पिता थे। दादूजीका आगे जाकर इनके साथ बहुत प्रेम हो गया था। दादूजी महाराज अपने कुछ शिष्यों के साथ आमेर पहुँचे और मैदान में आसन लगाकर ईश्वरचिन्तन व उपदेशकार्य में संलग्न हो गये। जिस जगह इस समय दलाराम का बगीचा है उससे कुछ दूर जहां इस समय दादूद्वारा बना हुआ वही उनकी आमेर की तपोभूमि है।

आरम्भ में सांभर की तरह यहां भी दादूजी का विरोध होना स्वाभाविक था। उनके हिन्दू मुसलमान का रत्ती भर भेदभाव नहीं था। बखनाजी आदि मुसलमान भी उनके शिष्य थे। उनका व्यवहार उभय जातियों के साथ एक-सा था। जातिवाद की भावना में उलझी हुई जनता इस बात से चमके बिना कैसे रहती? कुछ दिन खींचातान चलती रही, लोग दूर दूर रहे। धीरे धीरे मनुष्यों का आगमन आरम्भ हुआ और महाराज की उग्र तपश्चर्या व मानवप्रेम को देख लोगों की भ्रान्ति दूर हो गई। सांभर की तरह यहां भी साधकों का समूह जमा होने लगा।

रज्जबजी मोहनजी मेवाड़ा, मोहनजी दफ्तरी मोहनजी जोगी, जगजीवन जी आदि प्रसिद्ध शिष्य आमेर में ही महाराज के शिष्य हुए। महाराज दादूजी ने यहां भी अपनी साधना तथा उपदेश का क्रम पूर्ववत् जारी रखा। समय समय पर जिज्ञासुओं के प्रश्नों का वे पद्यमय उत्तर प्रदान किया करते थे। उनके संग्रह करने का काम मोहनजी दफ्तरी ने आरंभ किया। *इनकी दफतरी संज्ञा शायद इसी से पड़ी है कि ये महाराज के वचनों को लिखने तथा संग्रह करने का काम करते थे।* दादूजी महाराज साधना में शायद प्रार्थना का भी स्थान रखते थे। उनकी वाणी के बहुत से पद्य-जो भिन्न-२ रागों में गाये जाते हैं इसी रूप के हैं। विनती का अंग तो एकमात्र प्रार्थनापरक है।

इस तरह उपदेश और साधना के साथ-साथ महाराज की वाणी की रचना भी होने लगी। आमेर राजधानी थी। राजा का सम्बन्ध बादशाह के साथ था। उधर साँभर के काजियों द्वारा, इधर राजा के सहयोगियों द्वारा बादशाह तक भी दादूजी की चर्चा जा पहुंची। बादशाह अकबर अत्यन्त प्रबुद्ध पुरुष था। उसकी

प्रवृत्ति असाधारण पुरुषों का सहवास करने की रहती थी।

दादूजी की ख्याति सुन बादशाह ने उनसे मिलने का विचार किया। संयोगवश राजा भगवन्तदासजी उस समय देहली गये हुए थे। बादशाह ने राजा जी से दादूजी को बुलाने का आग्रह किया। राजाजी द्विविधा में पड गये। इधर तो बादशाह का आग्रह, उधर महात्मा की इच्छा। क्या पता दादूजी आवें या न आवें? वे किसी की चाह के नौकर थोड़े ही थे? उन्हें क्या जरूरत पडी बादशाह के पास जाने की? भगवन्तदासजी उदास होकर विचारमग्न हो गये। उनके सूजाजी खीची एक कृपापात्र भृत्य थे। उन्होंने महाराज को इस तरह उदास देख कारण पूछा। राजा ने बादशाह का निर्देश सुनाया। सूजाजी ने राजा को दादूजी महाराज को लाने का आश्वासन दिया। सूजाजी सीकर से आमेर आये और महाराज से मिले और उनसे सीकरी पधारने की राजा भगवन्तदासजी की प्रार्थना का निवेदन किया।

महाराज ने उस समय कोई उत्तर नहीं दिया। सूजाजी वहीं बैठे रहे। शिष्यों ने भी महाराज से जाने न जाने का प्रश्न किया था पर कोई उत्तर नहीं मिला। प्रातःकाल पुनः सूजाजी ने निवेदन किया। महाराज ने जाने की स्वीकृति दे दी। तैयारी क्या होनी थी? दूसरे दिन सूजाजी के साथ सीकरी के लिये दादूजी महाराज रवाना हो गये। टीलाजी, चादाजी, जगजीवनजी श्यामजी, जगदीशजी, धर्मदासजी और सुगनदासजी ये सात शिष्य साथ में चले।

७—अकबर से भेंट

आमेर से चलकर कुछ दिनों में महाराज सीकरी जा पहुचे। सूजाजी ने आगे जाकर राजाजी को समाचार दिये। महाराज भगवन्तदासजी ने हाथी घोडे आदि ले जाकर महाराज का सामेला किया। महाराज राजाजी के यहा ठहरे। बादशाह को सूचना भेज दी गई। सूचना पाकर अकबर ने अबुलफजल खानखाना, राजा बीरबल व पण्डित तुलसीरामजी को आज्ञा दी कि आप लोग मिलकर तथा बातचीत कर परीक्षण कीजिये कि महात्मा में कुछ तत्व है या नहीं? बादशाह के आदेशानुसार खानखाना बीरबल तथा पण्डितजीने बारी बारी से महाराज से वार्तालाप किया। अनेक प्रकार के धार्मिक व दार्शनिक प्रश्नों पर विचार विनिमय हुआ। महाराज की सफल साधना, दृढ निश्चय तथा विचार व व्यवहार की एकता देख कर सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पण्डितजी ने भी चर्चा की थी। वे भी उनके

व्यक्तित्व से प्रभावित हुए, पर दादूजी की विचारधारा के पण्डितजी के धार्मिक भावों के अनुकूल न होने से वे भीतर उतने सन्तुष्ट नहीं हुए जितने कि खानखाना तथा बीरबल हुए।

बादशाह प्रतिदिन होने वाली चर्चा को स्वयं इन तीनों महानुभावों से सुना करता था। उसे भली भांति अवगत हो गया कि दादूजी ऐसे वैसे साधु नहीं हैं। वे वस्तुतः उच्च कोटि के महा पुरुष हैं। उनकी सचाई व निरभिमानता, साधुता, शील. आत्मपरिचय, विश्वप्रेम, अहिंसा, समान व्यवहार, त्याग, निष्कपट स्थिर वृत्ति आदि दैवी सम्पत्ति के सम्पूर्ण गुणों का विकाश सामान्य बात नहीं थी। उनका प्रशान्त निर्मल हृदय अखिल वासनाओं से मुक्त था। वृत्ति में किसी भी आकांक्षा की चञ्चलता का लेश तक नहीं था। उनका ज्ञानालोक मल, विक्षेप, आवरणजन्य अन्धकार को रंच भी पास नहीं फटकने देता था। उनकी सहज समाधि इस दशा मे आगई थी कि जिसका कभी तार टूटता ही न था। वे सम्पूर्ण भवभीतियों से मुक्त हो चुके थे। ऐसे महापुरुष के आगमन से बादशाह मन ही मन में परम प्रसन्न था।

आगे के दिन बादशाह ने महाराज को अपने सभा भवन में बुलाया महाराज के पहुंचने पर शिष्टाचार के बाद बादशाह ने प्रश्न किया— *तीन गुण और पांच भूतों की किस क्रम से उत्पत्ति हुई, कौन पहले और कौन बाद मे बना?* महाराज ने उत्तर दिया कि—"*सब के सब एक ही साथ में बने हैं।*" बाद में बादशाह ने मुसलमानी मत की चार मंझिलों का प्रश्न किया। उन्होंने *शरीयत, तरीकत, और मारफत* के लक्षण पूछे। जिनका उत्तर महाराज ने परचे के अंग की साखियो द्वारा दिया। ये साखियें बिलकुल अरबी फारसी शब्दों की हैं, जैसा कि तरीकत और हकीकत के निम्नलिखित लक्षणों से अवगत होता है।

तरीकत—

इश्क इबादत बन्दगी, यगानगी इखलास।
मेहर मुहब्बत खैर खूबी, नाम नेकी पास॥ १॥

हकीकत—

यके नूर खूबे खूबां, दीदनी हैरां।
अजीब चीज खुरदनी, पियालए मरता॥

जो दया, निर्वैरता, भलाई और नेकी में मन लगा कर एक ही परमात्मा में निश्चय रखकर उसी की सेवा व पूजा करते हैं वे तरीकत मंजिल के फकीर हैं।

जो तेजरूपी सूबों में खूब हैं, जिस तेज को देख आंखें हैरान होतीं हैं, जो एक परमात्मा ही को मुख्य लक्ष्य मानते हैं, यह है मस्तों के प्याले का अजब अमृत, यह दशा है हकीकत के साधक की। इन पद्यों से प्रतीत होता है कि दादूजी महाराज अरबी फारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे। बादशाह प्रश्नों के उत्तर सुनकर परम प्रसन्न हुआ। और भी कई तरह के प्रश्नोत्तर हुए।

किम्वदन्ती है कि दादूजी जब बादशाह से मिलने गये तब बादशाह उनके महत्व की व सिद्धपने की परीक्षा करने की चाह से सिंहासन पर तो स्वयं बैठ गया और उनके लिये उसने कोई दूसरा आसन नहीं रखा। जब दादूजी महाराज आये और बादशाह की चाल देखी तब एक तेजोमय तख्त प्रगट कर उस पर आप आसीन हुये। बादशाह उस तख्त को देख चकित रह गया। यहां टीलाजी की करामात का भी एक प्रसङ्ग है।

बादशाह दोनों तरह से दादूजी का महत्व देख चुका। अन्त में उसने अपने कपट के लिये क्षमा-याचना की और उनसे उपदेश देने की प्रार्थना की। महाराज को तो उसका कोई विचार था ही नहीं। अत उन्होंने वहीं बादशाह को उपदेश दिया। सुनने में आता है कि महाराज के अहिंसा-उपदेश से ही अकबर ने गोहत्या के निषेध का फरमान निकाला। जाति और मजहबी धर्म के पक्षपात से बचने का भी महाराज ने निर्देश किया था। प्राणिमात्र से प्रेम, दीनता, त्याग, तप, शील, सत्य और समत्व भावना ही से आत्म-साक्षात्कार होता है, यही बहिश्त का मार्ग है। इसी से शान्ति, सुख व सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिलती है।

महाराज के इस उपदेश का अकबर पर क्या प्रभाव पड़ा यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता? फिर भी यह तो मानना ही होगा कि उसके भावों पर महाराज के इस सहवास-चर्चा का कुछ न कुछ तो असर अवश्य ही हुआ। सुनने में आता है कि अकबर ने एक इलाही धर्म भी चलाना चाहा था, शायद उस इलाही धर्म की मूल भित्ति महाराज दादूजी का उपदेश ही हो। कारण, उसमें भी मुख्य सिद्धान्त सब धर्मों के समन्वय का था।

महाराज दादूजी के उपदेश में धार्मिक विषय पर यही निर्देश किया गया है कि धर्म वही है जिसमें किसी पक्षविशेष का आग्रह न हो। अकबर ने दादूजी के सहवास से इस तथ्य को समझा और अपनाया हो तो असम्भव बात नहीं।

दादूजी महाराज की अकबर से यह मुलाकात करीब १६४० में हुई थी। चालीस दिन चर्चा कर, उपयुक्त उपदेश दे महाराज चलने को उद्यत हुए। अकबर ने नाना तरह की भेंट महाराज को देने का बहुत आग्रह किया, पर उन्होंने कुछ भी अङ्गीकार नहीं किया। एक दिन राजा भगवन्तदास के निवास पर ठहर कर महाराज वापिस आमेर की ओर रवाना हुये। रास्ते में अलूदे में महाराज के शिष्य नरहरिदासजी रहते थे। उन्होंने महाराज को पधारे देख अपने को कृतकृत्य समझा। बड़ी श्रद्धा और प्रेमभाव से महाराज को पांच दिन अपने स्थान पर रखा। बड़ा आनन्द उत्सव मनाया। ऐसे भ्रमण करते हुये महाराज वापिस आमेर लौट आये।

आमेर में कुछ समय हुआ कि देवल से दयालदासजी आये और महाराज को अपने वहाँ ले गये। कुछ समय देवल में व्यतीत हुआ। इतने में माधोजी व नरहरिदासजी महाराज को लेने को आ गये। महाराज उनके साथ उनके ग्राम चले गये। कुछ समय वहाँ निवास कर करोली, मोतीवाड़ा, बस्सी, जटवारा होते हुये दो वर्ष में वापिस आमेर आ गये। यहाँ से आंधी में जाकर पूर्णदासजी के चौमासा किया। वहाँ से लोहरवाड़ा गये। यहाँ से जोगीजी व जैमलजी के होते हुए आमेर आये। कपिलमुनि के विशेष आग्रह से चाडसू पधारे। चाडसू से वापिस आमेर आये। सम्वत् १६४७ में महाराजा भगवन्तदासजी देवलोक पधारे। महाराजा भानसिंहजी आमेर के अधिपति हुए। महाराज को साँभर से आये १५ वर्ष हो गये थे। महाराज ने अब आमेर-परित्याग का विचार किया। कुछ शिष्यों को आमेर छोड़ उपदेशार्थ भ्रमण का निश्चय किया।

८—भ्रमण और प्रचार

सम्वत् १६४७ में आमेर का परित्याग कर आँधी की ओर रवाना हुए। जगन्नाथजी को आमेर में रखा। आँधी दो वर्ष ठहरे। यहाँ से आमेर होते हुये भूरसी ग्राम में पहुँचे। साथ के शिष्यों को यहाँ छोड़ आप कल्याणपुर (करडाले) पधारे। एक वर्ष यहाँ पुनः एकान्तवास कर ५० वर्ष की आयु में पुनः भ्रमणार्थ चले। माधोदासजी की विशेष प्रार्थना पर गूलर में चतुर्मास किया। वहाँसे चल कर दो वर्ष तक तिलोनिया, खेतराणी आदि गाँवों में उपदेश आदेश देते हुए विचरे।

सम्वत् ४४ तक आपने कई स्थानों का भ्रमण कर लिया। अब स्थान स्थान मे आपके शिष्य हो गये थे। उनके आग्रह से सबको सन्तुष्ट करते हुए अपने सिद्धान्तो का निर्देश करते हुये लोककल्याण का कार्य पूरा करते रहे। इस समय बीच बीच में कल्याणपुर की पहाडी पर एकान्तसेवनके लिये भी आते रहते थे।

जोधपुर, मेवाड, खाटू, ढूँढाड के अनेक स्थानों मे प्रचार करते हुए वापिस साँभर आये। नराणे मे खगारोतों का राज्य था। जगमालजी के पुत्र नारायणदासजी ने महाराज को नराणे बुलाना चाहा और रायमलजी कछवाहे को साँभर भेजा। उनका विशेष आग्रह देख महाराज सम्वत् १६५५ मे साँभर से नराणे पधारे। नराणे में त्रिपोलिया में कुछ दिन ठहर बाद में खेजडाजी के नीचे आ गये। तीन वर्ष तक यहाँ भजन स्मरण किया।

महाराज के शिष्य प्रशिष्यों का चारों ओर प्रसार हो गया था। बहुत से शिष्यों का बार बार अपने स्थानों की ओर ले जाने का आग्रह होने लगा। महाराज ने शिष्य प्रशिष्यों का विशेष आग्रह देख अन्तिम यात्रा का निश्चय किया। विशेष आग्रह वाले शिष्यो के यहाँ जा उनकी इच्छा पूरी कर सं० १६५६ के अन्त मे पुन नराणे आ गये। यहीं ईश्वर चिन्तन करते हुए सम्वत् १६६० की ज्येष्ठ वदि अष्टमी को महाराज ब्रह्मलीन हुये।

अन्तिम समय के पहले दादूजी ने प्रमुख शिष्यों को बुलाकर अपने शरीर को भैराणे की खोल में छोड आने का निर्देश कर दिया था। तदनुसार महाराज के शरीर को भैराणे पहुँचा दिया गया। वह स्थान आज भी स्मारकरूप मे मौजूद है। उसकी अब संज्ञा "दादूखोल" हो गई है। इस तरह महाराज दादूजी ने सम्वत् १६२५ से ६० तक लोककल्याण का कार्य कर जनसमुदाय को नवीन पथ दिखलाया।

६—स्मारक

दादूजी की याद में कोई विशेष स्थान नहीं बनाया गया है। कारण, वे इस प्रकार की प्रथाओं को अनुपादेय समझते थे। उन्होंने जहाँ-२ अधिक समय व्यतीत किया था वहाँ उनके रहने की जगह हैं, वे ही उनके स्मारक हैं। मुख्य स्थान जहाँ सबसे पहले उन्होंने लम्बे समय तक साधना की, कल्याणपुर (करडाला) है। वहाँ उस डूंगरी पर जहाँ कि महाराज ने निवास किया था, भजन शिला है।

आज भी सन्त लोग उसको पावन समझ उसमें श्रद्धा रखते हैं। पहाड़ी की तलहटी में बाद में एक स्थान भी बनवाया गया है, जिसको "दादूद्वारा" कहते हैं।

भजन-शिला और दादूद्वारा ये दो जगह करडाले की हैं। करडाले से महाराज साँभर में आये। वहाँ सर में एक कुटिया बनाकर रहे थे। उस कुटिया की जगह बाद में किसी ने एक छतरी बनादी। वह छतरी आज भी उस कुटिया के स्थान की याद दिलाती है। वैसे साँभर में अब एक बहुत विशाल दादूमन्दिर है जिसका निर्माण महात्मा ठण्डीरामजीके प्रयाससे आरम्भ हुआ और महात्मा चैनजीके उद्योगसे सम्पन्न हुआ। इस तरह सांभरमें भी छतरी और मन्दिर दो स्मारक हैं। सांभर के बाद दादूजीका सबसे लम्बा समय आमेरमें बीता। आमेरमें जिस स्थान पर आप विराजे थे, वहीं पर दादूद्वारा बना हुआ है। दादूद्वारामें वह प्राचीन स्थान, जिस जगह महाराजने बैठ कर तप किया था सुरक्षित रक्खा गया है।

आमेर के बाद महाराज नरायणा पधारे। नरायणामे त्रिपोलियामें जो कि पहलेका बना हुआ एक स्थान था, कुछ दिन महाराज रहे थे। वह खण्डित अवस्था में आज भी है। खेजड़ा (शमीवृक्ष) जिसके नीचे बैठ कर बहुत दिन तक आत्म-चिन्तन किया था, आज भी सुरक्षित है। भजनशाला जो खेजड़ेके पास कच्ची बनाई गई थी वह भी अब तक मौजूद है। उस पर अब चूना लगा दिया गया है। दूसरे स्थान भी बन गए हैं। और वहीं पर उतराधे महात्मा ठण्डीरामजी पटियाले वालोंका बनाया हुआ एक विशाल मन्दिर भी है। नरायणा ही महाराजके अन्तिम समयका स्थान है। अतः महाराजके बादकी आचार्यगद्दी नरायणामें ही रही। यही स्थान मुख्य स्मारक रूपका स्वीकार किया गया। सं० १६६० से अब तक प्रति वर्ष फा० शु० ५ से ११ तक यहां दादूपन्थी महात्माओंका मेला भरता है। धीरे-धीरे यहां सैकड़ों पक्के स्थान बन गए हैं। आज यहां इस सम्प्रदाय की स्वतन्त्र एक आबादी बसी हुई है। मेलेपर एक दिनका अन्न राज्यकी ओरसे होता है। नाजिम साहब सांभरके राज्यकी ओर से भेंट करने आते हैं। सम्प्रदाय के आचार्य पूज्य श्री स्वामीजी महाराज यहां विराजते हैं। दादूजीके पश्चात् १६ आचार्य हो चुके, अब सत्रहवें महाराज प्रकाशदेवजी वर्तमान आचार्य हैं।

दादूजी महाराजके बाद उनकी गद्दी पर विराजने वाले आचार्य अब तक जितने हुये हैं उनमें बहुतसे उच्चश्रेणिके महात्मा हुए हैं। अपने परम्परागत

आदर्श को अपनाने वाले तो सभी थे। ईश्वरचिन्तन ही उनका प्रधान कर्त्तव्य रहा और है। उनकी विभिन्न विशेषताओंका पूरा विवरण आचार्यसम्बन्धी निबन्धमें दिया जायगा। जिसका प्रकाशन ऐतिहासिक भाग में होगा। नाम व गद्दी पर विराजनेके समयकी तालिका आगे दी जायगी।

श्रीदादूजीका अन्तिम स्मारक भैराणा है जहां दादूजी महाराज के स्थूल शरीरको रक्खा गया था। भैराणामें उस जगह उस स्थानकी यादके लिये एक चबूतरा पीछेसे बनवाया गया था। वही चौंतरा वहाका स्मारकचिह्न है। बादमें वहा पालकाजी तथा रहनेके कई स्थान भी बनाये गए जो अब विद्यमान हैं। नरायणेके मेले पर भैराणेमें भी फा० कृ० ३० से फा० शु० ३ तक मेला भरता है। इस तरह कल्याणपुर, साभर, आमेर, नरायणा, भैराणा ये पाच स्थान दादूजी महाराजकी स्मृतिके परिचायक हैं। दादूपन्थी सन्त इनको पञ्चतीर्थ मानते हैं।

१०—वाणी

दादूजी महाराजके उपर्युक्त स्मारक तो स्थावररूपके हैं। उनका निर्माण पीछे से किया गया है। उनका वास्तविक व पवित्र स्मारक उनकी 'अनुभववाणी' है, जिसकी रचना उन्होंने स्वय की है। यह समय समय पर जिज्ञासुओंको उपदेशरूपमें कही गई तथा अपने सिद्धान्तों व अनुभवोंको सम्यक् प्रकारसे व्यक्त करनेके लिये स्वत प्रवाहित हुई पद्यधाराका संग्रह है जिसका सङ्कलन उनके शिष्योंने किया है।

वाणी यह सञ्ज्ञाविशेष है। वाणीका सामान्य अर्थ तो कथन है पर यह कथन केवल युक्ति तथा प्रचलित पुरातन सिद्धान्तोंपर ही आधारित नहीं है, किन्तु स्वकीय अनुभूतिके आधारपर है। अत जिन जिन सन्त साधकोंने अपनी अनुभूतिको शब्दों द्वारा प्रकट किया वह अनुभूतिकथन ही *वाणी* शब्दसे व्यवहृत हुआ है। इसलिये *वाणी* शब्दका प्रयोग सन्त महात्माओंके अनुभवजन्य स्वमुखोच्चारित कथनमें ही रूढ है।

दादूजी महाराजकी वाणीके दो भाग हैं, एक अङ्गभाग, दूसरा रागभाग। अङ्गभागसे अभिप्राय एक एक प्रकरणका है। जैसे पुराण आदि ग्रन्थोंमें प्रकरणोंके लिये अध्याय शब्दका व कहीं तरङ्ग शब्दका प्रयोग किया गया है, उसी तरह सन्तवाणियोंमें प्रकरणके स्थान पर "अङ्ग" शब्दका प्रयोग किया गया है। जैसे गुरुमहिमाका अङ्ग,

मायाका अङ्ग, मनका अङ्ग, कालका अङ्ग, स्मरणका अङ्ग आदि। इसका अभिप्राय हुआ कालका, मायाका, गुरुमहिमाका, प्रकरण। अङ्गभागमें भिन्न-२ विषयोंपर ३७ अङ्ग हैं। एक एक अङ्गमें विषयविवेचनके अनुरूप अनेक साखियाँ हैं। साखीशब्द दोहे छन्दके लिये प्रयुक्त होता है। इन ३७ अङ्गों में कुल मिलाकर छब्बीस सौ से कुछ ऊपर साखियाँ हैं। दूसरा भाग "राग" का है। इसमें २७ राग-रागिनियों में चार सौ पैंतालीस पदोंका संग्रह है। पदोंमें दोहे छन्दोंकी समता रखनें वाली तेईस सौ से ऊपर कुछ साखियाँ हैं। ऐसे दोनों भागों में साखीरूप दोहे छन्दकी समानता वाली ५००० पदसंख्या हैं।

वाणीमें क्या विषय है? इसके विवेचनका यह स्थल नहीं। वाणीका विवेचन अच्छी तरह से तब किया जा सकता है जब कि इस पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाय। शताब्दीप्रकाशनका प्रथम भाग इसी विषयके निबन्धोंका है, जिसमें विभिन्न विद्वानोंके द्वारा विषय-विशेषपर लेख लिखे गये हैं।

"*वाणी*" दादूजी महाराजके भावों, विचारों, तथा निश्चयोंका संग्रह है। मुख्यतया इसकी रचना उस समयकी बोलचालकी भाषामें की गई है। स्थल-विशेषोंमें अरबी, फारसी, गुजराती, मराठी, व पञ्जाबी भाषाका भी प्रयोग हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि दादूजी केवल इस देशकी प्रचलित भाषाके ही जानकार नहीं थे, अपितु देशकी अन्य प्रचलित भाषाओंपर भी अधिकार रखते थे।

'*वाणी*' में सभी तरहका शास्त्रीय विषय आया हुआ है। वेदान्तका तो पूरा पूरा सिद्धान्त वाणीमें समाहित है. यह कहा जाय तो असङ्गत नहीं होगा। योग, सांख्य, उपनिषद्, व गीताके सिद्धान्तोंका भी प्रकरण-विशेषमें अच्छा समन्वय है। इससे प्रतीत होता है कि महाराज के पास आकर जिज्ञासुओंने शास्त्रीय विषयोंको लेकर प्रश्न किये थे, उनका उत्तर दादूजी महाराज ने दिया। अतः उसमें उन विषयों का समावेश होना अनिवार्य ही था।

वस्तुतः वाणीकी शैली स्वतन्त्र है, उसकी रचना अनुभूतिके आधारको छोड़ और किसी आधारसे नहीं हुई है। वाणीके कहने वाले रचनाकार नहीं किन्तु साधक थे। साधना ही उनका मुख्य लक्ष्य था। उन्होंने तात्त्विक बातोंका व्यावहारिक रूपमें परीक्षण किया था। अतः उनकी वा[illegible] यह विशेषता है कि शास्त्रीय विषय भी यदि अनुभवमें ठीक नहीं उतरा [illegible] उन्होंने मान्यता नहीं दी।

जो शास्त्र वर्ग-विशेषकी भावनाको पुष्ट करते हैं या कल्पित विधि-निषेधका पोषण करते हैं उन शास्त्रोंको दादूजीकी वाणीमें स्थान नहीं है।

धर्म जातिविशेषसे सम्बन्धित है यह बात वे बिल्कुल नहीं मानते थे। काल जाति, व अवस्थाकी प्रधानता से धर्मकी प्रधानता उनके ध्यानमें बैठ ही नहीं पाई थी। वर्गभेद, धर्मभेद जातिभेद करना यह ढोंग है। और इसके मूलमें स्वार्थविशेषकी भावना समाहित है यह उनकी धारणा थी। ईश्वरको, आत्माको, धर्मको हिस्सोंमें बांटना किसी भी तरह उनके विचारसे सङ्गत नहीं था। इस लिये वाणीमें ऐसी बातोंको, ऐसे विचारोंको बिल्कुल स्थान नहीं मिला है।

वाणी पुस्तकरचनाके उद्देश्यसे नहीं बनाई गई थी। उसका निर्माण तो सहजरूपसे हुआ था, अर्थात् जिज्ञासुओं द्वारा किये गए प्रश्नोंके उत्तररूपमें या हृदय में समुदित भावधाराकी अभिव्यक्तिके रूपमें ही इसका निर्माण हुआ है।

सम्वत् १६१६ से वाणीका आरम्भ हुआ था, उसका प्रवाह अन्त समय तक चलता रहा। वाणीका यह क्रम जो प्रकरण तथा रागोंके रूपमें विद्यमान है, पीछे से किया हुआ है, पहले एक संग्रह मात्र था। पश्चात् रज्जबजी आदि प्रमुख शिष्योंने उस संग्रहको प्रकरणानुसार विभाजित कर यह रूप प्रदान किया।

'वाणी' काव्यपुस्तक नहीं है, अत अलङ्कार, भाव, भाषा, रस, ध्वनि आदि साहित्यिक विषयोंको प्रधानरूपसे इसमें टटोलना किसी रूपमें सङ्गत नहीं है, वैसे रसोंका समावेश तो वाणीमें स्थान स्थानपर सामने आएगा। भाव तथा परिपक्व विचारोंको व्यक्त करना तो वाणीका लक्ष्य ही है।

वाणीमें माधुर्यकी कमी नहीं है। वाणीके पठनमें कभी भी अरुचि नहीं होती। जितना ही आप वाणीका पाठ करेंगे उतनी ही आपकी इच्छा इसके अध्ययन करनेकी होगी। वाणीकी यही सर्वोपरि विशेषता है।

वाणीमें बहुतसी रूढियोंकी व्यर्थता बताई गई है पर शब्दोंमें कटुता व तीव्रता बहुत कम आने पाई है। किसी भी खण्डनीय बातका खण्डन बहुत ही सधे हुये शब्दोंमें किया गया है। यही कारण है कि वाणीका प्रवाह अत्यन्त निर्मल है।

वाणीके प्रवचनमें घृणा पैदा करने वाली कोई रचना नहीं है। सीधे सादे शब्दोंमें महान् गम्भीर रहस्योंको सरलतासे व्यक्त कर दिया गया है। वाणीभरमें

अरबी, फारसी व पञ्जाबी भाषाकी रचनाको छोड़ और कोई रचना ऐसी नहीं जिसमें शब्दों को समझने की कठिनाई हो। संक्षेप में वाणीके लिये इतना ही कहना बहुत होगा कि "वाणी" दादूजीके परखे हुए व कसौटीपर खरे उतरे हुए विचारों-का संग्रह है।

११—सिद्धान्त

वाणीके अध्ययनसे पहले या दादूजीको समझनेके समय यह प्रश्न सबसे पहले उठता है कि दादूजी का सिद्धान्त क्या था? वाणीमें उन्होंने किन मुख्य बातोंका निर्देश किया है, तथा वे क्या चाहते थे? इस विषयका समुचित उत्तर दिया जाना कठिन है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिका एक ही दृष्टिकोण नहीं हो सकता। अपने अपने विचारभेदसे व्यक्तिविशेष के निर्णय का भिन्न-भिन्न होना संगत है। इसलिये इस विषयमें मेरा कथन मेरे ही दृष्टिकोणका ज्ञापक होगा। मेरे विचारसे दादूजी महाराजके सिद्धान्त भारतीय संस्कृतिके मूल स्रोतसे भिन्न नहीं हैं। भारतीय संस्कृतिका आरम्भ वेद तथा उपनिषद् कालसे माना जाता है। वेदका ज्ञानकाण्ड ही उपनिषद् कहलाता है। उपनिषदोंकी श्रुतियोंमें जीवनसे सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नोंपर जो विचार प्रकट किये गये हैं, व जीवनकी सफलताके लिये जिस मार्गका निर्देश किया गया है, दादूजीका निर्देश करीब करीब उसीसे मिलता जुलता है। जीवन क्या है? मनुष्य या प्राणी कैसे जन्मता है? कैसे मरता है? लाखों तरहके प्राणियोंका भेद कैसे हुआ? मृत्यु क्या वस्तु है? संसार क्या है? प्राणी कहांसे आता है? कहां जाता है? संसारमें सुख दुःखकी धारा किन कारणोंसे चलती है? समान जाति होते हुये भी प्रत्येक व्यक्तिकी अवस्था व स्थितिमें अन्तर क्यों रहता है? एक ही तरहके काम करने वाले दो व्यक्तियोंमें एक सफल व एक निराश, एक सुखी व एक दुःखी क्यों हो जाता है?

पिता, पुत्र, भाई, बन्धु, स्त्री आदिका वस्तुतः क्या सम्बन्ध है? एकही तरहसे उत्पत्ति हो, एकही तरहका शरीर हो, एक ही तरहके हेतु शरीर पैदा करने वाले हों, फिर भी भिन्न भिन्न जातियां कैसे बन जाती हैं? ईश्वर क्या है? उसका स्वरूप क्या है? वह कहां रहता है? वह कहीं भी दीखता क्यों नहीं? संसार जो दीखता है वह झूठा कैसे है? एक ही व्यक्ति बालक, युवा, वृद्ध बनता है, गरीब धनाढ्य बनता है, पद-प्रतिष्ठा पाता है, अपमान सहता है, अन्त में विलीन हो

जाता है, यह सब क्या है ? इस तरहके अनेक प्रश्न इस जीवनके साथ जुडे हुये हैं। उपनिषदों ने इन सबका उत्तर दिया है।

आधुनिक समयमें जिस तरह जाति उपजाति के अनन्त भेद हैं, इन भेदोंके के अनुसार स्पृश्यास्पृश्य ऊंच-नीच तथा उपासनाकी भिन्नता सिद्धान्तरूप में बनाली गई है, वैसा रूप उपनिषद् के समय सर्वथा नहीं था, उनमे कहीं भी इस तरहका विवेचन नहा आता।

धर्म को जिस तरह आज अनन्त कल्पनाओंका शिकार बना लिया गया है, वैसा उस समय भी था ऐसा स्पष्ट वर्णन कहीं नहीं है। प्राय सभी उपनिषदोंने आत्मसाक्षात्कारको ही जीवनका मुख्य ध्येय बताया है। जड व चेतन पदार्थोंका भेद है, चेतनकी सर्वत्र व्याप्ति है, उसीके ठीक ज्ञानसे दुःखका परिहार होता है। आत्मा एक है, उसमें न जाति है न वर्ण है, आत्माका ज्ञान ही मनुष्यका मुख्य धर्म है। आत्माके ज्ञानकेलिये मन्दिर, मस्जिद, गिरजा आवश्यक नहीं। आत्माके ज्ञानकेलिये ब्राह्मण होनेकी जरूरत नहीं, किन्तु विचारकी जरूरत है। जाति, वर्ण आदि सब काल्पनिक हैं। हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, ये धर्म नहीं हो सकते। धर्म एक है। हिन्दुत्व, यवनत्व, ईसाइत्वको धर्मका जामा हमी ने पहनाया है। वैदिक कालमें ऐसे भेदोपभेदोंको बिलकुल स्थान नहीं दिया गया है। वही बात दादूजीने दोहराई है। उसी सत्यका उन्होंने समर्थन किया है। केवल समर्थन ही नहीं, उन्होंने उस सत्य को प्राप्त कर उसको कार्य रूपमें परिणत करके भी दिखला दिया। उन्होंने अपने जीवनको सुखी सिद्ध करके दिखाया। उन्होंने उन सब कल्पित मर्यादाओंका भङ्ग किया। हिन्दू मुसलमानपनेको बिलकुल नहीं अपनाया, न उन्होंने पूजा, पाठ, आरती, बाग, रोजा, नमाजको अपनाया, न नमाज पढी, न सध्या की। न वे मन्दिरमें गये और न मस्जिद में। न उन्होंने सुन्नत कराई, न उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया। न कुर्बानी की, न वलिदान किया, और न ब्राह्मण समझकर किसी को महत्ता दी। और न अछूत समझकर किसीसे दूर हटे। फिर भी उन्होंने उस सत्य को प्राप्त किया जिसको प्राप्त करना सभी अपना ध्येय मानते हैं। यदि जाति, वर्ण व धर्मविशेषके कारण ही ईश्वर या खुदा, राम या रहीम मिलता है तो इनके विना उनको कैसे राम मिला ? इसमें युक्ति की जरूरत नहीं। भूख की निवृत्तिके लिये घृतपाक या पय पाक आवश्यक नहीं। बिना घृतपाक व पय पाक के भी भोज्य पदार्थसे भूख जरूर मिटती है। साधनासे ईश्वर मिलता है व आत्मज्ञान

होता है। गलता पहुंचनेकेलिये रामगञ्ज होकर ही जाया जाय यह आवश्यक नहीं, गलते पहुंचनेकेलिये चलने की जरूरत है; चलनेकी क्रिया ही उसका मुख्य साधन है। रास्ते काल्पनिक हैं, वे कितने ही बनाये जा सकते हैं। भारतीय संस्कृतिका मूल ज्ञान है, जीवनके सब प्रश्नोंको हल करने का मुख्य हेतु सत्यासत्यविवेक है। उसके बिना और जितनी कल्पनायें हैं वे सब मिथ्या व व्यर्थ हैं, उनका सचाई के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। दादूजीने उसी सार्वभौम शाश्वत व सत्य धर्मका पालन करके दिखलाया। सार्वभौम धर्मका सीधा अर्थ सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणका धर्म है। सम्पूर्ण प्राणियोंका कल्याण जातिभेद, वर्णभेद व धर्मभेद से होना कभी संभव नहीं। अतः यह धर्म विश्वधर्म नहीं कहा जा सकता। इसीलिये उसका परिणाम भी रोज एक दूसरेके विनाशके रूपमें सामने आता है। यदि धर्मसे लड़ाई व मारकाट पैदा होती है यदि धर्म एक दूसरे की छाया पड़नेमें भी बाधक है तो फिर वह धर्म कैसे माना जाय। तिलक माला वाले, बांग रोजा वाले, रुद्रीपाठ वाले, नमाज मस्जिद वाले, मक्का द्वारिका वाले, अनन्त दुःख राशिमें निमग्न हैं, तब फिर उनका यह सब व्यापार किस कामका रहा ? धर्मसे भेद बढ़ा, धर्मसे द्वेष पैदा हुआ, धर्म से हिंसा जागी, धर्मने एक दूसरे का प्राण लिया फिर भी यदि इसको धर्मके नामसे, कर्तव्यके नामसे कहा जाय तो अधर्म और अकर्तव्य क्या होगा ?

दादूजीने इसी सत्यको व्यक्त किया। उनके सिद्धान्त सत्यको प्राप्त करने के लिये हैं। उन्होंने बतलाया कि जाति चैतन्य है, वर्ण प्रकाश है व धर्म अभिन्नता है। इनकी प्राप्ति व ज्ञान, अहिंसा, त्याग, तप, सचाई, विनय, दया, शील आदि से होती है। वाणीमें इन्हीं भावोंको स्थान स्थान पर व्यक्त किया गया है। भाव उनके अपने थे यह बात नहीं है। इन भावोंको कार्यरूपमें व व्यवहारमें परिणत कर दिखानेका काम उनका अपना कार्य था। उन्होंने इसको जिस तरीकेसे कर दिखाया, व उसींपर चलनेका उपदेश दिया, वह तरीका उनका अपना था। इस तरीकेमें सर्वप्रथम आपेका परित्याग आवश्यक है। जाति, वर्ण, पद, बल, ज्ञान व वैभव आदिसे उत्पन्न होने वाला अहंभाव ही "आपा" है। इस अहंभावका जब तक विनाश न किया जायगा तव तक आत्मज्ञानकी इच्छा उत्पन्न नहीं होगी। आपा छोड़कर मनुष्यको हरिस्मरणमें लगना चाहिये। आत्मचिंतनका नाम ही हरिस्मरण व हरिभजन है। आत्मामें वृत्तिस्थैर्यके लिये तन मनके विकारोंका परित्याग आवश्यक है। तन मनके विकारको पुनः न आने देनेके लिये त्रिविध अहिंसा-

को अपनानेकी जरूरत है। जब यह सब कर लिया जाय तो कार्य सिद्ध हो जाता है। इन्हीं साधनोंसे उन्होंने जीवनका रहस्य प्राप्त किया था। संक्षेपमें ये ही दादूजी के सिद्धान्त हैं जैसा कि उन्होंने स्वय व्यक्त किया है—

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सू, दादू यहु मत सार ॥ १ ॥

१२—शिष्य प्रशिष्य

दादूजी महाराज साँभरमें थे तभीसे शिष्यशाखाका आरम्भ हो गया था। वैसे उपदेश लेकर शिष्यत्व मानने वाले व्यक्तियों की सख्या तो हजारों ही होगी। जैसा कि जनगोपालजीकृत जन्मलीला, व माधोदासजीकृत सन्तगुणसागरमें उनका वर्णन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान सभी वर्गोंके व्यक्तियों ने महाराज का सत्संग किया था। सूँक्या, महरवाल, बियाणी, केजडीवाल आदि कुछ जातियों की जातियों ने महाराज का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। क्षत्रियो में भी उस समय के कई राजा रईसों की दादूजी में पूरी श्रद्धा भक्ति थी। साधारण जनताका तो कहना ही क्या था? दोनों जन्मलीलाओं में साँभर, आमेर, नरेना आदि स्थानोंमें जैसे जैसे शिष्योंने उपदेश ग्रहण किया उनकी नामावली लिखी हुई है। शिष्य प्रशिष्योंका स्वतन्त्र "विवरण राघोदासजी की भक्तमाल" में विशेषरूप से किया गया है। हृदयरामजी व लालदासजी कृत दो शिष्य नामावलियाँ भी बनी हुई हैं, इनसे सिद्ध होता है कि महाराजके जितने शिष्य हुये उनमें १५२ प्रधान शिष्य थे। कथानक प्रचलित है कि इनमें सौ तो ऐसे वीतरागी थे जिन्होंने व्यवहारसत्ताका प्राय त्याग ही कर दिया था, वे अनवरत आत्मचिन्तन में ही सलग्न रहते थे। इनने न तो अपने पीछे कोई शिष्य किया, न वे किसी स्थानविशेष मे रहे। वे एकान्तवास करने वाले थे, इसलिये इनके नाम तो गिनाये हैं पर आगे कोई शृखला न रहने से इनके बाद इनकी कोई प्रणाली जारी नहीं रही। बाकी ५२ मे से अधिकाश की उनके बाद भी प्रणाली जारी रही। उनने भजन तथा व्यवहार दोनों ही बाते अपनाई।

इन शिष्यों मे से कुछ के तो महाराज दादूजी के सामने ही कई शिष्य हो गये थे। जैसे रज्जबजी के १२ शिष्य थे। सन्तदासजी, प्रागदासजी, बनवारीदासजी, घडसीदासजी, बडे सुन्दरदासजी, तेजानन्दजी, जगन्नाथदासजी,

आदि के भी अनेक शिष्य थे। इन सबका विशद वर्णन शिष्य-प्रशिष्य नामक निबन्ध में स्वतन्त्र किया जायगा। उनके नाम व स्थान का उल्लेखमात्र यहाँ किया जाता है:—

१. गरीबदासजी नरेना
२. मसकीनदासजी नरेना
३. बखनाजी ,,
४. शंकरदासजी ,,
५. जैसोजी ,,
६. चाँदाजी ,,
७. प्रागदासजी ,,
८. बड़े गोपालदासजी नरेना
९. रज्जबजी सांगानेर
१०. दयालदासजी देवल
११. घड़सीदासजी कडेल
१२. दूजणदासजी ईडवे
१३. तेजानन्दजी जोधपुर
१४. मोहनदासजी आसोप
१५. माधोदासजी गूलर
१६. हरिसिंहजी विद्याद
१७. चतरदासजी सिगरावट
१८. प्रयागदासजी डीडवाना
१९. सुन्दरदासजी छोटे फतेहपुर
२०. बनवारीदासजी रतिया
२१. हरिदासजी रतिया
२२. साधूरामजी मांडोठी
२३. चतुर्भुजजी रामपुर
२४. नारायणदासजी इकलोद
२५. चरणदासजी रणथंभोर
२६. माखूजी गंगायचा
२७. जग्गाजी भडोंच
२८. लालदासजी पट्टण
२९. टीलाजी फोफल्या (मेवाड़)
३०. परमानन्दजी इन्दोखली
३१. जैमलजी चौहान बौंली
३२. जैमलजी जोगी साँभर
३३. वनमालीजी साँभर
३४. मोहनजी दफतरी मारोठ
३५. चतरदासजी कालाहडरा
३६. टीकमदासजी नांगल
३७. झाँझूजी झोटवाड़ा
३८. झांझूजी झोटवाड़ा
३९. लघु गोपालदास झोटवाड़ा
४०. जगन्नाथदासजी आमेर
४१. जनगोपालजी राहोरी
४२. सन्तदासजी वारहहजारी चांवड्या
४३. मोहनदासजी मेवाड़ा भावगढ़
४४. नागरजी टैटडा
४५. निजामजी टैटडा
४६. जगजीवनजी दौसा
४७. मोहनजी दरियाई समीधी
४८. हिंगोल गिरिजी वोकडास
४९. कपिलमुनि गूंदेर
५०. श्यामदासजी झालाना
५१. दो वाई नरेना
५२. जनगरीवजी आँधी

इन्ही शिष्यों की परम्परा को लेकर बावन थामे बने। आज का सम्पूर्ण दादूपंथी सम्प्रदाय इन्ही बावन थाभों की प्रणाली से बना हुआ है। इनमें से कुछ नाम ऐसे हैं जिनकी परम्परा नहीं चली। कुछ नाम ऐसे हैं जिनकी परम्परा कई पीढियाँ चलकर समाप्त हो गई। कई नाम ऐसे हैं जिनकी परम्परा अब भी चल रही है। बावन में बाईस थामे-अब नहीं रहे। चार पाच थामे ऐसे हैं जिनके साधु तो हैं पर थाभायती महन्त नही हैं। बाकी पचीस छब्वीस थामे अब भी ऐसे हैं जिनके महन्त और साधु दोनों हैं। इनमें कई थामे ऐसे हैं जिनमें एक एक में हजारों सैंकडों साधु हैं, जैसे बडे सुन्दरदासजी, बनवारीदासजी आदि।

१३—आचार्य गद्दी की परम्परा

महाराज दादूजीका कोई सम्प्रदाय चलानेका उद्देश्य नहीं था। वे तो कल्याणकी भावनासे ही कार्यक्षेत्र में उतरे थे। उनके शिष्योंमें अधिकांश शिष्य ऐसे थे जो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके बाद दादूजीके शिष्य हुये थे। इनमें कई अन्त तक गृहस्थ ही रहे। कइयोंने गृहस्थका परित्याग कर दिया। कुछ ही ऐसे थे जिनने गृहस्थाश्रममें प्रवेश नही किया था। दादूजीने उपदेश के साथ साथ न तो उनके नामोंमें परिवर्तन किया और न और कोई विशेष बात की। उनका तो ध्येय अपने विचारोंको बतला देनेका था। जिनने उनके विचारोंको अपनाया, वे स्वत ही अपना रूप बदलते गये। महाराजके ब्रह्मलीन होनेपर सब शिष्य नराणेमें एकत्र हुये। दादूजी महाराजकी गरीबदासजीपर कुछ विशेष कृपा थी। सबने मिलकर निश्चय किया कि महाराज तो पधार गये हैं। उनका कोई पन्थ सम्प्रदाय बनाने का ध्येय यद्यपि नहीं था, फिर भी उनकी स्मृतिकेलिये तथा उनकी विचार-परम्पराको कायम रखनेके लिये अपनेको ऐसा सिलसिला जारी रखना चाहिये जिससे हम लोग वर्षमें एक बार एकत्र हो सकें और आपसमें मिल सकें। इसकी पूर्तिका साधन महाराजके स्थानपर किसीको मान लेना ही था।

सबने विचार कर गरीबदासजीको ही इस स्थानपर आसीन करने का निश्चय किया, क्योंकि इन्हींपर महाराजकी विशेष अनुकम्पा थी। महाराजका उत्तराधिकारी इन्हींको बना दिया गया और नराणे में ही महाराज की जन्मतिथि फाल्गुन सुदी ८ का मेला रख लिया गया। तभीसे यह परम्परा प्रचलित है।

गरीबदासजी महाराज अत्यन्त शान्त महात्मा थे, वे गवैये भी बहुत उच्च श्रेणीके थे, योगाभ्यासकी शिक्षा भी उनने महाराजसे प्राप्त करली थी। वे अधिक

समय अपने अभ्यास ही में लगे रहते थे। आत्मचिंतन व ईश्वर गुणगान ही उनका मुख्य काम था। वे महाराज दादूजी के सिद्धान्तों का अनुगमन करते हुये मानव कल्याण का कार्य सम्पन्न करते रहे। संवत् १६९३ में वे ब्रह्मलीन हुए।

उनके पश्चात् श्री मसकीनदासजी महाराज की गद्दी पर बैठे। ये भी दादूजी महाराजके शिष्य व गरीबदासजी के गुरुभाई थे। इनके पश्चात् इन्हीं की शिष्य-परम्परा में स्वामीजी महाराज होते रहे। अब तक यही क्रम चल रहा है। इनके बाद आचार्य गद्दी पर निम्नलिखित स्वामीजी महाराज विराजमान हुए।

१. श्रीस्वामी गरीबदासजी महाराज
२. श्रीस्वामी मसकीनदासजी महाराज
३. श्रीस्वामी फकीरदासजी महाराज
४. श्रीस्वामी जैतरामजी महाराज
५. श्रीस्वामी किशनदेवजी महाराज
६. श्रीस्वामी चैनरामजी महाराज
७. श्रीस्वामी निर्भयरामजी महाराज
८. श्रीस्वामी जीवणदासजी महाराज
९. श्रीस्वामी दलेरामजी महाराज
१०. श्रीस्वामी प्रेमदासजी महाराज
११. श्रीस्वामी नारायणदासजी महाराज
१२. श्रीस्वामी उदयरामजी महाराज
१३. श्रीस्वामी गुलाबदासजी महाराज
१४. श्रीस्वामी हरजीरामजी महाराज
१५. श्रीस्वामी दयारामजी महाराज
१६. श्रीस्वामी रामलालजी महाराज
१७. श्रीस्वामी प्रकाशदेवजी महाराज (वर्तमान)

इस तरह दादूजी महाराजके बाद सोलह पीढ़ी और हो चुकी सत्रहवीं पीढ़ी चल रही है। इन सबका विशेष वर्णन उस निबन्ध में होगा जो आचार्य परम्परा का छपेगा। महाराज के पश्चात् जितने भी आचार्य हुये हैं वे सबके सब अत्यन्त भजनीक व महात्मा श्रेणी के हुये हैं। इनमें कई तो ऐसे पहुँचे हुये पुरुष थे जिनकी कितनी ही चमत्कार की, कथायें आज भी प्रसिद्ध हैं। वे केवल बनावटी कथायें ही हों सो बात नहीं, उनके प्रमाण भी अब तक प्राप्य हैं। उनके त्याग और तप का ही फल था कि जयपुर, जोधपुर, उदयपुर अलवर, कोटा, बूंदी आदि राज्यों की ओर से इनके सम्मान के कई नियम अब तक बने हुये हैं। बहुतसे राज्यों की ओर से गांव, जमीन, कुए, कोठी भी भेंट किये हुए हैं। यह सब इन्हींके प्रभाव का परिणाम था। यह परम्परा अब भी उसी रूपमें चल रही है।

१४—सम्प्रदाय

महाराज के बाद उनके शिष्यों की परम्परा उसी तरह चलती रही, आचार्य परम्परा का क्रम भी जारी रहा। उभय प्रणालियों से साधुओं की वृद्धि होती गई।

धीरे धीरे बनते बनते यही परम्परा आगे जाकर सम्प्रदायके रूपमें सामने आई। विचारों की जो विशेषतायें दादूजी महाराज ने प्रचलित की थीं उन्हींपर दृढता से चलने वाला यह समूह दादूपन्थी नामसे व्यवहृत किया जाने लगा। शिष्यप्रणाली दोनों तरह की चलती रही। गृहस्थ शिष्य केवल उपदेश ग्रहण कर गृहस्थाश्रम में रहते थे। दीक्षित शिष्य उपदेश धारण के साथ गृहस्थाश्रम का परित्याग कर देते थे। आरंभ में जिनने दादूजी महाराजका अनुसरण किया था वे स्वेच्छा से समझ के साथ उनके विचारों से सहमत हुए थे। उनमें त्याग, वैराग्य पूर्ण मात्रा में था। श्री स्वामीजी महाराज फकीरदासजी तक यह प्रणाली जारी रही। तब तक न किसी ने स्थान बनाया, और न किसी ने किसी प्रकार का संग्रह किया। नाम चिन्तनपूर्वक आडम्बर-हीनता से उसी पथ पर चलकर आत्म-कल्याण व लोक-कल्याण करना ही उनका लक्ष्य रहता था। जैसे जैसे संख्यावृद्धि होने लगी इस तत्परता में कुछ कमी आने लगी। धीरे धीरे जहाँ निवास था वहाँ स्थान बनने लगे। स्थानों के साथ साथ संग्रह भी होना जरूरी था। जैसे काल की अधिकता से समुदाय की वृद्धि हुई वैसे वैसे सिद्धान्तों के दृढता से पालन करने में भी कमी होनें लगी। फिर भी सैकड़ों महात्मा उसी पथ पर चलने वाले होते रहे, जिससे सम्प्र दाय का महत्व उसी रूप में बना रहा। कालप्रभाव तथा दूसरी सम्प्रदाय के व्यवहारके प्रभावसे महन्त, सन्त, मेले, गद्दी, छड़ी, चँवर आदि के कई व्यवहार इस संप्रदाय में भी प्रचलित हो गये। दादूजी महाराज के पश्चात् उनके शिष्यों ने एक धारणा दृढ़ करली थी कि महाराजके वाक्यों के सिवाय और किसीकी उपासना नहीं करनी चाहिये। उस दृढता का ही फल है कि आज तक इस सम्प्रदाय में महाराज की वाणी ही उपासना का आश्रय है। मन्दिर, मठ, मूर्तियों से इस सम्प्रदाय का अब तक बचाव है। प्रत्येक स्थान में *"श्रीदादूवाणी"* की ही पूजा होती है और वह भी भावना से न कि घण्टे घड़ियाल से। वाणी का पठन तथा सायं-काल आरती, अष्टक गाना सम्प्रदाय का नित्यकर्म है। आरती दादूजी महाराजकी तथा उनके शिष्यों की बनाई हुई हैं, अष्टक सुन्दरदासजी महाराजके बनाये हुये हैं। स्वच्छता से रहना तथा स्थान को साफ रखना इस सम्प्रदाय की विशेषता है।

मकान जितना स्वच्छ व साफ इस सम्प्रदाय के साधु रखते हैं वैसा और जगह बहुत कम देखने को मिलेगा। छापा तिलक, माला, कण्ठी, यज्ञोपवीत आदि कोई चिन्हविशेष इस सम्प्रदाय में नहीं हैं। व्रत, उपवास, तीर्थ आदि का कोई

भी भार गले बन्धा हुआ नहीं है। मृत्यु होने पर दाहसंस्कार किया जाता है। कितने ही महात्मा दाह का निषेध कर देते हैं, उनका उनकी इच्छानुसार पवनदाग करने की भी प्रथा है।

विवाह करना सम्प्रदाय के नियमानुसार उचित नहीं हैं। शिष्यपरम्परा ही अपनी प्रणाली चलाने का जरिया है। इस तरह शिष्य होकर जो अविवाहित रहते हैं वे ही उत्तराधिकारी बनते हैं। मृत्यु होने पर मेला किया जाता है। उत्तराधिकार के समय चद्दर उढाने का संस्कार होता है। दादूजी की आरती उतारना दादूजी का प्रसाद बोलना व दादूजी की मान्यता मनाने की प्रथा भी प्रचलित है।

महाराज दादूजी ने तो हिन्दू, मुसलमान स्पृश्य-अस्पृश्य सभी को उपदेश दिया था, पर उत्तरकाल में मुसलमान व अस्पृश्यों को शिष्य बनाने की प्रथा नहीं चली। अब हिन्दू और स्पृश्य ही शिष्य किये जाते हैं। नाम जपमें ॐ, अविचल मन्त्र, या राम मन्त्रका उपयोग होता है। परस्पर मिलने के समय "*सत्यराम*" का व्यवहार किया जाता है। आरम्भ में यह कपाली टोपी लम्बा चोला, तुम्बी, पैरों में तापड़ी, पञ्चकेश अथवा सर्वथा मुण्डन एक ही प्रकार का भेष रखा जाता था, धीरे धीरे इनमें परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। व्यवहार की विशेष प्रवृत्ति के साथ भेषका परिवर्तन भी स्वाभाविक था। आगे चलकर भेषमें कई प्रकार हो गये, उन प्रकारों का सम्बन्ध साधुओं की संज्ञाविशेष से था। यह संज्ञा स्थितिविशेष के कारण बनी थी। इस सम्प्रदाय का निम्न चार संज्ञाओं में विभाजन है। १ खालसा, २ विरक्त तथा तपस्वी, ३ स्थानधारी व उतराधे, ४ नागे। भेष का इन्हीं संज्ञाओंके अनुसार विभाजन है। इन चार संज्ञाओंका वितरण निम्न रूप में है।

१५—खालसा

पीछे लिख आये हैं कि दादूजी महाराज की आचार्यपरम्परा में गरीवदासजी, मसकीनदासजी उनके उत्तराधिकारी बने। इन दोनों की परम्परा भी चली। गरीवदासजी महाराज के वाद उनके शिष्य केवलरामजी हुए। आचार्य गद्दी पर मसकीनदासजी वैठे तव उनकी परम्परा पृथक् चली। आचार्य गद्दी पर वैठने वालों के भी कई शिष्य होते थे, उनमें से एक तो गद्दी का अधिकारी होता था, किन्तु वाकी के भी शिष्य प्रशिष्य होते ही [illegible] वे सब भिन्न भिन्न [illegible] स्वतन्त्र रहते थे। ये दोनों थांभे [illegible] र वैठने वालों के [illegible] इनकी संज्ञा "खालसा" हुई।

इनकी संख्यावृद्धि कालान्तर मे पर्याप्त हुई। नरेना से ये अन्य ग्रामों मे जाकर रहने लग गये। वहीं इनके स्थान बन गये। नराणा मे भी इनके अनेक भिन्न भिन्न स्थान बन गये। धीरे धीरे इनकी संख्या सैकडो से भी अधिक हो गई। ये इनके आचार्य गद्दी के थांभे के होने से अन्य सब थांभे वाले इनको कुछ विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। समय पाकर इनमें अनेकों विद्वान भजनीक, तपस्वी, त्यागी, सगीतज्ञ, कथावाचक व परम्परा के विशेषज्ञ हुए। इनका भेष पहले कान तक टोपी या कपाली टोपी, चोला, और कटिवस्त्र था। किन्तु अब उसमे थोडा हेर फेर होगया है। टोपी की जगह पर बहुत से साफा बाधने लगे हैं। कटिवस्त्र का स्थान धोती तथा चोले की जगह धीरे धीरे कोट व कमीज ले रहे हैं। अब भी इस वर्ग मे सैकड़ों की सख्या में साधु हैं, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, अलवर आदि कई राज्यो में इनके स्थान हैं। गरीबदासजी महाराज की परम्परा का स्थान अब थाभायती माना जाता है। इनका मुख्य स्थान नरेना मे है। इस परम्परा में भी अनेक योग्य महात्मा उच्च कोटि के हुए हैं, विद्वान् भी कई हुये हैं। मसकीनदासजी की परम्परा अभी तक आचार्य गद्दी पर ही है। एक और भी थाभा जो बाईजी के नाम से कहा जाता है, खालसे ही में माना जाता है। इनका मुख्य स्थान हरमाडा तथा चूरू में था, चूरू का स्थान तो अब खाली है। हरमाडे के स्थान मे अब भी परम्परा प्रचलित है

१६—विरक्त-तपस्वी

दादूजी के अनुयायी साधुओं में जिन्होंने किसी स्थान का आश्रय नही लिया, न स्वयं स्थान बाधा, न किसी प्रकार का परिग्रह रक्खा, किन्तु केवल शरीर संरक्षण के लिये काषाय वस्त्र, जलका पात्र तथा दो चार पुस्तक ही जिनका घर रहा, भिक्षा जिनके निर्वाह का साधन रहा वे *"विरक्त"* कहलाते हैं। इसी तरह परिग्रह न रखते हुए वस्त्र भी न रखें और शरीर पर भस्मी लगावें व जटा रखें, वे *"तपस्वी"* शब्द से सम्बोधित किये जाते हैं। परिग्रह न रखकर, घर न बनाकर रहना तो इस सम्प्रदाय का प्रधान लक्ष्य था ही, पर काषाय वस्त्र का धारण करना आरम्भ में इस भेष में नही था। यह मेरी समझ से दादूजी महाराज के बहुत बाद अपनाया गया है और वह भी इधर उधर भ्रमण में अन्य साधुओं के इस रूपके भेषको देखकर ही अपनाया गया है। अन्यथा पहले विरक्त रहने वाले या तो सफेद वस्त्र रखते थे या फिर धूसर रग के कोयले के रंगे हुये वस्त्र रखते थे। कोयले

के रंग में परिवर्तन कर काषाय को प्रधानता दी गई है। कोई कोई व्यक्ति विरक्तों में अबभी कोयले के रंग में रंगे हुये वस्त्र रखते हैं। तपस्वी ढंग का भेष तो इधर सौ सवासौ वर्ष से ही आरम्भ हुआ है। विरक्त या तपस्वी खालसे आदि की तरह किसी थांभाविशेष की प्रणाली में हों सो बात नहीं। चाहे जिस प्रणाली का साधु इस तरह का भेष रख, स्थान का परित्याग कर, एक स्थान पर न रहकर भिक्षावृत्ति से निर्वाह करता हुआ जीवनयापन करे वह विरक्त संज्ञा से संबोधित होता है। विरक्त रहना यह ध्येय तो साधुओं का वास्तविक है ही, उसी का सम्यक् पालन करने वाला समूह ही साधुता का आदर्श कहा जा सकता है।

विरक्तों में दोनों ही प्रकार प्रचलित हैं। एकाकी रहकर आत्मचिंतन व उपदेश करते हुये लक्ष्य तक पहुंचना, या मण्डली बांधकर उपदेश करते हुए और अपना भी कार्य करते हुये जीवन व्यतीत करना। इस समूह को इस सम्प्रदाय का संरक्षणकर्ता कहा जाना चाहिये। क्योंकि महाराज दादूजी ने अपने अनुभव से जो सिद्धान्त स्थिर किये थे उनकी स्मृति, उनका पारायण व उनका प्रचार इसी समूह द्वारा होता है। विरक्त मण्डलियों का तो यह मुख्य ध्येय ही रहता है कि वे वाणी का पठन पाठन व उपदेश नित्यप्रति किया करें। मण्डलियां तथा विरक्त अधिक समय तक एक जगह पर नहीं रहते, वे भ्रमण करते रहते हैं। इस भ्रमण से जगह जगह उनका जाना होता है। जहां ये जाते हैं, वाणी का उपदेश अवश्य होता है। चतुर्मास में भ्रमण बंद रहता है, उस समय जिस जगह वे ठहरते हैं, वहां नित्य नियम से एक समय वाणी की कथा अवश्य होती है। विरक्त महात्माओं का यह क्रम आजन्म चलता ही रहता है। इतर वर्ग भी वाणी की उपासना व पठन पाठन करते हैं, पर उनका वह कार्य उन तक ही सीमित रहता है। विरक्तों का यह कार्य सीमित नहीं रहता, इसका अनवरत प्रसार होता रहता है। यही कारण है कि वाणी की कथा करने वाले अच्छे अच्छे विद्वान् विरक्तों में हुये हैं। मण्डलियों के घूमने का क्रम भी इन्हीं द्वारा चला है। चालीस पचास वर्ष पहले इस वर्गमें बहुत संख्यामें बहुत अच्छे अच्छे महात्मा पुरुष थे। कई मण्डलियां भ्रमण करती थीं। जिन जिन स्थानों में ये घूमते वहां इनका बड़ा आदर व सम्मान होता था। संख्या भी इनकी उस समय बहुत अधिक थी। जनसाधारण पर इन्हीं का प्रभाव अधिक था। ये दादूजी महाराज के संदेश को भूलने नहीं देते। सम्प्रदाय का यह वर्ग सम्प्रदाय के महत्व को स्थिर रखने में बड़ा सहायक रहा है।

स्वभावत ही इनका रहन सहन इतना सादा होता है तथा आवश्यकतायें इतनी कम रहती हैं कि जिससे इनका चरित्र सादा और विनयसम्पन्न बना रहता है। निरन्तर वाणी के पठन पाठन व श्रवण स इनके व्यवहार में भी महाराज के वाक्यों का प्रभाव पडे बिना नहीं रहता। और किसी प्रकार का व्यावहारिक झझट न होने से आत्मचिन्तन का समय भी इनको पर्याप्त मिलता रहता है। व्यावहारिक क्षेत्र का सम्पर्क कम रहने से अनायास प्रपच से बचाव हो जाता है। इस तरह इस वर्ग मे साधुता की कई बातें पद्धति के कारण ही बनी रहती हैं। काल-प्रभाव तथा सामूहिक स्थिति के कारण इस वर्ग की आज पहले जैसी बढी चढी स्थिति नहीं है फिरभी अपनी 'विरक्त' सज्ञा का सरक्षण यह वर्ग अब भी तत्परता से कर रहा है।

१७—उतराधे व स्थानधारी

महाराज के शिष्यों में से जो राजपूताने को छोड आगे उत्तर की ओर बढे और उधर ही जिनने महाराज के उपदेशों का प्रचार व प्रसार किया उनकी जो शिष्यपरम्परा चली व फैली उसकी सज्ञा राजपूताने से उत्तर में रहने के कारण 'उतराधा" हुई। जिन थाभों की परम्परा में अधिक व्यक्ति स्थान बनाकर एक ही जगह के निवासी बन गये उनको मकान बना लेने के कारण "स्थानधारी" कहने लगे। उतराधे और स्थानधारियों की समता इसलिये होगई कि-अब प्राय दोनों ही स्थानविशेष के निवासियों के रूप में रह रहे हैं। आरम्भ में स्थान न तो उतराधों ने बाधे थे और न अन्य थामे वालों ने। "खालसा" वर्ग की तरह उतराधों के भी विशेष थामे हैं। मुख्य थाभा तो उतराधों का बाबा बनवारीदासजी का है। जो महाराज की आज्ञा से साभर से उपदेश ले हरियाणे की तरफ आगये थे, वे रतिया (जिला हिसार के एक कस्बे) मे आकर विराजे थे। दूसरा थाभा हरिदासजी का है, वे भी रतिया में ही विराजे थे। पर आगे जाकर उनका थाँभा इधर जयपुर राज्य में ही आ गया था। यहा झुझुनू से चार कोश पूर्व दक्षिण के कोण में साधुओं का "ढाणी" नाम से नया ग्राम इन्होंने बसाया। आजकल इस थामे के थाभायती यहीं हैं। तीसरा थाभा साधुरामजी का माडोठी में है। इस तरह ये तीन थामे उतराध में हैं। पर मुख्यतया उतराधा सज्ञा रतिया और माँडोठी वालों की ही रही। इनमें भी अधिक सख्या बनवारीदासजी महाराज के थाभे की है। उतराध के प्राय मकान इसी थामे के हैं। पञ्जाब, हरियाणा, हिसार, रोहतक, दिल्ली,

भटिण्डा इन सब जिलों में अनेकों मकान इस वर्ग के हैं। नाभा, पटियाला, व जींद स्टेट में भी ये ही व्याप्त हो रहे हैं। मेरी समझ से महाराज के शिष्यों में परिवार-वृद्धि के लिहाज से दो ही थांभे मुख्य कहे जा सकते हैं। पहला बड़े सुन्दरदासजी का और दूसरा बाबा बनवारीदासजी का। सौ वर्ष पहले तो सम्पूर्ण भेष में संख्या के हिसाब से पहला नम्बर ही उतराधों का था। इधर के सौ वर्षों में उतराधों में तो कमी होती गई और बड़े सुन्दरदासजी के परिवार में वृद्धि हुई। राजपूताने से बाहर इस सम्प्रदाय का जो प्रसार हुआ वह सब इसी वर्ग के द्वारा कहा जाय तो असंगत नहीं होगा।

गुजरात से लेकर पञ्जाब तक इनने अपने स्थान स्थापित किये। साथ ही महाराज की वाणी व सम्प्रदाय की संस्कृति का भी प्रचार स्वतः होता गया। स्थान बनाने पर भी बहुत समय तक इनका सामूहिक जीवन त्यागमय ही रहा। स्थान का उपयोग आश्रय-मात्र के लिये था और संग्रह का कारण नहीं बना था। इस स्थिति के कारण इनमें अनेकों ऐसे सिद्ध पुरुष हुये कि जिनकी मान्यता बड़े बड़े राजा महाराजाओं ने की। पटियाला, राजगढ़, जयपुर के स्थान इसके उदाहरणरूप आज भी मौजूद हैं। नराणे का प्रसिद्ध मन्दिर पटियाला के उतराधे सन्त महात्मा ठंडीरामजी द्वारा ही बनाया हुआ है। विद्वान् भी इस सम्प्रदाय में बहुत उच्च कोटि के हुए हैं। महाराज निश्चलदासजी, रसपुंजजी, रामशरणजी, कन्हीरामजी, हीरादासजी, महानन्दजी, मोतीरामजी आदि विद्वान् उतराधे ही थे। त्यागी, विरक्त, भजनानन्दी, दयालु व परोपकारियों की संख्या भी कम नहीं थी। पचास वर्ष पहले तक इस वर्ग का सम्प्रदाय में महत्वप्रद स्थान था। उसका कुछ विस्तृत परिचय देना आवश्यक है।

बाबा बनवारीदासजी की परम्परा में जिसकी संज्ञा उतराधा सन्त है कुछ समय पश्चात् बूढादल, बड़ी बाईसी, छोटी बाईसी ऐसे तीन वर्ग हो गये। बनवारीदासजी महाराज के बारह शिष्य थे जिनके नाम और निवासस्थानों का विवरण निम्नलिखित है—

परमानन्द नोहर में रामदास करनाली
घड़सी कल्याण दोउ रतिये में रहे हैं।
आसानन्द लाहौर में, जेहला में माधोदास
राघोदास चूल्हदास काम क्रोध दहे हैं॥

गोरधन जेवर में मनोहर पूरब जू
छबीलजी अलेवे में आसन जीत लिये हैं।
आदूजी सिवाणिये जु जगजीवन पारवाले
सीताराम सैनवशी सुने जैसे कहे हैं।'

दादू दीन दयाल के, वनवारी हरिदास॥
उत्तर दिशि पावन कियो, ज्ञान भानु परकास॥ १॥
द्वादश शिष तिनके भये, तिमिर हरण ज्यू भान।
ग्राम नाम तिनके कहे, शीतल सुने जो कान॥ २॥

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाराज वनवारीदासजी के शिष्य परमानन्दजी नोहर में, रामदासजी करनाल में, चडसीदासजी व कल्याणदासजी रतिया में, आसानन्दजी लाहौर में, माधोदासजी जेहला में, राघोदासजी चूल्हवास में, गोरधनजी जेवर में, मनोहरदासजी पूर्वयुक्त प्रदेश में, छबीलदासजी अलेवा में, आदूजी सिवाणी में रहे तथा सीतारामजी विचरणशील रहे हैं। भक्तमालाकार ने परमानन्दजी का वर्णन महाराज के पोता शिष्यों में किया है, इससे प्रतीत होता है कि वनवारीदासजी के बारह शिष्यों में परमानन्दजी की वृत्ति कुछ विशेष चमत्कारपूर्ण थी। भक्तमालाकार के कथन से यह भी प्रतीत होता है कि परमानन्द जी जब तक वनवारीदास जी महाराज जीवित रहे तब तक अधिक समय उन्ही के पास रतिये में रहते रहे हैं। उनकी परम्परा पश्चात् नोहर में कायम हुई है। जैसा कि राघोदासजी ने लिखा है।

रतिया जु गांव देश जंगल में हुतो सन्त परमानन्द रहे दया, शील सत पाले हैं।
पर्यो है अकाल देस मटकी भरी ही सात बाबा अन्न सौंप लोग मालवा को चले हैं॥
आए है अषाढमास बरसा भई है पास वाहन को नाज नास चिन्ता मन साले है।
मटकी बताई अन्न भरी सो दिखाई सब पूरी भरी पाई देख अचरज न्हाले हैं॥ १॥
नालेरी प्रमाण सूके टूकरे भिजोये राखे, पाणी घोर पीवे स्वाद षटरस त्यागे हैं।
ऋद्धि सिद्धि आवे बहु सन्तन खुवावे परमारथ बतावे आप स्वारथ न मागे हैं॥
आतम कँवल जहां ज्ञाँन को प्रकाश कियो हिरदै कँवल तहां ब्रह्म लव लागे हैं।
परमानन्द आनन्द सों पायो वनवारी गुरु सेवे सतचरण सदा ही बडभागे हैं॥ २॥

राघोदासजी की यह उक्ति स्पष्ट निर्देश करती है कि परमानन्दजी रतिया के

जंगल में रहते तथा अति तितिक्षा के साथ आत्मचिन्तन करते थे। उपर्युक्त बारह शिष्यों का जो विवरण ऊपर दिया है उस समय इन परमानन्दजी महाराज की परम्परा के महात्मा नोहर में निवास करने लग गये थे। नोहर में इनकी परम्परा का स्थान अब भी है, राजगढ़ में भी इनके स्थान हैं।

करनाली रामदासजी की परम्परा का निश्चय नहीं है। घड़सीदासजी व कल्याणदासजी रतिया में विराजे थे इनकी परम्परा अब भी प्रचलित है। घड़सीदासजी की परम्परा में महन्त सुखानन्दजी हैं तथा कल्याणदासजी की परम्परा में महन्त खेमदासजी हैं। आसानन्दजी की उत्तर प्रणाली लाहौर में चली, जिसमें आगे जाकर प्रसिद्ध छज्जू भगत हुये जिनका कि चौबारा सारे पंजाब में प्रसिद्ध था। माधोदासजी जेहला में रहे थे। उनके शिष्य प्रशिष्यों ने बोहर, बुरहानपुर मारवाड़ आदि कई प्रदेशों में अपने स्थान स्थापित किये जो आज तक चल रहे हैं। इनकी परम्परा में कई योग्य विद्वान् पुरुष हुए हैं। पण्डित सुखरामजी बोहर वालों की मंडली प्राचीन मंडलियों में प्रसिद्ध व प्रमुख मंडली मानी जाती थी। दादूजी महाराज सिवाणी में विराजे थे, जिनकी परम्परा में महाराज गोविन्ददासजी प्रसिद्ध पुरुष हुये हैं। जिनकी मान्यता अलवरमहाराज तथा जयपुरमहाराज अत्यन्त आदर से किया करते थे। दोनों ही महाराजाओं ने अलवर तथा जयपुर में आपको जागीरें प्रदान की थीं, जो आज तक चल रही हैं। जयपुर में यह स्थान आज भी परम प्रसिद्ध है। इस स्थान के महन्त महाराज राज्य के ग्यारह गुरुओं में गणनीय हैं। इस स्थान पर स्वर्गीय महन्त महाराज बिहारीदासजी के पश्चात् गंगादासजी महाराज महन्त पद पर आसीन हुये। आप ही इस समय इस स्थान की शोभावृद्धि कर रहे हैं। जयपुर में चाहे जिस सम्प्रदाय के महात्मा आवें आपके बाग में निवास तथा आपकी हवेली पर भोजन की सर्वदा व्यवस्था रहती है। आपने अपनी कुशल व्यावहारिक बुद्धि द्वारा स्थान की स्थिति को अति उत्तम बना दिया है।

राजगढ़ के स्थान में अब पहिले जैसी परिस्थिति नहीं है। मनोहरदासजी व राघोदासजी की प्रणालियों का विवरण ज्ञात नहीं है। गोरधनजी जेवरे में हुये उनकी परम्परा में अब बालक वाले हैं। जगजीवनजी पारवाले नूरपुर में रहे अतः उनकी परम्परा वहीं है। बनवारीदासजी महाराज के शिष्य छबीलदासजी अलेवा में विराजे हैं। उनकी परम्परा अब भी अलेवा में चल रही है। स्वर्गीय

महन्त दयारामजी के समय में इस स्थान की पर्याप्त उन्नति हुई थी। देहली वाले हैदरकुली के स्थान को उन्होंने नवीन रूप दिया। ऊमरे के मकान की गई हुई जायदादकी उन्होंने मुकद्दमा लडकर रक्षा की। सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखने वाले सभी कामो मे वे प्रसन्नतापूर्वक भाग लिया करते थे। उनके उत्तराधिकारी इस समय महन्त सेवादासजी हैं। इनकी परम्परा में और भी कई स्थान हैं। छबीलदासजी महाराज के कई शिष्य थे उनमें सबसे बडे श्यामदासजी थे। श्यामदासजी के दयालदासजी, नारायणदासजी, शीतलदासजी व ध्यानदासजी ये चार प्रमुख शिष्य हुये।

दयालदासजी अलेवा में रहे, उनकी परम्परा ही अब अलेवा के स्थान की परम्परा है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। ध्यानदासजी ने किसी एक स्थान का आश्रय नहीं लिया वे एकान्तसेवन तथा भजनभाव मे ही लगे रहे। शीतलदास-जी संगरूर में रहे अत उनकी परम्परा सगरूर मे रही। फिर इसी परम्परा में पेटवाड भिवानी आदि के स्थान हुए। इसी परम्परामें परम सिद्ध पुरुष महात्मा कानडदासजी हुये हैं जिन्हो ने पोख के पहाड पर अपना निवासस्थान बनाया था। यह गुफा पोख का स्थान अब भी चल रहा है। कानडदासजी महाराज ने कई चमत्कार दिखलाए ऐसा प्रसिद्ध है। बीकानेर के महाराज इन मे अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। आप बड़े तीव्र तपस्वी व परम भजनीक महात्मा थे। आपके शिष्यों की सख्या बहुत थी, अत आप की परम्परा के स्थान भी अनेक हुए। शिष्यों की अधिकता के कारण आपकी प्रणाली की सज्ञा ही कानडपन्थ चल पडी थी। दादूरामोदय नामक सरकृतपद्यबद्ध दादूजी महाराज के जीवनचरित्र के रचयिता पं० हीरादासजी भी आपकी ही प्रणाली में हुए हैं। भिवानी का यह स्थान उत-राध के प्रमुख स्थानो में समझा जाता है। जमरापुर मे भी इस प्रणाली का बहुत प्रतिष्ठित स्थान है।

नारायणदासजी ने अपना आवास ऊमरामे किया जो हासी के पास हिसार जिला मे है। नारायणदासजी महाराज परमवैराग्यवान पुरुष थे। उन दिनों ऊमरा के आस पास के क्षेत्र मे आपकी बडी मान्यता थी। आपके चार प्रधान शिष्य हुये। (१) हरिदासजी, (२) हरभक्तजी, (३) मनोहरदासजी, (४) मनसारामजी। ऊमरा मे नारायणदासजी महाराज के उत्तराधिकारी मनसारामजी हुए जिन की परम्परा ही अब तक ऊमरा के स्थान मे चली आरही है। मनोहरदासजी भी ऊमरा में ही रहे

पर वह दूसरा स्थान है । उनके शिष्योंने सुलतानपुर में भी अन्य स्थान कायम किया ।

महात्मा हरभक्तजी देहली चले आये उन्हींकी परम्परा में अलखरामजी हुये जिनकी प्रणाली में इस समय स्वर्गीय महन्त विचारदासजी वाला स्थान है। इसके वर्तमान महन्त रामदासजी हैं । हरभक्तजीकी ही शिष्यपरम्परामें ही किड़होलीका स्थान है । किड़होलीमें ही परम विद्वान् महात्मा निश्चलदासजी महाराज हुए थे । जहां तक ध्यान जाता है विद्वत्ता के विचार से निश्चलदासजी महाराज की समानता वाले महात्मा इस सम्प्रदायमें बहुत ही कम हुये हैं । महाराज निश्चलदासजी ने सम्वत् १८६० के करीब देहली में दीक्षा ली थी, उस समय उनकी आयु करीब बारह साल की होगी । उनके पिता भी वहीं देहली में साधुओं के ही पास रहने लग गये थे । उनकी माता का देहान्त हो चुका था । निश्चलदासजी महाराज की बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी । जिस बात को वे एक बार समझकर सुन लेते प्रायः वह उन्हें याद हो जाती थी । महात्माओं ने दादूजी महाराज की वाणी सुन्दरदासजी महाराज के सवैये आदि तथा आरती अष्टक नमो नमो सब स्मरण करा दिये थे । आरम्भ में देहली में ही उन्हें संस्कृतशिक्षा का आरम्भ कराया गया. कुछ दिनों के बाद उन्हें जालन्धर में पढ़ने को भेजा गया । उस समय जालन्धर में संस्कृत-अध्यापन की उत्तम व्यवस्था थी । वहां से फिर निश्चलदासजी महाराज बनारस चले गये । उनने पहले व्याकरण का अध्ययन किया पश्चात् न्याय, वैशेषिक, दर्शन तथा वेदान्त का अध्ययन किया । वे इन सभी विषयों के पारंगत पण्डित थे ।

बनारस से अध्ययन कर वापिस लौटने पर वे अपने स्थान किड़होली में निवास करने लगे। अध्ययन के लिये अनेक विद्वान् वहां आने लगे, उनकी ख्याति थोड़े ही दिनों में सर्वत्र फैल गई । राजस्थानस्थित बून्दी राज्य के राजा उस समय महाराज रामसिंहजी थे । वे विद्वानों के परम सत्संगी थे । उन्हें विद्या तथा विद्वानों का व्यसन था । उनने स्वामीजी को बून्दी आमन्त्रित किया । सम्वत् १९१२ के आस पास वे बून्दी पधारे । महाराज रामसिंहजी महाराज निश्चलदासजी की विद्वत्ता से बहुत ही प्रभावित हुये । उनने महाराज से वेदान्तके सैद्धान्तिक ग्रन्थ सुने । उनकी तीव्र इच्छा थी कि वे वेदान्त के आकर ग्रन्थों का रहस्य सम्यग् रूप से समझ जांय । पण्डित निश्चलदासजी महाराज ने महाराजा की इच्छापूर्ति के विचार से हिन्दी भाषा में वेदान्त का उच्च कोटि का ग्रन्थ वृत्तिप्रभाकर बनाया इस ग्रन्थ में वेदान्त का मार्मिक विवरण है । हिन्दी भाषा में इस विषय का कोई

भी ग्रन्थ वृत्तिप्रभाकर की समानता प्राप्त करने वाला नहीं है। इसके मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में भी प्रकाशन हुये हैं। दूसरा ग्रन्थ विचार-सागर बनाया, यह भी वेदान्तके ही विषय का है। इसकी रचना महाराज की सेवा में रहने वाले साधुओं को वेदान्त का ज्ञान कराने के लक्ष्य से हुई। दोनों ग्रन्थ उच्च कोटि के हैं। कठ तथा ईशावास्योपनिषद् पर आपने संस्कृत में वार्तिक की है, वह भी अपने तरीके की एक ही है। इनका अभी प्रकाशन नहीं हुआ है। निश्चलदासजी महाराज इतने प्रौढ विद्वान् थे पर उनका रहन सहन अत्यन्त ही सादा था। महाराजाओं की मान्यता प्राप्त होते हुए तथा अगाध ज्ञान का भंडार अर्जित करके भी उनको अहंकार छू तक नहीं पाया। अपने आचार्य दादूजी महाराज में भी उनकी अपार श्रद्धा थी। वे एकबार बून्दी से लौटते हुए नराणे जयपुर तथा रामगढ आदि शहरों को भी पावन कर गये थे। पंडित मंगलदत्तजी के प्रबल आक्षेप तथा खण्डनात्मक प्रचार के बाहुल्य से रामगढ के दादूपंथी साधुओं के सेवक पोद्दारों ने स्वामी निश्चलदासजी महाराज को आमंत्रित किया था, तदर्थ ही वे पधारे थे। उनके आने पर पण्डितजी शास्त्रार्थ करने को ही नहीं आये। निश्चलदासजी महाराज कुछ दिन रामगढ ठहर वापिस किडहोली को चले गये। सम्वत् १६२० में बहत्तर वर्ष की आयु में आपका स्वर्गारोहण किडहोली ग्राम में ही हुआ। उनकी परम्परा में इस समय महंत रामानन्दजी हैं। स्वामी हरभक्तजी की शिष्यपरम्परामें ही पटियाला का स्थान है। जिसमें प्रसिद्ध महात्मा ठंडीरामजी महाराज हुये थे, जिनने नराणा में दादूजी महाराज का प्रसिद्ध मन्दिर निर्माण कराया। पटियालामहाराज भी इस स्थान की अति मान्यता रखते थे। अब भी यह स्थान मौजूद है। इस तरह बनवारीदासजी महाराज के शिष्य छबीलदासजी की परम्परा में कई शाखायें चलीं। ये सब स्थान तथा शाखायें अब बूढे दल के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऊपर महात्मा नारायणदासजी के तीन शिष्यों का विवरण दिया है। चौथे सबसे प्रमुख बड़े शिष्य महात्मा हरिदासजी थे। आप अपने गुरुजी की तरह भजन ही में लैलीन रहते थे। आप एक स्थान पर अधिक समय तक निवास नहीं करते थे। आपके सुराणी, राणीला व कलानोर के जंगल साधना के प्रमुख स्थान थे। इन्हीं में रहकर आप आत्मचिंतन का आनन्द लिया करते थे।

आपकी वाणी बहुत उत्कृष्ट है। पद, सवैये, कवित्त, साखी, भक्तविड़दा-वली, नसीहतनामा की रचना प्रसिद्ध है। वाणी का प्रकाशन दादूसेवक प्रेस

द्वारा "दादू सेवक" पत्र के विशेषांक रूप में सम्वत् २००२ में हुआ है। आपके प्रसिद्ध बाईस शिष्य हुये हैं। उन्हीं की परम्परा की संज्ञा बड़ी बाईसी छोटी बाईसी नाम से कही जाती है। बाईस शिष्यों में सत्रह एक ओर तथा पांच एक ओर थे। सत्रह की संज्ञा बड़ी बाईसी तथा पांच की प्रणाली की संज्ञा छोटी बाईसी है। इस भेद का कारण है कि कलानोर तथा राणीला में से किस स्थान को प्रमुख माना जाय। हरिदासजी महाराज दोनों ही स्थानों पर विराजते थे। आपका देहावसान कलानोर में हुआ और दाहसंस्कार राणीला में। राणीला में ही स्मृतिरूप में आपकी समाधि बनी हुई है। सत्रह शिष्यों की परम्परा वाले राणीला के स्थान को ही प्रमुख मानते हैं।

महाराज हरिदासजी महात्मा तथा सिद्ध पुरुष थे। उनके अनेकों परचे प्रसिद्ध हैं। उनका नसीहतनामा भी एक परचे के प्रसङ्ग पर बना है। उनके बाईस शिष्यों के नाम तथा स्थानों का विवरण निम्नलिखित मनहर कवित्त से स्पष्ट समझ में आजाता है।

सोरठा—*चेले हैं बाईस, हरिदास गुरु शीश पर।*
उदैराम अग्रहीस, ग्राम नाम तिनके कहे ॥ १ ॥

नन्दराम कलानोर राणीला में केवलदास,
हांसी माहि आत्मराम बोंद चेतराम हैं।
सारंगजी कान्हौर में दूबलधन चरणदास,
हरिनाथ हरि भजै विहाणी जु ग्राम है॥
मनीराम बुवाणी में कल्याण माणकवास,
भाऊजी गागडवास कर्यो गुरु नाम है।
मनोहरजी गुढा में साभर अटलराम,
सहजराम झाझर में रहै आठों याम है॥ १ ॥
तलाव में हेतमदास मलूक उदैराम सर,
परसराम मोखरा में राजी होई रहे हैं।
धामड़ में घासीराम हरण्या में मानदास,
महृजै में नन्दराम छतु छाप लहे हैं॥
दयाराम धर्मदास रामत मे रहें दोऊ,
नेतराम पीपलोद ऐसी मोज गहे हैं।

नाम और ग्राम दोऊ हुये जैसे कहे सोऊ,
उदैराम छन्दबद्ध सत्य सत्य कहे हैं ॥२॥

उपर्युक्त बाईस शिष्योंमे दयारामजी व धर्मदासजीने, जिनका कि उल्लेख भ्रमण करते रहने का है, शायद स्थान नही बाये। इनकी परम्परा भी चली या नहीं यह ज्ञात नहीं। शेष बीस मे से पन्द्रह बडी बाईसी व पाच छोटी बाईसी के स्थान हैं। इनके फिर धीरे धीरे सैकडो स्थान हो गये हैं। पजाब, रोहतक, हिसार, गुडगाव, देहली, गुजरात, मध्यप्रदेश, राजपूताना आदि सभी क्षेत्रोंमे इनका पर्याप्त प्रसार हुआ है। बडी बाईसी मे प्रमुख स्थान राणीला है। उनकी परम्परा में अनेक महात्मा तथा विद्वान् पुरुष होते रहे हैं। इस समय महन्त रामदासजी इस स्थान के अधिपति है। आप सुयोग्य तथा साधु पुरुष हैं।

बडी बाईसी मे भिवानी मे हरिनाथजी की परम्परा में महात्मा मौनीजी अति प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष हुये हैं। उनकी समाधि की अभी तक पूरी पूरी मान्यता है। उस पर प्रति वर्ष मेला लगा करता है। बुवाणी वाले तथा तूहीरामजी वाले सम्पूर्ण वैश्य जन उक्त समाधि को अभी तक गुरुस्थानीय मानते है।

राणीला की परम्परा में ही दादरी के प्रसिद्ध स्थान हैं। नागोर, बेरी, सुरखपुर, हुमायूँपुर में भी इन्ही की परम्परा है। गागडवास मे भाउजी महाराज की परम्परा में सावड तथा दादरी के प्रसिद्ध स्थान बने। सावड में महात्मा रामरिखदासजी बहुत ही उच्च कोटि के साधक पुरुष हुये हैं। आपने अपने साधन काल मे कभी ग्राम मे निवास नही किया, न कभी भिक्षा माग कर भूख की निवृत्ति की। आप अजगरवृत्ति से ही अपना निर्वाह करते थे। स्वत भोजन प्राप्त होने पर ही भोजन किया करते थे। आपके इस नियम से अनेकों बार आठ आठ, दश दश दिन के उपवास होते रहते थे। जंगल का निवास तथा भिक्षा के लिये कही नहीं जाना, यह कितनी कठोर साधना थी। आपने अपना शरीर-त्याग भी अन्त मे अन्नजल का परित्याग कर के किया था। सावड में ही जमनादासजी अतिविरक्त महात्मा हुये हैं। रामरतनजी महाराज प्रसिद्ध चिकित्सक हुये है। दादरी की परम्परा में इस समय स्वामी गिरिधरानन्दजी हैं। ऊपर भी दादरी का उल्लेख हुआ है वह भी ठीक है, क्योंकि दादरी में राणीला के निकासके दो स्थान है। स्वामी हरिदासजी महाराज के केवलदासजी शिष्य थे। ऊपर जिस स्थान का उल्लेख है वह इन्ही केवलदासजी महाराज के समय का है। केवलदासजी के

शिष्य केशवदासजी हुये, केशवदासजी के दो शिष्य हुये उदैरामजी व मोहनदासजी। उदैरामजी उसी स्थान में रहे। मोहनदासजी ने दूसरा स्वतन्त्र स्थान कायम किया। इनकी परम्परा में ही अर्जुनदासजी महाराज अच्छे प्रसिद्ध चिकित्सक हुये हैं। ये हैदराबाद मे चिकित्सा का कार्य करते थे। इनके समय में स्थान की भौतिक उन्नति पर्याप्त हुई। इन्हीं के स्थानापन्न इस समय स्वामी गिरिधरानन्दजी हैं जो कि कुशल चिकित्सक व सम्प्रदाय मे विचारशील व्यक्तियों में गणनीय हैं। दादरी में एक तीसरा स्थान भी है, जो महात्मा कानड़दासजी की परम्परा में भिवानी के स्थान से सम्बन्ध रखता है।

बडी बाईसी मे बुवाणी, जहां मनीरामजी महाराज ने निवास किया था महात्माओं तथा विद्वानों के विचार से, विशिष्ट स्थान है। योगिराज महाराज महात्मा रामस्वरूपजी इसी परम्परा में थे। आपने योग की पूरी साधना की थी। आप जयपुर में भी बहुत समय तक रहे हैं। आपने अपना शरीरपरित्याग जयपुर में ही किया था। महन्त गोविन्ददासजी महाराज के बागमें आपकी समाधि निर्मित है।

पण्डितजी महाराज कृष्णरामजी, जिन्हें कन्हीरामजी भी कहते थे, आपहीके शिष्य थे। आप बहुत उच्च कोटिके विद्वान् थे। महन्त चेतनदासजी महाराज गरीबदासोत, पं० मोतीरामजी, स्वामी नारायण मुनिजी आदि प्रसिद्ध विद्वान् महात्माओं ने आपही से अध्ययन किया था। आपने गीता पर टीका की है। आपने गुरुमन्त्र टीका तथा वेदानुसंधान नामके दो निबन्ध भी लिखे हैं। आपके ही शिष्य परम महात्मा स्वामी गोपालदासजी महाराज थे। जिन्होंने अपने त्याग तथा साधुताके बलसे कुंभों पर छावनी लगाने का काम आरम्भ किया तथा बादूबाग कनखल का "दादू मन्दिर" निर्माण करवाया। आतमरामजी हाँसीमें रहे। इनकी शिष्यपरम्परा का भी फैलाव अच्छा हुआ। हिसार व रामगढ़ के स्थान इन्हींकी परम्पराके हैं। उदयपुर की जमातमें भी इनके कई साधु हैं। हाँसीके स्थानमें अन्तिम महन्त रामदासजी थे। उनके पश्चात् उस स्थानकी स्थिति अच्छी नहीं रही है ऐसा सुननेमें आया है। बडी बाईसीके और भी अनेकों स्थानोंमें अच्छे अच्छे महात्माओंकी परम्परा चलती रही है जिससे सम्प्रदायकी महत्त्व-वृद्धिमें पर्याप्त सहायता पहुंचती रही है।

छोटी बाईसी में भैरण को छोड शेष चारों स्थानों कलानोर बोन्द, कान्हौर व दूवलघनकी पर्याप्त शाखा प्रशाखायें फैली। इन चारों में बोंद के स्थान थोड़े है। बौन्द, वीरजपुरा, हिडाप। इन तीन जगहमे बोन्दकी परम्परा है।

चरणदासजी महाराज दूवलघन विराजे। इनके शिष्य प्रशिष्यों ने अन्यत्र भी अनेक स्थान स्थापित किये। इनके कई स्थान जयपुरके शेखावाटी इलाके में रामगढ, चिडावा, सीकर, मंडेला, बिसाऊ आदि शहरों में भी हैं। पण्डित खेमदासजी तथा मण्डलीश्वर जुगतरामजी इसी परम्परा में हैं। वाणी विशेपज्ञों में गणनीय मण्डलीश्वर रामदासजी भी जो इस समय रिणी (तारानगर में) निवास करते हैं दूवलघन की ही प्रणाली में है।

सारंगदासजी के निवास स्थान कान्हौर की भी प्रणाली बहुत से स्थानों में फैली हुई है। बेरी, कुलताना, डोठी, ममयाना, मण्डाइल वजीदपुर, नाभा व बुरहानपुर में अभी भी इनके स्थान चल रहे हैं। बुरहानपुर में बाबा बसतीरामजी प्रसिद्ध महात्मा हुये हैं। इनके साथ मण्डली भ्रमा करती थीं इसी परम्परा में मौजीरामजी महाराज हुए हैं जो जननेन्द्रिय काटकर भीष्म बन गये थे। वैद्य सहजरामजी प्रसिद्ध चिकित्सक माने जाते थे। इस समय स्वामी गणानन्दजी आयुर्वेदाचार्य कान्हौर में उनके उत्तराधिकारी हैं।

छोटी बाईसी का प्रधान स्थान जिसकी अधिक मान्यता है कलानोर है। महाराज हरिदासजी के शिष्य स्वामी नन्दरामजी जिनने कलानोर में स्थान बनाया स्वयं भी महात्मा पुरुष थे। आपके साथ अनेकों साधु सन्त रहा करते थे। आप सर्वदा कलानोर न रहकर अन्य स्थानों में भ्रमण ही करते रहते थे। पचेरी में आप अधिक समय रहते थे। आपका स्वर्गवास भी पचेरी में ही हुआ वहा आपकी समाधि है। आपके कई शिष्य थे। जिनमें सहजरामजी महाराज भी थे। पचेरी तथा कलानोर के स्थान पर आपके शिष्य तुलसीदासजी आसीन हुये। कहते हैं कि आपने १४ चौदह वर्ष तक खड़े रहकर तपस्या की थी। इनके शिष्यों की संख्या अत्यधिक थी। जिनने विभिन्न नगरों में अपने स्थान स्थापित किये। आपके शिष्य पूर्णदासजी ने त्यागमय जीवन व्यतीत किया। इनके शिष्य रामरिपदासजी हुये जिनने कलानोर के स्थान में ही निवास किया। इन्हीं की परम्परा में कलानोर के [illegible] समय महन्त महाराज मनीरामजी हैं। आप साम्प्रदायिक परिस्थिति [illegible] कि

साहित्य के विशेषज्ञ हैं। आप कुशल चिकित्सक भी हैं। सम्प्रदाय के प्रमुख योग्य व्यक्तियों में आपका गणनीय स्थान है। सम्प्रदाय के उन्नतिशील सभी कार्यों में आपका सहयोग तथा पूरा हाथ रहता है। आप तन, मन, धन से सम्प्रदाय की सेवा में सर्वदा तत्पर रहते हैं। आपके इस स्थान की परम्परा के नाभा, तुलविरछो ललोछी, पचेरी, चिड़ावा, अडीचा, सूरजगढ़, खंडेला, जींदराण, मोखरा व बेरी आदि में अच्छे स्थान हैं। नन्दरामजी महाराज के शिष्य सहजरामजी जिनका ऊपर नामोल्लेख है, अच्छे सिद्ध महात्मा हुए हैं। आपने बीकानेर रतनगढ़ देशनोक में स्वतन्त्र स्थान स्थापित किये। आपने "सुरतिविलास" नामक ग्रन्थ की भी रचना की है जो कि साखी पद सवैये कवित्त आदि विविध छन्दों में हैं। उक्त ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि आप सुपठित व अच्छे कवि भी थे। रतनगढ़ नगर के विषय में भी यह किम्वदन्ती है कि आपही की आज्ञा से बीकानेर के महाराजा ने यह नगर बसाया था। आपके पीछे की तीसरी पीढ़ी में विजयरामजी महाराज बहुत प्रसिद्ध चिकित्सक हुये। इन्हीं की दूसरी पीढ़ी में स्वामी लालदासजी हुए तथा किसनदासजी हैं। लालदासजी महाराज ख्यातनामा चिकित्सक थे। किसनदासजी महाराज अब हैं ही जिनने कोलायत में प्रसिद्ध दादूमन्दिर का निर्माण कराया है। ये सब भी कलानोर की ही प्रणाली में हैं।

खंडेला के स्थान में विख्यात पण्डित महानन्दजी महाराज हुये हैं जिनका एकबार स्वामी दयानन्दजी के साथ हरिद्वार में वादविवाद हुआ था। आप सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ ज्ञाता तो थे ही पर व्याकरण के अति प्रौढ़ विद्वान् थे। आपके ही शिष्य स्वामी दयानिधिजी भिषगाचार्य हैं। करीब पैंतीस वर्ष से ऋषीकेश के बाबा कालीकमलीवालों के विद्यालय, रसायनशाला तथा औषधालयों का आप संचालन कर रहे हैं। इस तरह बनवारीदासजी महाराज की परम्परा में बूढादल, बड़ी बाईसी, छोटी बाईसी की त्रिधाराने उतराध, राजस्थान, पंजाब, मध्यभारत, गुजरात आदि कई प्रदेशों में दादूजी महाराज के सदुपदेशों का प्रसार कर अपनी सार्थकता को सम्यक्तया सिद्ध किया है।

इधर के पचास वर्षों में बहुत परिवर्तन हुआ है। फिरभी उतरते हुए जमाने में भी अनेकों व्यक्ति व अनेकों स्थान इस वर्ग के अति सम्माननीय हैं। उतराधे व स्थानधारियों का एक वर्ग माना जाता है। तीन थांभे ये, दो खालसे के और

एक बड़े सुन्दरदासजी का इन ६ थाभों के सिवाय और जितने थामे हैं वे सब स्थानधारियों के हैं। वर्तमान समय में रहे हुए कुल पच्चीस छब्बीस थाभों में छः को छोड़ बाकी सब इन्हीं के हैं। इनके स्थान प्राय सारे राजपूताने में हैं। रहन सहन इन दोनों की अब एकसी ही है। सभी प्राय धोती, चोला, कोट आदि पहनते हैं तथा शिर पर भगवा साफा, यही इनका इस समय का प्रमुख वेष है। स्थानधारी होने के कारण इनने अब लेन देन, कथा वार्ता, वैद्यक आदि कई काम अपना लिये हैं। उतराधो की तरह शेष थाभों में भी बहुत बड़े २ सिद्ध पुरुष, रचनाकार, महात्मा, योगी, त्यागी, तपस्वी बहुत बड़ी संख्या में हुए हैं जिनका विवरण एक स्वतन्त्र लेख में ही किया जा सकेगा। इसमें उनका केवल नामोल्लेखमात्र किया गया है।

१८—जमातें व नागे

सम्प्रदाय का यह वर्ग अन्य वर्गों से विशेषता रखता है। यह महाराज के शिष्य बड़े सुन्दरदासजी की ही प्रणाली का है। पीछे लिख आये हैं कि सुन्दरदासजी महाराज क्षत्रिय थे। उनका पूर्वनाम भीमसिंहजी था। स्वामीजी से उपदेश लेने पर इनने अपना नाम सुन्दरदास रक्खा। ये तीव्र भावना से विरक्त हुए थे, अत इनने उपदेश ग्रहण के बाद साधना में ही अपना सब समय लगाया। अलवर स्टेट में घाटड़ो नाम से एक जगह है, जहाँ पहाड़ी दर्रे और पहाड़िया हैं। इन्हीं पहाड़ियों में एक पहाड़ी पर आपने कठोर साधना की थी। सुन्दरदासजी पूर्ण योगी थे। उन्होंने योगाभ्यास के द्वारा ही आत्मानुभूति की थी। उनने न कहीं भ्रमण किया और न उपदेश आदेश। उनके प्रह्लाददास जी शिष्य हुए। प्रह्लाद-दासजी के नौ शिष्य थे। उनमें बड़े (हापाजी हरिदासजी) थे। ये वीतराग त्यागी महात्मा थे। इनके लिये भक्तमालकार राघवदासजी लिखते हैं कि ये कछवाहे राज-कुमार थे। ये महाराजा मानसिंहजी के भाई और राजा भगवन्तदासजी के पुत्र थे, ऐसा परम्परा से सुना जाता है। सुन्दरोदय में मंगलदासजी ने तेरहवी कोटड़ी का इन्हीं को लेकर वर्णन किया है। महाराजा मानसिंह ने इन्हें आमेर बुलाया और आग्रह किया था कि वे यहीं विराजें। पर इनने यह बात स्वीकार नहीं की। पर उनके आग्रह के कारण अपने शिष्य श्यामदासजी को आमेर छोड़ आये। वे उनके निर्देश से आमेर ही रहे। आमेर रहने के कारण इनकी परम्परा आमेर में चली, वही बाद में जयपुर आई। इन्हीं की प्रणाली में निंवाई के महन्तजी

हैं। उधर प्रह्लाददासजी महाराज घाटड़े विराजते थे। उनके ब्रह्मलीन होने पर उनकी चद्दर केशोदासजी ने ओढी। हरिदासजी महाराज का शरीर हिण्डौन में शान्त हुआ, अतः ऊधोदासजी हिन्डौन में रहे। भक्तमालाकार राघोदासजी भी हरिदासजी के ही शिष्य थे। वे सिद्ध पुरुष व कवि भी थे। वे स्वतन्त्र रूप से करौली में रहे। वहांसे करौलीके राजा इन्हें अपने यहां ले गये। इस तरह प्रह्लाद-दासजी के पश्चात् उनके थांभेमें कई धारायें चल पड़ीं। एक तो प्रह्लाददासजी के स्थान में ही केशोदासजी की, जिसकी अब तक चली आने वाली पीढ़ी घाटड़े में मौजूद है। इसकेअतिरिक्त तीन प्रणालियाँ प्रह्लाददासजीके शिष्य हरिदासजीके शिष्योंसे चलीं। श्यामदासजी. ऊधोदासजी, व राघोदासजी। तीनों ही हरिदासजी के शिष्य थे। श्यामदासजी आमेरमें थे वहीं उनकी परम्परा चली। ऊधोदासजी हिण्डौन में थे, उनकी परम्परा अभी तक वहां चल रही है और राघोदासजीकी परम्परा करौली में है।

इन चार प्रणालियों में तीन का रूप उतना विस्तृत नहीं हुआ जितना आमेर की प्रणाली का; या कहिये श्यामदासजी का परिवार जितना बढ़ा उतना न तो घाटड़े की परम्परा में बढ़ा और न ऊधोदासजी व राघोदासजीकी परम्परामें बढ़ा।

श्यामदासजी के पश्चात् उनके शिष्य चतरदासजी हुए। इनके कई शिष्य हुए। उनमें उनके पश्चात् केवलरामजी ने चद्दर ओढ़ी। नागों या जमातों के वर्तमान रूप के ग्यारह अखाड़ों के ये ही मूल पुरुष हैं। ये सुन्दरदासजी की छठी पीढ़ी में थे। इनके चार शिष्य हुए-जयरामदासजी, हृदयरामजी, मस्तरामजी व प्रेमदासजी। जयरामदासजी के आशानन्दजी शिष्य हुए। आशानन्दजीके सोलह शिष्य थे। उनमें से दो शिष्य सांवलदासजी व सन्तोषदासजी के नाम से दो अखाड़े चले। सन्तोषदासजी के शिष्य सूरतरामजी हुए; इन के नाम से तीसरा अखाड़ा चला। ये तीन अखाड़े आशानन्दजी के परिवार में हुए। इनकी संज्ञा आशावत हुई। ये ही तीनों अखाड़े आगे जाकर जमात लालसोट मे परिणत हुए।

केवलरामजी के दूसरे शिष्य हृदयरामजी थे। हृदयरामजीके बारह शिष्य हुए। बड़े अमरदासजी तथा सबसे छोटे लालदासजी। अमरनाथजी तपस्वी महात्मा थे। उनकी वृत्ति विरक्तिमय थी। उन्होंने चद्दर न ओढ़ कर सब से छोटे लालदासजी को हृदयरामजी की चद्दर ओढ़ा दी।

लालदासजी के तीन शिष्य हुए-गङ्गारामजी, मुकुन्ददासजी व तुलसीदासजी। गङ्गारामजी ने लालदासजी की चद्दर ओढी। इनके नाम से बडा अखाडा रहा। मुकुन्ददासजी इनके दूसरे शिष्य थे। इनके नाम से मुकुन्ददासजी का अखाडा चला, जिसमें जमात चानसेन, मोरडा व महावीर हैं।

अमरदासजी के दो शिष्य हुए। हरकेशदासजी व नानूरामजी। हरकेशदासजी के छ शिष्य हुए—लिखमीदासजी, बलरामदासजी, हरिदासजी, गिरिधरदासजी, मनीरामजी, व परसरामजी।

बडे लिखमीदासजी ने चद्दर न ओढ छोटे मनीरामजी को चद्दर ओढाई। लिखमीदासजी से मनीरामजी तक पाचो के नाम से पाच अखाडे हुए। छठे परसरामजी के नाम से अखाडा तो नही चला पर उनके शिष्य प्रशिष्य थाँभायती कहलाये।

अमरदासजी व लालदासजी के बीच के दश शिष्य और रहे। इनमें से महजरामजी, कल्याणदासजी के नाम से झाग वचूण बिचोलियों का अखाडा चला। इस तरह केवलरामजीके दो शिष्योंके परिवार से ग्यारह अखाडों का नाम चला।

तीसरे शिष्य मस्तरामजी से कोटडे वालों की परम्परा चली। इनकी सज्ञा कोटडा है। यह अखाडा नही गिना जाता। लालदासजी के तीसरे शिष्य तुलसीदासजी थे। इनके परिवार की सज्ञा "राहोरी" हुई। इस तरह तीन आशावत अखाडे और आठ हदयावत अखाडे कहलाते हैं। कोटडा राहोरी ये दो थोक जुदे हैं। सब जमातों या सम्पूर्ण नागों का इनमें ही समावेश होता है। केशोदासजी, ऊधोदासजी, रामोदासजी की परम्परा इन अखाडोंमें नही है। वैसे वे भी सुन्दरदासोत ही हैं।

प्रह्लाददासजीके नौ शिष्यों में से हरिदासजी और केशोदासजीकी प्रणाली का निर्देश तो आमेर और घाटडा से हुआ। शेष सात शिष्य रहे उनकी प्रणाली भी चली। आरम्भ में सभी थामेवाले विरक्त ही थे। स्थान आदिका प्रपञ्च नही था। अत ये सभी भ्रमण करते रहते थे। समूहके रूपमें घूमनेवालोंको जमातके नामसे पुकारा जाता है। जिस तरह वैरागी आदि सम्प्रदायोंकी जमातें घूमती थी उसी तरह ये भी घूमने लगे। इनकी भी सज्ञा समूह में घूमनेके कारण जमात कहलाने लगी। ठीक ठीक तो यह निश्चित मालूम नही होता कि जमातोंके भ्रमणका क्रम कबसे आरम्भ हुआ, पर सुन्दरोदयके विवरण से यह प्रतीत होता

है कि इनकी भी जमातें घूमती थी। कुम्भ आदिके चढ़ावों पर अन्य सम्प्रदायों की तरह इनकी भी जमातें जाया करती थीं। संन्यासियों और वैरागियों में आपसी झंझट रहता था। अतः उज्जैन, नासिक के कुम्भों पर इनमें आपसी लड़ाइयें भी होजाती थीं। ऐसी लड़ाइयोंमें नागे दादूपंथियों की जमातों ने वैरागियों का साथ दिया था। जमातके रूपमें घूमनेके कारण ये शस्त्र भी रखते थे। जमातों का यह रूप तो था सामूहिक, पर आगे जाकर राज्याश्रय पाने पर स्थानविशेष के आश्रय के नाम पर जमातें बनीं। प्रहलाददासजीके बादसे, जिनका कि समय आनुमानिक सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जाता है, अठारहवीं शदी तक इनका यही रूप मुख्य रहा। जो स्थानविशेष में रहे वे तो एक जगह रहे बाकी प्रायः जमातके रूपमें घूमते रहे। इनका जयपुर राज्यके साथ पहिले पहल किस सम्वत् में सम्बन्ध हुआ, इसका अभी तक निश्चित पता नहीं लगा। क्योंकि, जमातों ने तो कभी इस ओर ध्यान दिया नहीं कि इन बातोंको लिखना चाहिये। राज्य में जरूर उल्लेख होगा वह उपलब्ध नहीं हुआ।

वैसे तो महाराज दादूजी के समय से ही इस राज्यका इनके साथ सम्बन्ध चला आया है। हापाजी कछवाहे थे और राजकुल के थे। पर वह संबन्ध उन तक ही रहा होगा। इनके सामूहिक रूपसे राज्यके सम्बन्ध का उल्लेख सुन्दरोदय में "कामा" का मिलता है। कामा जयपुर भरतपुर राज्यका सीमास्थान था। किसी समय जाटोंके साथ राज्यका संघर्ष हुआ, उस समय इनकी जमातों को कामामें रखा गया था। यह करीब अठारहसौ की बात है। इसके पश्चात् यह सम्बन्ध बराबर चलता ही रहा। वैसे स्थायी रूपसे तो उस समय ये रहे नहीं, पर जबभी राज्यको जरूरत होती इन्हें सूचना मिलने पर ये आजाते थे। राज्यने इनसे प्रायः युद्धों में ही सहायता ली। जब इस तरह कोई संघर्ष का समय होता ये आजाते, और काम खतम होनेपर ये पुनः उसी तरह घूमने निकल जाते। उन्नीसवीं शताब्दी का आधा भाग इसी तरह व्यतीत हुआ। इस समय में जयपुरकी तरह ये ग्वालियर, उदयपुर, जोधपुर आदि अन्य रियासतों मे भी कुछ कुछ रहे हैं, जिनका उल्लेख ग्रन्थान्तरों में मिलता है। रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा द्वारा लिखे हुये उदयपुर, जोधपुर राज्यके इतिहासमें भी तीन चार जगह इनका नाम आया है। सम्वत् १८२६ रतनसिंह की सहायता में, सम्वत् १८६२-६४ में जोधपुर महाराजा मानसिंहजी की तरफसे भी इनके लड़नेका विवरण है।

इस से अनुमान होता है कि कामा में ये इससे पहले रहे हैं। और वह समय अनुमान से उन्नीसवीं शताब्दी का आरम्भ ही कहा जा सकता है। सबसे बड़ी लड़ाई इनने खाटू में जयपुर राज्य की ओर से सं० १८३६ में लड़ी। उस समय वहां अखाड़े के अधिपति स्वामी मङ्गलदासजी थे। भड़ौच या भटोच के आधिपत्य में शत्रु की सेना जयपुर पर चढ़ कर आई थी। उसको खाटू में रोका गया। यह प्रकरण बहुत लम्बा है इसलिये इसका उद्धरण इस सम्बन्धी स्वतन्त्र लेख में किया गया है।

वहां इन नागों के सरदारों के साथ स्वामी मङ्गलदासजी ने शत्रु का सामना किया। नागों की जितनी संख्या उस समय थी सभी उस लड़ाई में सम्मिलित हुई थी। स्वामी मङ्गलदासजी इस युद्ध में शिर उतार कर लड़े थे। ये बड़े शूरवीर पुरुष थे। शत्रु की फौज का बड़ी बहादुरी से संहार किया। शत्रु परास्त तो हुआ, पर स्वामी मङ्गलदासजी व उनके साथ के बहुत आदमी इस युद्ध में काम आये। ऐसा विवरण मङ्गलदासजी ने सुन्दरोदय में लिखा है।

आधुनिक समय में जो इतिहास की पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें इसका विवरण नहीं आया है। इसका कारण क्या है यह समझ में नहीं आता।

इस युद्ध के पश्चात् जो साधु बचे सुनने में आता है कि वे कुछ समय तक जयपुर में ला कर रक्खे गये थे। जयपुर सरकार ने ही उनका संरक्षण किया था।

साधु युद्ध में राज्य की सहायता करते थे तथा आक्रमणों में राज्य की रक्षा करते थे। जयपुर राज्य सम्मान तथा अर्थ द्वारा इसका बदला चुकाया करता था। कामा में इनकी छावनी बनी, तबसे लेकर सम्वत् उन्नीससौ तीस से पहिले तक यानी अट्ठारहसौ के आरम्भ से उक्त सम्वत् तक एकसौ तीस वर्ष में इन्होंने जयपुर राज्य के लिये अनेकों छोटी बड़ी लड़ाइयें लड़ी थीं।

इसके वास्तविक प्रमाण तो राज्य के पुराने कागजों में होंगे, पर साधुओं को समय २ पर जो आज्ञापत्र, भेंट तथा उपहार प्राप्त हुए उनसे भी इनकी यथार्थता सिद्ध होती है। सन ५७ के गदर के समय भी जयपुर राज्य ने इनका उपयोग अंग्रेजी सल्तनत की रक्षा के लिये किया था। साधुओं की तीन टुकड़ियां राज्य की अन्य फौज के साथ देहली भेजी गई थीं। जयपुर राज्य को इस सहायता के प्रतिफल में कोटकासिम का परगना महाराजा रामसिंहजी के समय में अंग्रेजो

द्वारा प्राप्त हुआ था। साधुओं को भी किलंगी, सिरोपाव तथा एक सनद दी गई थी।

खाटू की लड़ाई से बचे साधु जो वर आये थे वे कितने दिन जयपुर रहे इसका ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ है। पर उस धक्के से सम्हलने में पन्द्रह बीस वर्ष का समय लग जाना तो महज बात है। अट्ठारहसौ बासठ तथा चौसठ में ये जोधपुर लड़ने गये थे। इससे सिद्ध होता है कि उस समय ये पुनः अपनी स्थिति सबल बना चुके थे।

जोधपुर से लौटने के पश्चात् जयपुर राज्य ने शायद यह सोचा कि इनको अब स्थायी रूप से यहीं रखना अधिक उपादेय होगा। क्योंकि उन दिनों भारतमें शासन की स्थिति बड़ी डाँवाडोल चल रही थी। मुसलमानों के साम्राज्य को समाप्त कर देश को स्वतन्त्र करने का पूरा प्रयास मरहट्ठों द्वारा चल रहा था। इधर अंग्रेज धीरे धीरे अपना पंजा देश के वक्षःस्थल में दृढता से गाड़ने में संलग्न थे।

अंग्रेजों ने आपसी युद्धों द्वारा भारत के इन प्रादेशिक राज्यों को दुर्बल कर अपने को सत्तारूढ करने का निश्चय कर लिया था। वे एक से दूसरे प्रदेश में अपनी सेनाको सहायतार्थ भेज बदले में विपुल सम्पत्ति या देश का कुछ भाग प्राप्त कर लेने में संलग्न थे। मुसलमानों की शासन स्थिति दिन दिन दुर्बल होती जा रही थी। मरहठों का बल भी आपसी झगड़ों के कारण क्षीण हो रहा था। राजपूत भी आपसी संघर्ष तथा मुसलमानोंके पक्षविपक्षमे अपनी शक्ति नष्ट करते जारहे थे। राजपूतोंकी अपेक्षा तो उस समय मरहट्ठे ही सबल थे। देशकी फौजों ने राजस्थानमें पर्याप्त आतङ्क उत्पन्न कर दिया था। ऊपर जो खाटूके युद्धका वर्णन है वह मरहट्ठों के साथ ही हुआ था। उसमें जिस नाम का उल्लेख हुआ है वह उचित नहीं है।

देशकी इस अनवस्थित स्थिति में राज्योंके रूप निरन्तर परिवर्तित हो रहे थे। जयपुर राज्यके रूप में भी ये परिवर्तन चालू थे। छोटे छोटे भोमियों व जागीरदार अपनी अपनी जागीर बनाने मे संलग्न थे, बाहरी आक्रमणका भय बराबर सामने रहता था। इस स्थितिमें जयपुर राज्य का नागे साधुओंकी जमातोंको वहीं रखनेका निश्चय सामयिक था। जयपुर राज्यमें इनका सबसे पहिला निवास 'रामगढ़" में हुआ। रामगढ़ दांताके पास है। इस ओर इनको रखने का शायद यही विशेष कारण हो कि इस प्रदेश में राजपूतों की स्वतन्त्र हलचल अधिक चल रही

थी। रामगढमें इनको रखने से उधर के क्षेत्र में जो राज्यविरोधी घटनायें प्रतिदिन घटित होती थी उनमें पर्याप्त कमी होगई। आवश्यकतानुसार ये रामगढ में गड़बड़ी के क्षेत्र में जाया करते और गड़बड़ करने वाले गिरोह का छिन्न भिन्न कर आते थे।

एक स्थान पर जब सब रहने लगे तब कुछ आपसी मतभेदों की उत्पत्ति भी अनिवार्य थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्वत् १८६० के आस पास रामगढ से अधिकांश साधु उदयपुर आगये जोकि लोहागरके पास एक बड़ा कस्बा था और अब भी है।

इधर जयपुर राज्यके दक्षिणमें इस समय जो डिग्गी ठिकाना है उसके ठाकुर मेघसिंहजीने इस ओर अपनी हुकूमत जमाने का प्रयास प्रारम्भ कर रखा था। उनने इस ओरके क्षेत्रमें पर्याप्त आतङ्क उत्पन्न कर दिया था। इनकी हलचलों को रोकने के लिये जयपुर सरकार ने नागे साधुओं की जमातका एक भाग इस ओर भी भेजा, वे डिग्गी और मालपुरे के बीचमें चानसेन कसबे के पास आकर ठहरे, वहीं उनने अपनी छावनी डाली। नागोंकी जागरूकता तथा तत्परता ने मेघसिंहजीकी बढती हुई कामना को समाप्त कर दिया। इस तरह जयपुर राज्यके दोनों ओर उत्तर पश्चिम तथा दक्षिणमें नागे साधुओंके दो दल स्थायी रूपसे रहने लगे।

अवशिष्ट साधु भी कुछ समय पश्चात् रामगढसे उदयपुर आगये। इस तरह रामगढ की जमात अब उदयपुर में निवास करने लगी। इधर दक्षिण में चानसेन की जमात की स्थापना हुई—चानसेन से ही जमातों के प्रमुख स्थानीय महन्त जो कि नागोंके आदि प्रवर्तक श्यामदासजी की परम्परा में थे और जिन्हें जयपुर राज्य ने माढू के युद्ध के लिये तथा जोधपुर राज्य ने सम्वत् १८६२ ६४ की सहायता के लिये पुरस्कृत किया था, सम्वत् १६०० के आरम्भ में चानसेन से निवाई कस्बे में चले आये, उनके साथ जो साधु आये उन्होंने निवाई में छावनी डाली, इस तरह निवाई की जमात की स्थापना हुई। एक भाग जयपुर से दक्षिण पूर्व में कस्बा लालसोट में रहा जिससे जमात लालसोट बनी। सवाई माधोपुर तथा महावीर में भी राज्यकी आवश्यकता के लिये कुछ नागे साधु रखे गये थे, आगे ये भी जाकर जमातें कहलाने लगी।

दादूपंथी साधुओंकी तरह ही निंबार्क साधुओं की भी एक जमात जयपुर राज्य की सहायता में भाग लिया करती थी उसकी स्थायी स्थिति नीम के थाने में की गई–

इस तरह जयपुर राज्य में राज्य की सहायता के लिये नागों की इन सात जमातों की प्रसिद्धि हुई।

एक स्थान पर जमकर रहनेके कारण इनने उस समय के बन्दूक, तलवार, भाला, छुरी, फरसा, बर्छी आदि शस्त्रोंके विविध प्रकारके प्रयोगोंमें पर्याप्त दक्षता प्राप्त की। शस्त्राभ्यास तथा मल्लविद्या के लिये सभी जमातों में अखाड़े स्थापित हुए। उनमें उभय प्रकारकी विद्याओं के अभ्यासकरने का दृढ़ नियम चालू कर दिया था। उस स्थिति से उस समय इनमें शस्त्राभ्यास तथा मल्लविद्याके अनेकों महात्मा बहुत ही दक्षतावाले हुए। जमातों में शिष्य बननेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये खांडा, पट्टा, बन्दूक का निशाना, सेल के हाथ तथा लकड़ी, डांड, पट्टा आदि उभय प्रकार की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था। इन कार्योंके सतत अभ्यास से सभी दल यानी सभी जमातें शस्त्रविद्या में अच्छी उन्नत हो चुकी थीं।

राज्य ने जब स्थायी रूप से इनका सहयोग लेना आरम्भ किया तो उसने उसके बदले कुछ आर्थिक सहायता देना भी आवश्यक समझा और तदनुसार संवत् १८५७ के कार्तिक में जयपुर राज्य का पहिला आज्ञापत्र महन्त सन्तोष-दासजी के नाम ५५००) रुपये का माहवारी सहायता देने का जारी किया गया। महन्त सन्तोषदासजी के साथ उस समय ३१०८ व्यक्ति थे। हाथी १, ऊंट २०३ तथा १६० घोड़े, ऐसे ३६४ वाहन उनके साथ थे। कार्तिक सुदि १५ को यह आज्ञापत्र जारी किया गया।

दूसरा आज्ञापत्र महन्त काशीदासजी के नाम से मार्गशीर्ष बदि ६ संवत् १८५७ को १३) रुपये रोज का जारी किया गया। इनके साथ २६० व्यक्ति थे।

सबसे पुराना राज्य का आज्ञापत्र सम्वत् १८२८ का है, जिसमें स्वामी गंगारामजी के नाम पर २४००) रुपये माहवार देने का निर्देश है। गंगारामजी के साथ उस समय ७०० व्यक्ति थे, घोडे २१ तथा ऊंट ५ थे। यह संख्या राजकीय आज्ञापत्र में ही उल्लिखित है। उन आज्ञापत्रों की यथावत् नकल यह है:--

महाराज सवाई प्रतापसिंहजी के हुकुम से पंच भंडारियान जमात हाय दादूपंथी, आसामी ३११६, महन्त संतोषदासजी वगैरा ८, आसामी ३१००, भंडारी रूपदासजी वगैरे आसामी ८, हाथी १, घोड़ा सवारी तथा पड़तल के १६०,

१६ कालज परिवर्तन—

दादूजी महाराज, जिनने कि अपनी निर्गुण साधना द्वारा वास्तविक मानवीय आदर्श का ज्वलन्त उदाहरण कार्य द्वारा सामने रखा था अपने पीछे सम्प्रदाय चलने की इच्छा स्वप्न में भी क्यों करते ? उनके स्वकीय कथनों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे विभिन्नताओं का जन्म देने वाली सभी प्रणालियों के प्रतिकूल थे।

पर परम्परा का चलना शायद प्राकृतिक नहीं है तो कालज अवश्य है। यही कारण है कि दादूजी के पश्चात् उनकी परम्परा का क्रम जारी हुआ और वह आज चार शताब्दी होनेको आई बराबर चल रहा है। दादूजी के जीवनकाल में ही अनेक योग्य साधक उन के पास आ जुटे थे। उनने अपना आपा परित्याग कर दादूजी द्वारा निर्देश किये गये विचारों पर ही अपने जीवनको ढालना आरम्भ कर दिया था। वे उनके साथ रहे तो तथा उनसे दूर रहे तो चले उसी मार्ग पर जिसकी प्रेरणा उन्हें दादूजी महाराज से प्राप्त हुई थी। जिस तरह सभाओं, समाजों तथा क्लबों की स्थापना आजके युग में प्रचलित है उसी तरह उस समय भी महात्माओं तथा योग्य विचारकोंके अनुयायी उन्हीं के अनुसरणमें अपने अपने वर्ग निर्माण करते थे। दादूजीमहाराज के ब्रह्मलीन होने पर उनके शिष्यों तथा साधकवर्ग ने भी अपना एक वर्ग स्वीकृत किया जो स्वत ही दादूजी के सम्पर्क में आने तथा उनकी विचारधारा को अपनानेसे बन गया था। वह वर्ग अपने उपदेष्टा या प्रेरणा देने वाले के सिद्धान्तों का अनुगमन कर अपना मानवीय कर्तव्य पूरा करने में संलग्न था। वही वर्ग धीरे धीरे दादूपंथी सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित होगया।

दादूजी के पश्चात् करीब एक शताब्दी से अधिक समय तक अर्थात् सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा अठारहवीं शताब्दी के पूरे भाग में दादूजी के सुझाये गये मार्ग पर ही उनका अनुयायिवर्ग दृढता से चलता रहा। दादूजीने आध्यात्मिक स्तर पर जीवनयापन करने का एक स्वतन्त्र मार्ग अपनाया था जिसका प्रचलन था प्रारम्भ कबीर से हुआ था। दादूजी ने जीवन में शील, संतोष, सचाई सेवा, निरभिमानता तथा त्याग को आधार बना कर आध्यात्मिक स्तर पर साम्यवाद का व्यावहारिक रूप स्थापित किया था। दादूजी ने धर्म, जाति तथा वर्ग के भेद से सर्वथा अपनेको बचाने का जोरदार उपदेश दिया था। न केवल उपदेश प्रत्युत उसी पर

स्वयं चलकर उसका आदर्श मूर्त रूप सामने रक्खा था। उनके अनुयायियों ने उन्हीं विशेषताओं को अपने जीवन में ढालने का सतत प्रयास किया और वे इसमें करीब १५० वर्ष तक सफलता प्राप्त करते रहे।

शायद हम अब यह सोचने लग गये हों कि जीवन की वास्तविकता या सफलता उच्च गुणों पर ही अवलम्बित है न कि अन्य आधारों पर। भाषाज्ञान, प्रवचननैपुण्य, सज्जित वेषभूषा से ही समाज आगे बढे या समाज की समुन्नति हो यह निरर्थक सिद्ध हुआ है। एक सादगी वाला मनुष्य सचाई या शील पर दृढ है तो उसका प्रभाव समाज पर क्या और कैसा होगा यह मनोवैज्ञानिक स्थिति से ही ठीक ठीक समझा जा सकता है। समाज को बल उन्हीं मनुष्यों से मिलता है जिनका चरित्र दृढ है, वचन में सत्यता है, व्यवहार निष्कपट है, जीवन निरभिमान है, सेवा की वृत्ति है, संग्रह का अभाव है तथा पक्षपात को स्थान नहीं है। शिक्षा का अर्थ ही है जीवन की वास्तविकता को समझना। यदि जीवन में बनावट का ही दौर दौरा है तो उस शिक्षा को शिक्षा नाम से कहना गलत है। आज यदि हम आंख खोलकर देखें तो ज्ञात होगा कि जहां आज से पचास वर्ष पहिले आधुनिक शिक्षा का अनुपात एक दो प्रतिशत ही था, उस समय सामाजिक जीवन का धरातल कितना शुद्ध तथा स्वाभाविक था। आज हमारा देश पूर्वापेक्षया अधिक शिक्षित है और शिक्षितों का प्राधान्य है बड़े बड़े शहरों में। जरा उन शहरों के जीवन को तटस्थ होकर देखिये कि उस शिक्षित समुदाय की दैनिक स्थिति किस तरह अनवस्थित व अनियमित चल रही है तथा उनके व्यावहारिक जीवन ने समाज की शृङ्खला को किस तरह अस्तव्यस्त करने में सबसे अधिक भाग अदा किया है।

स्कूलों के अध्यापक, पुलिस के अधिकारी, शासन विभागों के कर्मचारी, अस्पताल, पोस्ट आफिस, रेल तथा आफिशियल्स कार्यकर्ताओं के जीवन का सचाई, निरभिमानिता तथा कर्तव्यनिर्वाह की कसौटी पर परीक्षण करिये और सोचिये कि ये पढ़े लिखे मनुष्य, जिनकी संज्ञा शिक्षित है जीवन की वास्तविकता को समझने तथा व्यवहार में उसको ढालने में कहाँ तक सफल हुए हैं। इसका परिणाम क्या होगा यह बताने की आवश्यकता नहीं। जो दुरवस्था हमारे आजके सामाजिक जीवन की हो रही है वह किसीसे छिपी हुई नहीं है। उनके मूलकारण कौन हैं ? क्या रूढ़ि के पोषक या अन्धयुग के अनुयायी ही इस सारी दुरवस्था के कारण

है ? आप चाहे यह कह सकें या इसका समर्थन कर सकें पर बात ऐसी नहीं है। वास्तविक अपराधी वे ही हैं जो शिक्षित हैं, प्रगतिशील हैं तथा समाजसुधार की आड रखने वाले हैं। जीवन स्वयं एक अप्रत्यक्ष वातावरण का जनक होता है। एक सचाई को दृढता से पालन करने वाला व्यक्ति अपनी एक ही विशेषता से तथा समाज में अपने आदर्श व्यवहार से एक नयी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। सचाई अपने जीवन को उन्नत करती है इसी तरह वह उसके आस पास के मानव-समाज में भी अलक्षित भावना का प्रवाह बहाती रहती है। आप हम सभी मानते हैं कि एक स्वच्छ हवा तथा रोशनी को निर्मुक्त प्रवेश देने वाला स्थान सदा ही स्वास्थ्यप्रदान करने में सहायक होता है जब कि उससे प्रत्यक्ष क्रियात्मक कोई सहयोग नहीं मिलता। मुहल्ले में एक छोटा सा स्वच्छ उद्यान जीवन का कितना सहायक है इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं।

कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य का जीवन जितना ही स्वाभाविक व उन्नत होगा वह उतना ही समाज-निर्माण में सफल भागीदार रहेगा। दैवी सम्पद्मय जीवन का भारतीय संस्कृति में इसी लिये महान् स्थान रखा गया है। जीवन में त्याग तथा संग्रह ये दो स्थितियां है। संग्रह में त्यागमय जीवन ही अधिक उपादेय सिद्ध होरहा है। मिथ्या और सचाई, अहंकार और निरभिमानिता, शील और आचरणहीनता, द्वेष और प्रेम, स्तुति और निन्दा, संकीर्ण भावना और व्यापक भावना के द्वन्द्वों में समाज के लिये कौन विशेष उपयोगी है ? इसमें सबकी यही राय होगी कि गुणों और दोषों में से गुणों का ही स्थान जीवन के लिये तथा समाज के लिये अधिक उपादेय है। दोष दोष ही हैं। इसीसे आसुरी सम्पद् को जीवन तथा समाज के लिये अहितकर कहा गया है।

दादूजी के अनुयायियों ने, अपने उपदेष्टा के आदर्श के अनुसार, अपने को चला कर अपने जीवन को सुखमय तथा सफल बनाया, साथ ही अपने आस पास के समाज को भी अपने व्यावहारिक जीवन द्वारा प्रबल प्रेरणा प्रदान की।

धर्म, वर्ण, जाति तथा सम्प्रदाय से मानव मानव में भेदवृत्ति को न पनपने देना समाज का साधारण हितसाधन नहीं है। यदि उनके आचरण से विभिन्न धर्म, विभिन्न वर्ग के मनुष्य एक दूसरे की भावना के लिये सहनशील बने तो वह एक महान् सफलता थी जिसको कि सच्चा साम्यवाद कहा जा सकता है। अठारहवीं

शताब्दी तक दादूजी द्वारा स्थापित की हुई यह जीवनधारा निर्द्वन्द्व रूप से संचालित होती रही।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ के पश्चात् उसके अपरिग्रह के क्रम में कुछ कुछ दरार पैदा हुई, समुदाय में कुछ व्यक्ति परिग्रह की ओर प्रवृत्त होने लगे, पके हुए फल में कहीं से भी गलने का क्रम आरंभ होने पर फल की स्थिति बिगड़ ही जाती है। परिग्रह के साथ उसके सहयोगी व सहायक अनुबन्धी भी आते ही हैं। जब परिग्रह का आरंभ हुआ तो एक जगह रहने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। एक स्थान पर रहने से धीरे धीरे त्याग, शील, संतोष और सचाई में कमी आने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में उसका प्रवेश साधारण ही हुआ, पर ज्यों ज्यों पीछे से नये नये व्यक्तियों का प्रवेश होता गया वैसे वैसे इसका आधिपत्य बढता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में स्थायी रहने वाले तथा परिग्रह की भावना वाले व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या बन गई। फिर यह दल धीरे धीरे विवर्धित ही होता गया। आदर्शों के आधार जीवन मे धीरे धीरे शिथिल होने लगे। फिर भी व्यक्तितः अनेकों ऐसे महानुभाव तैय्यार होते रहते थे जो आदर्श के प्रतीक कहे जा सकते थे। इस शताब्दी में वर्गीकरण का सिलसिला चला। नागों की जमातें तथा उतराधे ऐसे दो समूह तो पहिले भी थे। विरक्त, तपस्वी, स्थानधारी और खालसा ये सब वर्ग रहन सहन की कुछ विभिन्नताओं को लेकर बाद में निर्मित हुए। सत्रहवीं, अठारहवीं शताब्दी उत्कर्ष की थी। उन्नीसवीं शताब्दी माध्यमिक अवस्था की रही। बीसवीं शताब्दी को हम उतार का काल कह सकते हैं। उन्नीसवीं सदी में योग्य पुरुषों का सिलसिला बराबर चल रहा था। एक के जाने पर दूसरा उस स्थान की पूर्ति करने वाला निकल आता था। बीसवीं शताब्दी में इस क्रम में शिथिलता होने लगी।

योग्य व्यक्ति चार चले जाते वहां कठिनाई से एक नया स्थान ग्रहण करता। त्याग, तितिक्षा, तेजस्विता की समुदाय में दिन दिन कमी होती जारही थी। अपना दलीय कार्यक्रम तथा महाराज दादूजी के आदर्शनिर्वाह में भी शैथिल्य ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया था। बीसवीं सदी का उत्तरार्ध दुर्बलता लाने में अधिक सहायक हुआ। यह आधी सदी ह्रासोन्मुखी ही रही। योग्य महात्मा तथा उच्च चरित्रवान् साधुओं की पर्याप्त कमी आगयी। कालप्रवाहजन्य लौकिक भावनायें समुदाय में तीव्रता से घर करने लगीं। जिस आदर्श को लेकर यह वर्ग बना था उस

आदर्श का दिनों दिन लोप होने लगा। वर्ग के अधिक भाग में सामान्य जनसमुदाय की सब प्रवृत्तियाँ आश्रय पाती जारही थी।

संस्कारों का ढाचा प्रवृत्तिप्रधानता पर आधारित होने लगा। साधुता का आदर्श धीरे-२ लुप्त होने लगा। अब भी समुदाय तो पर्याप्त है पर दादूजी द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं से विहीन है।

दादूजी महाराज के समय में उनके आदर्श जीवन के कारण लोग स्वयं ही उनकी सेवा में उपस्थित हुए थे। इसी तरह सत्रहवीं व अठारहवी सदी का क्रम चला। लोग स्वत ही उच्च चरित्र वाले महात्माओं के सम्पर्क में आ उन्ही के सत्संग में प्रवृत्त हो जाते थे। उन्नीसवी सदी में शिष्य बनाने की प्रवृत्ति स्वयं प्रचलित हुई। बीसवीं शताब्दी में तो स्वेच्छा से इस वर्ग में आने वालों की संख्या कम, और वर्ग वालों द्वारा शिष्य बनाने की प्रवृत्ति मे अधिक व्यक्ति समिलित हुए। देश में दुष्काल पड़ने पर इस संख्या में सहज वृद्धि हुआ करती थी। छप्पन के दुर्भिक्ष ने साधुवर्ग को विशेष विवर्धित किया। बनाये हुये शिष्यों में अधिक भाग सामान्य प्रवृत्ति वालों का होना उचितथा। अत अब बनाये हुये वर्ग का ही आधिक्य है और यह प्राय अन्य माननीय भावनाओं से ओत प्रोत है। हा, दादूजी की वाणी का प्रवचन, उपासना का आधार निरञ्जन, किसी मजहबविशेष का दुराग्रह अब भी इस वर्ग में नही है। परिग्रह और एक स्थान पर निवास करने के कारण भौतिक प्रवृत्तियों का विवर्धन हुआ। तदर्थ खेती, व्यापार कथावार्ता तथा चिकित्सा आदि के प्रवृत्तिमय कार्य भी अपनाये गये। इन्हीं के सहारे से अपनी जीवनयात्रा चलाई जाने लगी। बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में पठन पाठन की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। उसीका परिणाम है कि शिक्षणसंस्था दादूमहाविद्यालय की स्थापना हुई।

इस तरह यह पंथ तथा यह समुदाय सोलहवी चालीस मे आरम्भ हो आज तक अपना अस्तित्व बनाये हुये है। इस लम्बे समय में इस सम्प्रदाय या पन्थ ने अनेकों महान् आदर्श त्यागी, योगी, तपस्वी, सिद्ध, महात्मा, विद्वान्, दयालु, परोपकारी, शूरवीर, साहित्यसेवी, संगीतज्ञ, मल्लविद्याविशारद तथा सिलाई, लेखन, जिल्दसाजी, रंगाई चित्रकला आदिविविध कलाओं में निष्णात व्यक्ति भारतीय जनसमाज को प्रदान किये हैं।

इन सबका थोड़ा थोड़ा परिचय भी दिया जाय तो एक छोटीसी पुस्तक ही तैय्यार होसकती है। इस लेख में ऐसा करना शक्य नहीं है। सम्प्रदायकी ठीक ठीक जानकारी इन्हींके आश्रित है अतः इनका परिचय देना आवश्यक है पर वह एक स्वतन्त्र निवन्ध में ही दिया जासकेगा; इस समय इस लेख में नहीं। सम्प्रदायने अपनी उपर्युक्त विशेषताओं से देश के जनसमुदाय में आध्यात्मिक भावनाओं तथा सांस्कृतिक अनुबन्ध को बनाये रखने में पर्याप्त सहायता पहुँचाई है।

सद्गुणप्रधान स्वकीय जीवन से समाजके नैतिक धरातल को ऊंचा उठानेमें भी पूरी सहायता दी जाती रही है। अपने आचार्य के मध्यम मार्ग के आदर्शको अपनाकर धार्मिक विभिन्नताओं में भी समन्वय की महत्ता को व्यवहार में सार्थक सिद्ध कर दिखलाने का प्रयास भी इनका कम महत्वप्रद नहीं है। समय के साथ साथ अब परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन होगये हैं, फिर भी अनेकों व्यक्ति आज भी उस उदाहरण का आदर्श उपस्थित करने वाले मौजूद हैं। कालज परिवर्तन दृश्य जगत् में अनिवार्य है अतः आगे के काल में क्या स्थिति होगी इसका निर्णय भविष्य के गर्भ में ही समाहित है। पर अतीत तथा वर्त्तमान की स्थिति का रूप क्या रहा तथा क्या है? इसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर की कुछ पंक्तियों में किया गया है।

सम्प्रदाय की सार्थकता—

आज का युग ऊपर के विवरण को देखने के बाद शायद यह प्रश्न करे कि दादूजी का महत्त्व तो अवश्य कुछ ध्यान में आता है पर उनके पश्चात् उनके अनु-यायियों ने उनके नाम पर सम्प्रदाय चलाया इसका क्या महत्त्व है? उलटे जिस बात से बचने का उपदेश दादूजी ने दिया उन के अनुयायी आज स्वयं एक सीमित दायरे में अपने को आबद्ध कर उनके उपदेश की अवहेलना का स्वयं ही उदाहरण बन रहे हैं। प्रश्न में अवश्य अंशांश औचित्य है, पर प्रश्नकर्ता के दृष्टिकोण में भी व्यापकता का अभाव है।

सम्प्रदाय दादूजी के समकक्ष कोटि का हो ऐसा तो हो नहीं सकता। व्यवहार के क्षेत्र में ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, शङ्कराचार्य जैसे न मालूम कितने उदाहरण सामने विद्यमान हैं जिनकी विशेष विचारधारा के अनुसार संसार के विशेष धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। क्या उनके परवर्त्तियों में तत्सदृश और भी अनेकों व्यक्ति हुये हैं?

इसका उत्तर हां मे शायद ही कोई दे सके ! हर विशिष्ट पुरुषो के पीछे जो जो वर्ग बनते हैं उनमे उनकी भावना का रूप पूरा का पूरा नहीं उतरता तो भी उनका औचित्य अवश्य रहता है। पिछली दो सदियो पर दृष्टि डाले। स्वामी रामतीर्थ, परम हंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द आदि जो जो विशेष महापुरुष हुये उनके पीछे भी समाज व सोसाइटियो का निर्माण हुआ है क्या उन समाज तथा सोसाइटियों में जिनके नाम पर उनका जन्म हुआ है वैसे ही विचारशील और व्यक्ति निकले हैं ? नहीं, तो भी उनकी अनुपादेयता हो सो बात नहीं। इसी तरह दादूजी के पश्चात् उनके अनुयायिवर्ग मे और दादूजी उत्पन्न नही हुये फिर भी उनके वर्ग ने उनके सिद्धान्तो तथा निश्चयो का बहुत समय तक पालन कर उनकी विचारधारा को प्रवाहित रखा यह कुछ कम लाभ की बात नही है।

दादूजी ने अपनी साधना के द्वारा जिन प्राचीन तथ्यों को व्यवहार में ला उनकी सार्थकता का दिग्दर्शन कराया उन तथ्यों के प्रचार का काम उनके पीछे उनके अनुयायियो ने बराबर किया। संसार में दृश्य और अदृश्य उभय तत्व साथ साथ काम कर रहे हैं। भौतिक ससार ही ससार नही है उसमें आध्यात्मिक संसार भी अपना महान् स्थान रखता है।

जिस तरह अर्थ का औचित्य है उसी तरह अर्थ के त्याग का भी औचित्य है। हिंसा की उपादेयता से अधिक उपादेयता अहिंसा की है। बल-प्रयोगजन्य विजय से प्रेमजन्य विजय का प्रभाव अधिक स्थायी तथा अधिक उपादेय रहता है। प्रतिहिंसा की भावना से समाज जर्जरित होता है जब कि क्षमा की वृत्ति समाज को सुस्थिर बनाने में सहायक होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि दादूजी के पश्चात् जो सम्प्रदाय बना वह निरर्थक ही रहा ऐसा नही है। उसने इन चार शताब्दियों में दादूजी की भावधारा को बनाये रखा तथा उसकी सार्थकता का प्रयास किया है। दादूजी के उपदेश को लाखो मनुष्यों तक पहुचाया। उनके प्रेममय वचनों को अनवरत आ आकर सुना सुना कर लाखो अन्तःकरणों की प्रसुप्त आध्यात्मिकता को जागरित किया। अपने जीवन में उनके कथित सिद्धान्तों को अंशांश मे सार्थक कर समाजरचना में अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप में जो सहायता पहुँचाई उसका मूल्य केवल आक्षेपबुद्धि से आंका नहीं जा सकता। दादूजी के पश्चात् उनके

वास्तविक शिष्य रज्जब जी, सुन्दरदासजी, वखनाजी, सन्तदासजी, जगजीवनजी, जगन्नाथदासजी, वाजिन्दजी, चैनजी, गरीबदासजी, जनगरीबजी, टीलाजी, जैमलजी आदि सन्त पुरुषों ने अपनी साधना, अपनी रचना तथा अपने अपने आदर्श जीवन द्वारा जनसमुदाय की अल्प सेवा नहीं की है। रज्जवजी, वखनाजी, वाजिंदजी, नीजामजी आदि जाति से मुसलमान थे, पर उनने जातीय तथा सीमित स्थिति की धर्मभावना का परित्याग कर अपने उपदेष्टा के उपदेश को अपने उदाहरण से सार्थक सिद्ध किया था; पंडित जगन्नाथजी, वैश्य सुन्दरदासजी तथा पठान रज्जवजी जातीयता से अपने को मुक्त कर एक मानव की भावना से ही प्रेरित थे और वे मानव के नाते ही एक दूसरे के अत्यन्त समीप थे।

सम्प्रदाय की परम्परा ने विविध क्षेत्रों में विविध महापुरुषों को प्रदान कर समाज के सभी वर्गों तथा सभी प्रवृत्तियों में पूरा पूरा हाथ बटाया है। नागों का यदि दो सौ वर्ष का यथावत् इतिहास प्राप्त हो तो उनके शौर्य तथा त्याग के न मालूम कितने उच्च उदाहरण सामने आवें। जनसेवाप्रवृत्तिवाले दयालु महात्माओं की शीतल आत्मा से न मालूम कितने दारुण दुःखदावानल से दग्ध प्राणियों ने शान्ति तथा सन्तोष का प्रसाद पाया है। प्रेम, दया, शील, सदाचार, त्याग, सेवा, निरभिमानता आदि गुणविशेषों को अपनाकर तदाश्रित अपने उज्वल जीवन से दुर्बल मनोवृत्ति वाले हजारों प्राणियों को ऊंचा उठने की प्रेरणा प्रदान कर सहस्रों मनुष्यों को वस्तुतः मानव बनने में सहायता पहुंचाई गई, वह कम कीमती नहीं है। आज हम केवल बिना पूरी जानकारी के अपनी मिथ्या धारणाओं की नाप तोल से सम्प्रदायों का जो परिणाम निकालने की चेष्टा कर रहे हैं वह संगत नहीं है। साधु सम्प्रदाय भिखमंगा है तथा देश में भाररूप है, समाज के लिये अभिशाप है, इस तरह के जो वाक्यविन्यास किये गये हैं या किये जा रहे हैं. उसमें तथ्य का आधार नहीं है। ये सब दूषित तर्कभावना से तथा बिना समझे आक्षेपभावना से जन्म पाये हुये मिथ्या लाञ्छन हैं जिन का वास्तविकता की कसौटी पर कोई मूल्य नहीं है।

ऊपर जिन महात्माओं का नामोल्लेख किया गया है, उनकी देन हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी कम नहीं है। सन्तसाहित्य के निर्माण में इस सम्प्रदाय का बहुत बड़ा हाथ है। संस्कृत के महान् विद्वान् होकर भी इस सम्प्रदाय के महात्माओं ने अपनी रचना से हिन्दी को ही अलंकृत किया, क्या यह नगण्य सी बात है?

दादूपंथी सम्प्रदाय को चार शताब्दियों में एक भी शताब्दी खाली नहीं गई है जिसमें कि कुछ रचनाकार न हुए हो। हम इसका विशेष विवेचन इस निबन्ध में कर रहे हैं जो 'हिन्दी साहित्य और दादूपंथी सम्प्रदाय' नाम से तैयार हो रहा है।

सत्रहवी तथा अठारहवी शताब्दी तो मानों सन्तसाहित्य की अजस्रधारा की शताब्दियाँ थी। इन दो शताब्दियों में पचासों महात्माओं ने अपनी अपनी वाणियों तथा विभिन्न रचनाओं से हिन्दी को अलंकृत किया था। अनुभववाणियाँ, पौराणिक अनुवाद, कोश, जीवनचरित्र तथा काव्य साहित्य के विभिन्न विषयो पर उनने जो रचनायें की हैं उनको अभी शिक्षित समाज ने छूआ तक नहीं है। पर उनका महत्त्वपूर्ण अस्तित्व है। उनने एक अभाव का परिहार किया है। उनने मानसिक खुराक की उचित पूर्ति करने में पर्याप्त भाग लिया है।

हमारी उपेक्षा तथा जानकारी उनको देख नहीं सकी, जाच नहीं सकी तथा प्रकाश में न ला सकी इसमें इन महात्माओं का कोई अपराध नहीं। वे तो अपनी साधना तथा अपना अटूट श्रम धरोहर के रूप में आपको सौंप गये हैं। आप उस धरोहर को सुरक्षित रखें या उपेक्षा करें यह आपकी समझ का काम है।

यदि भाषा के क्षेत्र में ग्रामगीतों का महान् महत्त्व है तो अपने स्थान पर उन साधकों के प्रेमगीतों का भी स्थान कम महत्व का नहीं है। सूर और मीरां की महत्ता है तो रज्जब, वखना, टीला, जनगोपाल सुन्दरदास भी उपेक्षणीय नहीं हो सकते। साहित्य में भूषण, मतिराम, बिहारी का स्थानविशेष है तो स्वरूपदास, भीखजन, चम्पाराम का स्थान भी नियत करना होगा। गिरिधर के कुंडलिया कोई मानी रखते हैं तो 'सुन्दर' के सवैये और वाजिन्द के अरिल भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। नाभाजीकृत भक्तमाल का महत्त्व है तो राघोदासजी की भक्तमाल भी उपेक्षणीय नहीं है। रामुजजी का वृत्तविनोद, स्वरूपदासजी की पांडवयशेन्दुचन्द्रिका, सुन्दरग्रन्थावलि, चम्पारामजी का क्षीरार्णव, भीखबावनी, चतरदासजी का एकादश, मंगलदासजी का सुन्दरोदय, निश्चलदासजी महाराज का विचारसागर व वृत्तिप्रभाकर, व आत्मारामजी का आत्मप्रकाश, ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में अपनी महत्ता से अपना स्थान बनाये हुये हैं। अन्य रचनाकारों की रचना भी निरर्थक नहीं है। जिस समय विज्ञजन अपने घर की संभाल करेंगे तब उन्हें ज्ञात होगा कि इन एकान्तसेवी साधकों ने अनुभूत भावधाराओं को किस तरह सीधे सादे शब्दों में प्रवाहित किया है। इनको न प्रशंसा की आवश्यकता थी, न इन्हें किसी तरह के

पारितोषिक ही चाहिये थे। न ये अपनी रचनाओं द्वारा अपने को साहित्यिक कहलाने के इच्छुक थे। इनने तो अपना संचित खजाना शब्दों में आबद्ध कर सुरक्षित कर दिया। उनको इससे अधिक और कोई इच्छा थी भी नहीं। इस तरह इस सम्प्रदाय के सैकड़ों महात्माओं ने उभय रूप में हमारे समाज, देश, तथा भाषा की सेवा की है।

जब भ्रमणवृत्ति की कमी हुई तथा स्थायी निवास का सिलसिला चला तब इस सम्प्रदाय के सुपठित पुरुषों ने आतुरसेवा के काम की ओर विशेष ध्यान दिया। रामकृष्ण मिशन की तरह उनने किसी संगठित संस्था के रूप में तो कार्यारंभ नहीं किया पर व्यक्तितः सहस्रों व्यक्तियों ने औषधोपचार से विविध रोगपीडित प्राणियों को, रोगनिवारण कर, नवजीवन प्रदान किया था और आज भी कर रहे हैं। चिकित्सा का कार्य तो इनका एक आवश्यक अंग बन गया है। औषधोपचार का काम बिना फीस बिना दाम के करना कष्टपीडितों की अल्प सेवा नहीं है। पिछले दो सौ वर्षों में इस सम्प्रदाय में बहुत से महात्मा उच्च कोटि के चिकित्सक हुए हैं। उनमें से अधिकांश ने यह कार्य केवल सेवाभावना तथा उपकार भावना से ही किया था।

दादूजी महाराज के पश्चात् बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इसमें योगी, सिद्ध, महात्मा; त्यागी, भजनीक, पर्याप्त संख्या में होते रहे हैं। उनके आदर्श, त्यागमय उच्च जीवन तथा साधना से अलक्षित व प्रत्यक्ष दोनों तरह से मानव समाज को उच्च प्रेरणा प्राप्त होती रही है। महात्माओं की भ्रमणशील मंडलियाँ घूम घूम कर आध्यात्मिक संस्कृति के भावों को मानवसमुदाय में जागृत करने का काम अनवरत करती रही हैं तथा कर रही हैं। संस्कार का अनुवर्त्तन ही समाज के लिये विशिष्ट प्रकार की देन मानी जाती है। मनुष्य का शरीर नहीं, अपितु मन ही उदात्त व उन्नत हुआ करता है। मन की उदात्त व उच्च स्थिति का आधार है उत्तम संस्कार। संस्कारी समाज ही वस्तुतः समाजशब्दवाच्य है। असंस्कारी साक्षर समाज का समाजत्वेन कोई महत्त्व नहीं है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इस समय हमारा देश है। अंग्रेजी शासन ने अपने आनुकूल्य के लिये भृत्य तैयार करने के लिये जो शिक्षाक्रम जारी किया था उसने भारत के मानवसमाज की महान् क्षति की है। उस शिक्षाक्रम ने उस उत्तम संस्कार को जो भारत की अपनी सांस्कृतिक भित्ति का प्रमुख आधार था छिन्न भिन्न कर दिया है। उसी का परिणाम

हम भोग रहे हैं। सद्गुणों की प्राप्ति के विना सत्संस्कार का अनुवन्ध नहीं वना करता है। मानवजीवन के लिये सद्गुणप्राप्ति के कौटुम्बिक जीवन, शिक्षा और सत्संग प्रमुख साधन हैं। दादू सम्प्रदाय के वहुत वडे वर्ग ने शिक्षा तथा सत्संग के द्वारा इसकी समुचित पूर्ति वहुत समय तक की है। इस तरह कहा जा सकता है कि इस सम्प्रदाय ने, साहित्य, सेवा, समाज में सत्संस्कार-अनुवर्त्तन द्वारा अपनी सार्थकता स्पष्टतया सिद्ध की है। नीरक्षीरविवेकदृष्टि से अवगुणों को ही वढाकर देखना ठीक नहीं, गुणों को भी देखना आवश्यक है।

२१—पूर्ति

पीछे जो कुछ लिखा गया है उस से दादूपंथी सम्प्रदाय का सामान्य परिचय प्राप्त होजाता है। कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनमें मतभिन्नता है उनका विशेष विवेचन नहीं हुआ है, जैसे दादूजी के जन्म तथा उनके सिद्धान्तों के विषय में। जन्म के विषय में जैसा कि आरम्भ में माना गया है उसी रूप का उल्लेख किया गया है। जिन अन्य लेखकों ने अपने विभिन्न अनुमान लगाये हैं उन अनुमानों तथा किसी किसी परलेखकने प्रमाण द्वारा दादूजी के जन्म के विषयमें जो कुछ लिखा है उसकी असंगति तथा इसमें जो कुछ लिखा है उसकी संगति के लिये युक्ति तथा उचित प्रमाण की आवश्यकता है। ऐसा करने पर लेख का रूप अति विस्तृत होजाता। दूसरे इस वारे में एक स्वतन्त्र पुस्तक 'दादूजी महाराज की जीवनी' नामक जिसके लेखक उनके शिष्य जनगोपालजी हैं, मुद्रित होकर प्रकाशित हो चुकी है। और गद्य में भी दादूजी महाराज का विस्तृत जीवनचरित्र प्रकाशित करने का प्रयास चालू है, अत इस लेख में जीवनी पर विशेष विचार नहीं किया गया है।

दूसरा विषय है "दादूजी के सिद्धान्त" इस पर भी सयुक्ति सप्रमाण विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता है। मेरे अपने विचार में जैसा मुझे समझमें आया संक्षेप में उसे व्यक्त कर दिया। इस वारे में दादूजी को कवीरजी के अनुयायी वनाने की या मानने की जो भूल सुधाकरजी द्विवेदीने वेलवेडियर प्रेससे प्रकाशित होने वाली दादूवाणी की भूमिका में की है उसका कोई सवल आधार नहीं है। दादूजी कमाल केपरवर्ती हुए यह कथन केवल कल्पनामात्र है उसमें कोई उचित प्रमाण नहीं है। दादूजी के विचारों पर हो सकता है कि कवीरजी, नामदेवजी, रैदासजी आदि पूर्ववर्ती महात्माओं की भावधारा का प्रभाव पडा हो और

ऐसा होना अनुचित भी नहीं है। जो उचित सिद्धान्त अपने से पहिले स्थापित किया जा चुका है उसके औचित्य को स्वीकार करना उस प्रवृत्ति के मानव के लिये अनिवार्य है। जिस तथ्य को कबीरजीने दृढता से प्रतिपादन किया था दादूजी उसी तथ्य के अनुयायी थे। शाश्वत धर्म जिससे मानवमात्र का कल्याण हो सकता है, जो "निःश्रेयस्करो धर्मः" इस लक्षण से व्यक्त किया गया है उसमें सापेक्षता तथा पखापखी को स्थान कहां है।

दादूजी धर्मको जातित्व से निबद्ध करने के पक्ष में नहीं थे। कबीरजी ने भी यही लिखा, यही कहा तब उसकी समानता स्वतःसिद्ध हो इसमें क्या अनौचित्य है। पर इसका यह अर्थ लगाया जाय कि दादूजी कबीरजी के ही अनुयायी थे यह ठीक नहीं है। समान विचारधारा वाले व्यक्ति अवश्य एक दूसरे से अनुप्राणित होते हैं। उसका यह अर्थ नहीं माना जाता कि वे एक दूसरे के पूरे अनुयायी भी हैं। उस समय समाज में प्रचलित जिन जिन बातों को कबीरजी ने अनुचित माना खण्डन किया है उनको दादूजी ने भी अनुचित माना है तथा उनका खण्डन किया है जैसे हिन्दू व मुसलमान परस्पर विभिन्न हैं; परमेश्वर मन्दिर व मस्जिद में ही प्राप्त किया जा सकता है तथा वहीं उसकी उपासना होसकती है। ईश्वर की प्रार्थना का साधन आरती या नमाज आदि ही है। अन्तर केवल इतना है कि जहां कबीरजी के खंडन की प्रक्रिया तीव्र है, वहां दादूजी के खंडन की प्रक्रिया मृदु है। जातित्व के व्यवहारों को धर्म में जोड़ देने तथा उन व्यवहारों को धर्म का अंग मानने का खंडन नामदेवजी तथा रैदासजी ने भी किया है। इसका अभिप्राय यही है कि जिन साधक पुरुषों ने परमेश्वर के व्यापक रूप को निर्बोध मानकर उसकी प्राप्ति के लिये प्रयास किया उन सबकी विचारशृंखला एक ही तरह की होनी स्वाभाविक थी और इस अर्थमें वे एक दूसरेके अनुयायी भी कहे जांय या माने जांय तो अनुचित नहीं। इस अर्थ में दादूजी भी कबीर, नामदेव, रैदास आदि अपने पूर्ववर्ती महात्माओं की भावधारा के पोषक तथा अनुगामी कहे जा सकते हैं।

किन्तु दादूजी का जीवनविकास उनकी स्वतन्त्र साधना से ही हुआ है, उन्हें जो उपदेश ग्यारहवें वर्ष में एक वृद्ध महात्मा द्वारा कांकरिया तालाब पर खेलते समय मिला था, उसी से उनकी जीवनधारा ने पलटा खाया। उनने जो कुछ साधना की तथा जिस तत्व को आधार बनाया उसका मूल उसी उप-

देश में था। उसी बीज भूत संस्कार का आगे जैसे जैसे साधनादार्ढ्य होता गया वैसे वैसे पल्लवित होना स्वाभाविक था। जब अपनी साधना द्वारा वे अपनी मंजिल पूरी कर चुके तब उनने उस तथ्य को अपने शब्दों द्वारा व्यक्त करना आरम्भ किया।

'वाणी' उसीका प्रतिविम्ब है। दादूजी ने जिन भ्रामक तथ्यों का खंडन किया है वहां भी उनके कथन में कठोरता नहीं है। उनके शब्द शब्द में स्नेह मृदुता तथा कोमलता की पूरी पूरी छाप है। आप आदि से अन्त तक वाणी का अवलोकन करिये, कहीं भी प्रहारात्मक शैली का रूप सामने नहीं आयेगा। उनकी वाणी में से अहंकार का अंश सर्वथा हट गया था। उनके निश्चय में व्यक्तिभेद, जातिभेद, धर्मभेद का लेश भी शेष नहीं था। यही कारण है कि उनने सर्वत्र अपने कथन में सरस प्रेम की धारा प्रवाहित की है। दादूजी महाराज का जीवन व्यष्टि की मर्यादा को समाप्त कर समष्टि में व्यापक होगया था। यही कारण है कि उनके सानिध्य में आने वाले सभी शिष्यों ने उनमें अगाध श्रद्धा प्रदर्शित की। रज्जबदासजी, सुन्दरदासजी, टीलाजी, वखनाजी, जगजीवनजी, जगन्नाथजी, सन्तदासजी, वनवारीदासजी आदि उनके प्रौढशिष्यों ने अपनी अपनी वाणियों में तथा विशेष कृतियों में उनको जिस श्रद्धासे स्मरण किया है उस से व्यक्त होता है कि दादूजी का जीवन प्रेममय ही बन गया था। यही कारण था कि नानकजी, कबीरजी, नामदेवजी व रैदासजी आदि महात्माओं की अपेक्षा उनके जीवनकाल में ही दादूजी के अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक हो गई थी। जनगोपालजी की जन्मलीला तथा माधोदासजीकृत सन्तगुणसागर में दादूजी महाराज के शिष्यों तथा श्रद्धालु अनुयायियों के नामोल्लेख हैं। उनकी संख्या सैकडों से अधिक है। एकसौ बावन शिष्य तो उनके प्रसिद्ध ही हैं। उन्होंने अपने निश्चयों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया था, इसका सबसे बडा प्रबल प्रमाण उनके हिन्दू तथा मुसलमान शिष्यों की स्थिति है। हिन्दुओं में द्विजातियों में भी उनके पर्याप्त शिष्य थे। न वहाँ हिन्दू मुसलमान का विभेद था और न वर्णाश्रमका। जगन्नाथजी, जगजीवनजी व माधोदासजी जाति से ब्राह्मण थे। सन्तदासजी, प्रयागदासजी, छोटे सुन्दरदासजी व जनगोपालजी जाति से वैश्य थे। बडे सुन्दरदासजी, जैमलजी, चौहान हरिसिंहजी व मोहनजी जाति से क्षत्रिय थे। लालदासजी आदि जाति से शूद्र थे। रज्जबजी, वखनाजी, वाजिन्दजी व निजाम जाति

से मुसलमान थे। ये सब दादूजी के प्रमुख शिष्यों में हैं। सब ने उसी विचारधारा को तथा व्यवहार को आत्मसात् किया था जिसको उनके उपदेष्टा दादूजी महाराज ने उन्हें बताया था। अन्य सम्प्रदायप्रवर्त्तकों की अपेक्षा दादूजी की यह विशेषता स्वतःसिद्ध है।

पिछले विवरण में दादूजी के जीवन पर अधिक नहीं लिखा गया उसी तरह उनकी वाणी पर भी विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका है। इसका भी कारण लेख की कलेवरवृद्धि था। वाणी के विवेचन के लिये भी स्वतन्त्र निबन्ध की आवश्यकता है, तभी उसका कुछ कुछ स्वरूप परिचय हो! दादूजी की वाणी में सहज सरलता तथा स्वानुभूतिका स्थान स्थान पर दिग्दर्शन होता है। जिन व्यक्तियों की थोड़ी भी प्रवृत्ति आध्यात्मिक विषय की-ओर है उनके लिये वाणी अवश्य "स्वान्तः सुखाय" का निमित्त बन सकती है। कौटुम्बिक व सांसारिक विविध यातनाओं से चिन्तित व्यक्ति यदि थोड़े समय एकान्त में बैठ वाणी का अवलोकन करे तो उसको वाणी एक बहुत हितेच्छु मित्र की तरह साथ देती है। उसके अधीर हृदय को उससे तुरन्त सान्त्वना प्राप्त होती है। वाणी के विषय में यहां क्या विशेष लिखा जाय? वह तो स्वयं पढने की तथा स्वयं ही सरसता अनुभव करने की वस्तु है।

परिचय में दादूजी के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उनकी विचारधारा को पुष्ट करने के लिये जिस साहित्य का निर्माण किया उस पर भी अधिक विचार नहीं गया। कारण यदि दो चार ही व्यक्ति उनके बाद कुछ लिखने वाले होते तो कुछ कहा भी जा सकता था; यहां तो उनके जीवनकाल में ही बीसों शिष्य ऐसे हो गये थे जिनने अपनी अपनी रचनायें आरम्भ कर दी थीं। इस सम्प्रदाय में जितने रच-नाकार हुये हैं कहा जा सकता है उनकी बराबरी के अन्य किसी सम्प्रदाय में नहीं हुये। पचासों व्यक्तियों का यदि थोड़ा थोड़ा भी निरूपण किया जाता तो इस लेख का स्वरूप विस्तृत आकार को प्राप्त होता। ऐसा करके भी सबका यथावत् परिचय नहीं दिया जा सकता था। इसलिये इसको स्वतंत्र निबन्ध के लिये ही छोड दिया गया है, आगे इसकी एक सूची दी जा रही है जिससे सामान्य परिचय प्राप्त हो जायगा।

विवरण में सम्प्रदाय के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का परिचय भी इसी कारण से नहीं दिया गया है कि उनमें से किसका परिचय दिया जाय तथा किसको

छोड़ा जाय। देने जैसे सभी व्यक्तियों का परिचय दिया जाय तो कलेवरवृद्धि की समस्या सामने हैं। इस तरह ये सब आवश्यक परिचय के भाग होते हुए भी इस लेख में स्थान नहीं पा सके हैं। इस लेख में तो आप इनका नामपरिचय सूचियों द्वारा प्राप्त कर सकेंगे। सम्भव है शताब्दीग्रन्थावली में इन कमियों का परिहार किया जाय।

दादूपंथी सम्प्रदाय जिसकी स्थापना को साढे तीनसौ वर्ष से अधिक का समय होगया है आरम्भ से दोसौ वर्षतक अत्यधिक विवर्धित हुई। सौ वर्ष उसकी विवर्धित दशा रही। पिछले पचास वर्ष इसके उतार के हैं। इसका व्यापक क्षेत्र बहुत विस्तृत है। बम्बई से सीमाप्रान्त तक इसके स्थान सर्वत्र कायम हैं। गुजरात, मध्यभारत, सी० पी०, राजस्थान, यू० पी० तथा पंजाब में इसकी व्यापकता है। राजस्थान और पंजाब में आबादी तथा स्थानों की संख्या सबसे अधिक है। दादूपंथियों के निवासस्थानों की संज्ञा प्रारम्भ में "दादूद्वारा" नाम से ही होती थी। छोटे ग्राम, कस्बे, जनपद तथा बड़े नगर जहाँ भी ये आबाद हुए वहां इनके दादू द्वारे बने। अब तो स्थानों की अधिकता होने से तथा भिन्न प्रवाह के कारण व्यक्तिगत नामों पर भी स्थानों की संज्ञायें होने लग गई हैं। संख्या के अनुपात से बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक यह बड़ी सम्प्रदायों में से एक मानी जाती थी। अब भी राजस्थान में प्रचलित सम्प्रदायों में इसका नम्बर प्रमुख ही हो सकता है। कभी स्वतन्त्रतया तो इसमें जनगणना हुई नहीं है, अनुमानतः ही इसकी संख्या आंकी जाती रही है। मेरी समझ में इस समय इनकी संख्या दश हजार से बीस हजार के बीच में है। यह संख्या केवल उन्हीं व्यक्तियों की है, जो दादूपंथी सम्प्रदाय में दीक्षित हैं। इस सिद्धान्त को मानने वाले व्यक्तियों की संख्या तो अब भी कई लाख निकलेगी, क्योंकि राजस्थान, पंजाब, मालवा प्रदेश तथा गुजरात में बहुत बड़ी जनसंख्या दादूजी के सिद्धान्तों को मानने वाली है, वे दादूजी की वाणी में अपनी श्रद्धा रखते हैं, तथा सत्यराम के व्यवहार को मान्यता देते हैं।

'सत्यरामजी' यह दादूपन्थी सम्प्रदाय का साम्प्रदायिक परस्पराभिवादनशब्द है। सभी दादूपन्थी एक दूसरे का अभिवादन इसी शब्द से करते हैं, तथा अन्य आगत सज्जनों का सत्कार भी इसी शब्दोच्चारण द्वारा किया करते हैं। उनसे सम्बन्ध रखने वाला सभी गृहस्थवर्ग भी मिलने पर इसी शब्द का प्रयोग कर आपस में प्रेम प्रदर्शित करता है। वर्तमान पद्धति में यह इनका साम्प्रदायिक "मोटो" कहा

जासकता है। "सत्य राम" उस नामस्मरणसाधना का निर्देशक है. जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि दादूजी का राम वही था जो इस संसार में सत्य तत्व है। सत्य ही राम है। यह इसकी परिभाषा या यही इसकी व्युत्पत्ति कही जासकती है। इस तरह "सत्य राम" के उपासक इस सम्प्रदाय की संज्ञा दादूपन्थ या दादूपन्थी है। यह इस सम्प्रदाय सामान्य परिचय है।

श्री दादूजी महाराज के पीठाधिपतियों
की
प्रणाली

संख्या	पीठाधिपति नाम	पीठाधिष्ठान काल	स्वर्गारोहण तिथि
१	श्रीमान् आचार्य स्वामी श्री दादूजी महाराज	संवत् १६०० से १६६० तक	संवत् १६६० जेष्ठ-कृष्णा ८
२	" स्वामी श्री गरीबदासजी महाराज	सं० १६६० से १६९३ तक	संवत् १६९३ पौष-वदि १३
३	" स्वामी श्री मसकीन-दासजी महाराज	सं० १६९३ से १७०५ तक	संवत् १७०५ वैशाख वदि ८
४	" स्वामी श्री फकीरदासजी महाराज	सं० १७०५ से १७५० तक	संवत् १७५० भादवा-वदि ८
५	" स्वामी श्री जैतरामजी महाराज	सं० १७५० से १७८९ तक	सं० १७८९ मार्गशीर्ष कृष्णा ८
६	" स्वामी श्री किसनदेवजी महाराज	सं० १७८९ से १८१० तक	सं० १८१० माघ कृष्णा १३
७	" स्वामी श्री चैनरामजी महाराज	सं० १८१० से १८३७ तक	सं० १८३७ चैत्र-कृष्णा ८
८	" स्वामी श्री निर्भयरामजी महाराज	सं० १८३७ से १८७१ तक	सं० १८७१ आश्विन कृष्णा ८
९	" स्वामी श्री जीवनदासजी महाराज	सं० १८७१ से १८७७ तक	सं० १८७७ मार्गशीर्ष कृष्णा ८
१०	" स्वामी श्री दलैरामजी महाराज	सं० १८७७ से १८८७ तक	सं० १८८७ फाल्गुन-कृष्णा २
११	" स्वामी श्री प्रेमदासजी महाराज	सं० १८८७ से १९०१ तक	सं० १९०१ ज्येष्ठ कृष्णा २
१२	" स्वामी श्रीनारायण-दासजी महाराज	सं० १९०१ से १९१२ तक	सं० १९१२ कार्तिक-कृष्णा १३
१३	" स्वामी श्री उदयरामजी महाराज	सं० १९१२ से १९३१ तक	सं० १९३१ आश्विन-कृष्णा १०

१४	" स्वामीजी श्री गुलाबदासजी महाराज	सं० १९३१ से १९४८ तक	सं० १९४८ मार्गशीर्ष-शुक्ला १४
१५	" स्वामीजी श्रीहरजीरामजी महाराज	सं० १९४८ से १९५५ तक	सं० १९५५ वैशाख-शुक्ला १०
१६	" स्वामीजी श्रीदयारामजी महाराज	सं० १९५५ से १९८८ तक	सं० १९८८
१७	" स्वामीजी श्रीरामलालजी महाराज	सं० १९८८ से २००१ तक	सं० २००१
१८	" स्वामीजी श्री प्रकाशदेवजी महाराज	सं० २००१ से	

श्री स्वामी दादूजी महाराज के थांभायती बावन शिष्यों की प्रणाली

संख्या	थाभायती नाम	ग्राम	वर्तमान में यह थाभा है या नही	विशेष विवरण
१	श्रीमान् स्वामी गरीबदासजी	नरेना (जयपुर)	वर्तमान में है	
२	" स्वामी मसकीनदासजी	नरेना (जयपुर)	" "	
३	श्रीमती बाईजी	नरेना (जयपुर)	" "	इनके थाभे में साधु हैं पर थांभा यती स्वय कोई नहीं है
४	" "	नरेना (जयपुर)	" "	" "
५	" श्रीमान् घडसाजी	नरेना (जयपुर)	वर्तमान में थांभा नहीं है	इनके जीवन के पश्चात् इनकी परम्परा नहीं चली
६	" शकरदासजी	नरेना (जयपुर)	" "	" "
७	" जैसोजी	नरेना (जयपुर)	" "	" "
८	" चान्दोजी	नरेना (जयपुर)	" "	" "
९	बड़े प्रागदासजी	नरेना (जयपुर)	" "	" "
१०	" बड़े गोपालदासजी	नरेना (जयपुर)	" "	" "
११	" रजबजी	सांगानेर (जयपुर)	वर्तमान में थांभायती है	यह थांभा सांगानेर से, ढूंढोडी गया वहां से अब भादवा में है।

१२	” दयालदासजी	देवल (जयपुर)	वर्तमान में नहीं है	सम्वत् १९६७ तक था
१३	” घड़सीदासजी	कढेल	थांभा है. थांभायती नहीं है	अब कडेल से ग्राम चांपासर (जोधपुर) में यह थांभा है।
१४	” दूजणदासजी	ईडवा (जोधपुर)	थांभा व थांभायती है	डेगाणा के समीप यह थांभा है।
१५	” तेजानन्दजी	जोधपुर	” ”	अब स्थान जोधपुर से बदल गये है जो रैण के पास है
१६	” मोहनदासजी भजनीक	आसोप (जोधपुर)	वर्तमान में थांभायती नहीं है	सम्वत १९५५ तक था
१७	” माधोदासजी	गूलर (जोधपुर)	थांभा है थांभायती महन्त-अब नहीं है	यह स्थान डेगाणा के समीप है।
१८	” हरिसिंहजी	विघाद (जोधपुर)	थांभा व थांभायती है	
१९	” चतरदासजी	सिंगरावट (पंजाब)	थांभायती है	सिंगरावट से यह डोंगकरथल भटिंडा के पास चला गया। इस समय बीकानेर में हैं
२०	” सुन्दरदासजी बड़े	घाटडा (अलवर)	” ”	थांभायती प्रह्लाददासजी की परम्परा में है।
२१	” प्रयागदासजी	डीडवाना (जोधपुर)	” ”	
२२	” सुन्दरदासजी (छोटे)	दौसा। पश्चात् फतहपुर (जयपुर)	थांभायती व थांभा है	अब थांभायती रामगढ रहते हैं
२३	” बनवारीदासजी	रतिया (हिसार) पंजाब	” ”	अब थांभायती जयपुर स्टेट में
२४	” हरदासजी	रतिया (हिसार पंजाब)	थांभायती है	झूंझणू के पास स्वामी की ढाणी में है।

४८	" मोहनदासजी दरियाई	समधि (उणियारा)	थांभायती नहीं है।	इनकी परम्परा के गृहस्थ साधु हैं।
४९	" हिंगोल गिरिजी	चोकडास (जयपुर)	थांभायती नहीं है।	एक स्थान इस थाभे का चंदलाई में शेष है।
५०	" चैनजी	कानूता (जयपुर)	[illegible] थांभा नहीं है।	
५१	" कपिलमुनिजी	गोनेर (जयपुर)	थांभायती नहीं है।	
५२	" श्यामदासजी	झालाना [जयपुर]	अब थांभा व थांभायती दोनों नहीं है।	

श्री स्वामी दादूजी महाराज, शिष्य प्रशिष्य व परवर्ती रचनाकार

संख्या	नाम	रचना	काल	मुद्रित या अमुद्रित	विशेष
१	श्री स्वामी दादूजी महाराज	" वाणी " साषी शब्द भाग	१६३० से १६६०	मुद्रित	६ प्रकाशन निकल चुके ७ सातवां निकल रहा है
२	श्री स्वामी गरीबदासजी, नरेना	१ अनुभव-प्रबोध, २ वाणी-साषी-शब्द चौपदे ।	१६५० से १६८०	मुद्रित	१ प्रकाशन स्वामी लक्ष्मी. राम ट्रस्ट द्वारा
३	श्रीमान् स्वामी वनवारीदासजी, रतिया	रचना–शब्दसंख्या केवल २	सत्रहवीं सदी	अमुद्रित	और वाणी होने का अनुमान है ।
४	श्रीमान् साधुजी, मांडोठी	वाणी–साषी शब्द भाग	"	"	
५	" वषनाजी, नरेना	वाणी–साषी शब्द भाग	१६४५ से १६८०	मुद्रित	स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट-द्वारा
६	" टीलाजी, फोफल्या, मेवाड़	वाणी–शब्दभाग–राग १४ पद ५८	"	अमुद्रित	इनका साषी भाग तथा कुछ और शब्द भाग होना चाहिये ।
७	" प्रयागदासजी बियाणी, डीडवाना	वाणी-साषी शब्द भाग	१६५५ से १६८०	मुद्रित	साषी ६१ पद १६ ही प्राप्त हैं ।

८	"	जग्गाजी, भडोंच गुजरात	१ भक्तमाल— शब्द २	१५५२ से १६८०	अमुद्रित	इनकी वाणी और होनी चाहिये।
९	"	मोहनदासजी, मारोठ	१ ब्रह्मलीला— २ शब्द	"	"	२ शब्द ही प्राप्त हैं, संभव है और रचना भी हो।
१०	"	जैमलजी जोगी, साभर	वाणी-सापीभाग व शब्दभाग	सत्रहवी सदी	अमुद्रित	
११	"	पूर्णदासजी	वाणी-सापी व शब्दभाग	"	"	ये १५२ शिष्य मे थे। स्थानका निश्चय नही है।
१२	"	जगजीवनजी, दौसा	वाणी-सापी व शब्दभाग लघुग्रन्थावलि सख्या २० दृष्टान्तसापी	सतरहवी तथा अठारहवी के आरंभतक	अमुद्रित	ये अच्छे विद्वान् थे। बादशाह तथा कई राज्यो से सम्मान प्राप्त किया थ।
१३	"	जनगोपालजी, राहोरी	१ जन्मलीला २ ध्रुवचरित्र ३ प्रहलाद चरित्र, ४ मोहँविवेक ५ भर्तृ-चरित्र, ६ चौबीस गुरुदत्त लीला ७ कायाप्राण सम्वाद ८ बारह-मासी सोरठी ९ शब्द-१० सवैया।	सत्रहवीका अन्त अठारहवी का आरंभ	मुद्रित अमुद्रित	केवल जन्मलीला मुद्रित हुई है स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट द्वारा
१४	"	रज्जबजी, सागानेर	वाणी-सापी-शब्द, सवैया, कवित्त लघुग्रन्थावली १३ तेरह, १ सर्वंगी-सम्रह ग्रन्थ।	१६५० से १७३० तक	मुद्रित	वाणी मुद्रित हुई है। सर्वंगी अमुद्रित है।

१५	” सुन्दरदासजी छोटे (फतहपुर)	१ वाणी–साषी–शब्द, २ सवैये–३ ज्ञानसमुद्र; लघुग्रन्थ २५ अष्टक १२ फुटकर रचना २३ है।	१६८५ से १७४५ तक	मुद्रित	राजस्थान रिसर्च सो–सायटी द्वारा प्रकाशित 'सुन्दर ग्रन्थावली'
१६	” जगन्नाथदासजी (आमेर)	१ वाणी–सांषी, पद भाग २ लघु–ग्रन्थावली १८ ३ मोहयदराज की कथा ४ "गुणगंजनामा" संग्रह ग्रन्थ।	सतरहवीं का अन्त अठा–रहवीं का आरम्भ	अमुद्रित	भक्तमालकार के मत से 'गीतासार' वशिष्ठ सार, इनकी रचना और होनी चाहिये।
१७	” जैमलजी चौहान (बोंली)	वाणी–साषी, भाग २ लघुग्रन्था–७–३ भक्त विरूदावली, ४ रामरक्षा।	”	”	
१८	” मोहनदासजी मेवाड़ा (भानगढ़)	१ आदि वोध–२ साध महिमा नाम माला।	सतरहवीं का अन्त	”	आदिवोध में से भोग में दादूजी का नाम दिया गया है.
१९	” हरिसिंहजी (विद्याद)	वाणी–साषी-शब्द-भाग, लघुग्रन्था–वली—१०।	सतरहवीं सदी का अंत अठारहवीं का आरम्भ	”	

२०	,, सन्तदासजी वारह हजारी (चावड्या)	वाणी-साषी-५५, २ सवया लघु-ग्रन्थावली—१६ ।	सतरहवी अठारहवीं	अमुद्रित	संख्या के विचार से इनकी रचना सबसे अधिक है ।
२१	,, मसकीनदासजी (नरेना)	वाणी-पद भाग-राग १० पद १२	सतरहवी का अन्त	,,	रचना पूरी नहीं है और भी होनी चाहिये
२२	,, मारवूजी (गंगापथा)	वाणी-साषी-पद भाग ।	,,	,,	
२३	,, दूजणजी (ढूंडला)	वाणी-पद भाग-५५ पद प्राप्त ।	,,	,,	इनकी रचना पूरी नहीं है औरभी रचना प्राप्त होनी चाहिये ।
२४	,, तेजानन्दजी (जोधपुर बागड)	वाणी-साषी-पद-सवैया २ घट-प्रमोदग्रन्थावली-	,,	,,	जो सामग्री प्राप्त है उस के पन्ने खंडित हैं अत रचना और है ऐसा अनुमान है ।
२५	,, लालदासजी (पट्टण)	वाणी-साषी-शब्द, अरिल तथा चितावणी ।	,,	,,	इनकी प्राप्त रचना भी अपूर्ण है ।
२६	,, हरिदासजी (रतिया)	वाणी-साषी-शब्द २ धराजू जैमल की कथा २ भर्तृहरिसंवाद ।	सतरहवी अठारहवीं	,,	प्राप्त रचना अपूर्ण व खंडित है ।

२७	,, जनगरीबजी	वाणी–साषी–पद भाग।	सतरहवीं अठारहवीं	अमुद्रित	
२८	,, वाजिन्दजी	वाणी–प्राप्त नहीं, लघुग्रन्थ १८ प्राप्त हुए हैं।	,,	,,	इनकी वाणी है पर अभी प्राप्त नहीं हुई है। जो सामग्री मिली है वह अपूर्ण है।
२९	,, माधोदासजी (गूलर)	१ सन्त गुण सागर।	,,	,,	महाराज का जीवन-चरित्र पद्यमय है. और रचना है या नहीं संशयात्मक है।
३०	,, भारवनजी सन्तदासजी फतहपुर के शिष्य प्रशिष्य	१ सर्वंगवावनी– २ भारती नाम-माला।	१६८० १६८५	मुद्रित अमुद्रित	बावनी मुद्रित है। नाममाला अमुद्रित है। नाम माला अमर-कोश का हिन्दी में पद्यानुवाद है।
३१	,, कल्याणदासजी, रज्जबी के शिष्य	१ गोपीचन्द-वैराग।	१६९२	अमुद्रित	दोहे चौपाई छन्दों में रचना है। अन्य रचना की सम्भावना है।
३२	,, चैनजी, जनगोपालजी के शिष्य	वाणी–साषी–पद भाग १२ सवैये लघुग्रन्थावली ४५	सतहरवीं अठारहवीं	,,	रचना विस्तृत तथा प्रौढ शैली में है।

३३	,,	प्रह्लाददासजी (बडे सुन्दर-दासजी के शिष्य)	वाणी-साषी-पद भाग।	अठारहवीं का प्रारम्भ सतरहवीं का अन्त	अमुद्रित	
३४	,,	दासजी (लालदासजी के शिष्य)	१ गुण नाटक-२ पेथ परीक्षा-३ भक्ता विरुदावलि ४ अजामेल चरित्र।	१७२७ से १७३०	अमुद्रित मुद्रित	गुण नाटक मुद्रित है शेष अन्य अमुद्रित है।
३५	,,	चतरदासजी (सन्तदासजी के शिष्य)	१ भागवत एकादश स्कन्ध का पद्यानुवाद—	१६६२ जेठ सुदी ६	मुद्रित	वेंकटेश्वर प्रेस में।
३६	,,	खेमजी (रज्जबजी के शिष्य)	१ रेखता- २ चितावणी- ३ ज्ञान चितावणी- ४ धर्म सम्वाद- ५ शुकसम्वाद- ६ गोपीचन्द वैराज्य बोध—	अठारहवी सदी	अमुद्रित	संभव है और भी रचना हो। रेखते पंचामृत में निकल गये हैं।
३७	,,	दयालदासजी (जगन्नाथजी के शिष्य)	१ नासकेत आख्यान— १ सवैया और रचनायें होने की संभावना है।	१७३४ फागण सुदी ८	अमुद्रित	नासकेत पुराण का हिन्दी में पद्यानुवाद दोहा चौपाई मे।
३८	,,	छीतरजी (रज्जबजी के शिष्य)	१ कवित्त—	अठारहवीं सदी	मुद्रित	'पंचामृत' मे प्रकाशित हुये हैं। स्वामी लक्ष्मी-राम ट्रस्ट द्वारा।

३९	,,	बालकरामजी (छोटे सुन्दरदासजी के शिष्य)	१ कवित्त	अठारहवीं सदी	मुद्रित	'पंचामृत' में स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हुये हैं।
४०	,,	अनन्तदासजी	१ नामदेवजी की परची, २ कवीरजी की परची, ३ रैदासजी की परची, ४ पीपाजी की परची, ५ सेडसमन की कथा।	अठारहवीं का आरम्भ	अमुद्रित	
४१	,,	माधोदासजी (जगजीवणजी के शिष्य)	१ जनरायलीला- २ मंदालसा आख्यान, ३ कवित्त—	,,	,,	मंदालसा आख्यान दोहे चौपाई छन्द में विस्तृत है।
४२	,,	राघोदासजी	वाणी-साषी, पद, गीत-२ लघु-ग्रन्थावली, ३ भक्त माल—	१७५७	,,	रचना उत्तम है।
४३	,,	लालदासजी (गरीबदासजी की परंपरा में)	१ नाम माला, २ चिंतावनी	१८३५	,,	और रचना होने की संभावना है।
४४	,,	चतरदासजी (छोटे सुन्दरदास जी की परंपरा में)	१ राघोदासजी की भक्तमाल पर पद्यमय टीका, सवैया छन्द-६५२	१८५७ भादवा बदी १४ मंगल	,,	अन्य रचना का होना संभव है।
४५	,,	हिरदेरामजी (सियोणा)	१ नाममाला		,,	

४६	,, रसपुञ्जजी (छोटे सुन्दरदास जी की परम्परा मे)	१ वृत्तविनोद, २ चमत्कारचन्द्रिका	१८७८ माघ शु० ५	अमुद्रित	छन्द शास्त्र के महान् विद्वान् थे।
४७	,, मधुपदासजी (मोहनजी मेवाडे की परम्परा मे)	१ नागरलता	१८६७	अमुद्रित	ये सगीत के विशेष विशेषज्ञ थे। राग रागनी मे गाने के पद्य ही नागरलता में हैं।
४८	,, चम्पारामजी (जमात उदयपुर)	१ क्षीरार्णव-छन्द सख्या १२००	१८६६ फा० शु० ५	,,	यह सग्रह ग्रन्थ है। इसमें स्वय सग्रहकार की रचना भी संमिलित हैं
४९	,, निगमदासजी (बनवारीदास जी की परंपरा में)	पद	उन्नीसवी सदी	,,	स्वतंत्र इनकी रचना प्राप्त नही हुई है। पद संग्रह मे पद हैं।
५०	,, आत्मविहारीजी	पद	,,	,,	इनके भी पद पद-संग्रह में मिले हैं। स्वतंत्र रचना की प्राप्ति नहीं हुई है।
५१	,, कृपारामजी	कीमियासार-गद्य मे। किसी फारसी पुस्तक का अनुवाद है	,,	,,	इनकी परम्परा आदि का पता नही लगा है।

५२	,,	स्वरूपदासजी (थांभा रज्जब जी)	१पांडवयशेन्दु चन्द्रिका, २ हृत्र-यनांजन, ३ वृत्तिबोध	१८६० से १६०० तक	मुद्रित अमुद्रित	पांडवयशेन्दु चन्द्रिका मुद्रित है। अन्य अमुद्रित। रचना अति प्रशस्त है।
५३	,,	हरीदासजी (वनवारीदासजी की परम्परा में)	वाणी, साषी, पद, सवैया, कवित्त, अरिल । नसीहतनामा।	उन्नीसवीं सदी	मुद्रित	दादूसेवक प्रेस से प्रकाशित–
५४	,,	आत्माराम जी (माखू जी की परंपरा में)	१ आत्मप्रकाश–चिकित्सा ग्रन्थ हिंदी पद्य में	१८८५ काती सुदी ३	,,	कई संस्करण निकल चुके हैं। अति उत्तम ग्रन्थ है।
५५	,,	सहजरामजी महाराज (बनवारीदासजी की परम्परा में)	१ सुरतिविलास-साषी, पद, कवित्त, रेखते आदि में रचना है	१८७५ – ७६	अमुद्रित	
५६	,,	निश्चलदासजी महाराज (बनवारीदासजी की परंपरा में)	हिंदी में १ विचारसागर, २ वृत्ति प्रभाकर-संस्कृत-कठोपनिषद्–ईशावास्योपनिषद् पर वृत्ति	१८७० से १६१५ तक	मुद्रित अमुद्रित	विचारसागर, वृत्तिप्रभाकर के कई संस्करण निकल चुके। ये महान् विद्वान् थे।
५७	,,	मंगलदासजी (जमात उदयपुर) (बड़े सुन्दरदास जी परंपरा में)	१ सुंदरोदय, २ गुरुपद्धति ग्रन्थ ३ तर्क खडन।	१८७० से १६१० तक	अमुद्रित	इनकी रचना प्रौढ है। छन्द:प्रयोग सुन्दरदास जी की तरह इनने भी बहुत किये हैं।

५८	,, रतनभजनजी	१ छन्दरत्न माला	उन्नीसवी का अन्त	अमुद्रित	प्राप्य पुस्तक अपूर्ण है।
५९	,, देवादासजी	१ जन्मूसर प्रसंग वर्णन			अन्य रचना है या नहीं अज्ञात है।
६०	,, आत्मविहारीजी	१ गूढार्थ अष्टपदी		,,	अन्य क्या-२ रचनायें हैं यह अभी पता नहीं लगा।
६१	,, ध्यानदासजी	१ सत्य हरिश्चन्द्र की कथा	उन्नसवी सदी का अन्त	,,	दोहे चौपाई में रचना है। अन्य रचना भी होनी चाहिये।
६२	,, पं० कन्हीरामजी (बनवारी दासजी की परंपरा में)	१ भगवद्गीता पर हिन्दीमे टीका, २ गुरुमंत्र टीका, ३ गायत्री सार, ४ वेदानुबन्ध विवेक—	बीसवी सदी	अमुद्रित	ये उच्चकोटि के विद्वान् थे। नं० २-३-४ संस्कृत में रचना हैं।
६३	,, नारायणदास जी (जनगरीनजी की परम्परा में)	१ "दादू चरित्र" अकबर सम्वाद पद्य में	१९३५ ज्येष्ठ ५.	अमुद्रित	
६४	,, पं० हीरादासजी (भिवानी) (बनवारीदासजी की परम्परा में)	१ दादू रामोदय	बीसवी सदी	मुद्रित	संस्कृत पद्य में दादूजी की जीवनी।

६५	श्रीमान् मोतीरामजी-पंडित (बनवारीदासजी की परम्परा में)	१ मुमुक्षुसार—	बीसवीं सदी	मुद्रित	यह वेदान्तप्रक्रिया का ग्रन्थ है। रचयिता वेदांत के परम पंडित थे।
६६	,, चतरदास जी	१ पद—	उन्नीसवीं सदी	अमुद्रित	इनकी यह रचना अपूर्ण है।
६७	,, पंचायणदासजी	१ संस्कृत में दादूजी का स्तोत्र		,,	
६८	,, चन्दनदासजी (चतरदासजी की परम्परा में)	१ छन्दोविद्मंडन	बीसवीं सदी	मुद्रित	आप छन्दःशास्त्र के बहुत विशेषज्ञ थे।
६९	,, स्वामी लक्ष्मीरामजी आचार्य (वैद्यरत्न)	१ सिद्धभैषज्यमणिमाला पर टिप्पणी २ आयुर्वेद विज्ञान—	बीसवीं का मध्य	,,	आप परम विद्वान् तथा अपने समय के भारत-प्रसिद्ध चिकित्सक थे।
७०	,, स्वामी नारायणदासजी पुष्कर	१ शिक्षा सप्तशती-लघुग्रन्थी १०-	,,	,,	आप अभी रचना कर ही रहे हैं।

नोटः—राघोदासजी की भक्तमाल में जिनकी रचना का पर्याप्त उल्लेख आदर के साथ किया गया है उनकी नामावलि। इस समय उनकी रचना प्राप्त नहीं हुई है।

१	वेणीदासजी (माखूजी के शिष्य)				भक्तमालकार के मत से इनने भागवत के दशम स्कन्ध का पद्यानुवाद किया था।

२	दयालदासजी (छोटे सुन्दरदासजी की परम्परा)				भक्तमालकारने इनकी रचनाओं का भी सादर उल्लेख किया है पर अभी प्राप्त नहीं हुई हैं।
३	नृसिंहदासजी (तेजानन्दजी की परम्परा)				इनके "छप्पयो" के लिये भक्तमालकारने बहुत प्रशंसाकी है।
४	अमरदासजी (तेजानन्दजी की परम्परा)				इनके पदों की समता भक्तमालकार के मत में सूरदासजी से की गई है।
५	दामोदरदासजी (जगजीवणजी की परम्परा)				इनकी रचनाओं के लिये भी भक्तमाल में विवेचन है।
६	गोविन्ददासजी (षडसीदासजी की परम्परा)				भक्तमालकारके मत में इनकी वाणी अतीव सरम है ऐसा उल्लेख है।
७	केवलरामजी महाराज (गरीबदासजी के शिष्य)				भक्तमालकारने इनके 'पदो' के लिये अतीव समादर व्यक्त किया है।

श्री स्वामी दादूजी महाराज के एकसौ बावन शिष्यों

की

नामावली

लालदासजी कृत "नाममाला" के आधार पर। रचनाकाल १८३५ माघ शुक्ला ५

संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	श्रीस्वामी गरीबदासजी महाराज	१७	श्रीमान् स्वा० जनगोपालजी
२	,, मशकीनदासजी महाराज	१८	,, ,, लघुगोपालजी
३	श्रीमती बाईजी बडी	१९	,, ,, जनगरीबजी
४	,, बाईजी छोटा	२०	,, ,, दूजनदासजी
५	,, हवा वहन	२१	,, ,, घडसीदासजी
६	श्रीमान् स्वा० सुन्दरदासजी बड़े	२२	,, ,, जैमलजी चौहान
७	,, ,, सुन्दरदासजी छोटे	२३	,, ,, जैमलजी जोगी
८	,, ,, रज्जबजी	२४	,, ,, सादोजी
९	,, ,, दयालदासजी	२५	,, ,, परमानन्दजी
१०	,, ,, मोहनदासजी दफतरी	२६	,, ,, तेजानन्दजी
११	,, ,, मोहनदासजी मेवाड़ा	२७	,, ,, बनवारीदासजी बड़े
१२	,, ,, मोहनदासजी दरयाई	२८	,, ,, बनवारीदासजी छोटे
१३	,, ,, मोहनदासजी भजनीक	२९	,, ,, साधूजी
१४	,, ,, जगजीवणजी	३०	,, ,, हरदासजी
१५	,, ,, जगन्नाथजी	३१	,, ,, कपिलमुनिजी
१६	,, ,, गोपालदासजी बड़े	३२	,, ,, चतुर्भुजजी

३३	श्रीमान स्वा० चतरदासजी बड़े	५५	श्रीमान स्वा० रामनदासजी
३४	,, ,, चतरदासजी छोटे	५६	,, ,, महादेवजी
३५	,, ,, चरणदासजी	५७	,, ,, नागरजी
३६	,, ,, प्रागदासजी	५८	,, ,, निनामजी
३७	,, ,, प्रयागदासजी	५९	,, ,, देवोजी
३८	,, ,, चैनजी	६०	,, ,, दयालदासजी (२)
३९	,, ,, प्रह्लाददासजी	६१	,, ,, देवेन्द्रजी
४०	,, ,, वषनाजी	६२	,, ,, ब्रह्माजी
४१	,, ,, लग्गोजी	६३	,, ,, मौनीजी
४२	,, ,, लालदासजी	६४	,, ,, पाँचोजी
४३	,, ,, मालूजी	६५	,, ,, दुर्गोजी
४४	,, ,, टीलाजी	६६	,, ,, धर्मदासजी
४५	,, ,, चाँदाजी	६७	,, ,, चतरदासजी (३)
४६	,, ,, हिंगोलगिरिजी	६८	,, ,, माधोदासजी
४७	,, ,, हरिसिंहजी	६९	,, ,, वस्तूजी
४८	,, ,, नारायणदासजी	७०	,, ,, सीधूजी
४९	,, ,, जैसोजी	७१	,, ,, वनमालीदासजी
५०	,, ,, शंकरजी	७२	,, ,, चतरुदासजी
५१	,, ,, वाभूजी	७३	,, ,, माँगोजी
५२	,, ,, राँभूजी	७४	,, ,, ईसरदासजी
५३	,, ,, सन्तदासजी	७५	,, ,, केशोदासजी
५४	,, ,, टीकूदासजी	७६	,, ,, वीसोजी

७७	श्रीमान् स्वा० कँवलनैनजी	९९	श्रीमान् स्वा० दूदाजी
७८	,, ,, ठाकुरदासजी	१००	,, ,, द्वारिकादासजी
७९	,, ,, गुणदासजी	१०१	,, ,, नारायणदासजी (वालो)
८०	,, ,, चतरुदासजी (२)	१०२	,, ,, भगवानदासजी
८१	,, ,, रामदासजी	१०३	,, ,, गयंददासजी
८२	,, ,, रामूदासजी	१०४	,, ,, डूँगोजी
८३	,, ,, नृसिंहदासजी	१०५	,, ,, टीकूदासजी
८४	,, ,, सांवलदासजी	१०६	,, ,, लाखाजी
८५	,, ,, संतोबदासजी	१०७	,, ,, नरहरिदासजी
८६	,, ,, बद्रीदासजी	१०८	,, ,, नीरोजी
८७	,, ,, जगदीशदासजी	१०९	,, ,, धीरोजी
८८	,, ,, रामदत्तजी	११०	,, ,, कृष्णदासजी
८९	,, ,, माधोदासजी (२)	१११	,, ,, साँगोजी
९०	,, ,, तोलोजी	११२	,, ,, दामोदरदासजी
९१	,, ,, सूरमेदाजी	११३	,, ,, परशरामजी
९२	,, ,, जगन्नाथजी (२)	११४	,, ,, बीठलदासजी
९३	,, ,, परमानन्ददासजी	११५	,, ,, लालदासजी नागो
९४	,, ,, गोपालजनजी	११६	,, ,, जंगीजी
९५	,, ,, गोविन्ददासजी	११७	,, ,, केवलदासजी
९६	,, ,, बोहिथदासजी	११८	,, ,, चूहड़जी
९७	,, ,, चेतनदासजी	११९	,, ,, ऊधवदासजी
९८	,, ,, भवनजी	१२०	,, ,, शारंगदासजी

१२१	श्रीमान स्वा० नृटदामजी	१३७	श्रीमान स्वा० हापोंजी
१२२	,, ,, मुरागदामजी	१३८	,, ,, टोडरजी
१२३	,, ,, पाल्हाजी	१३९	,, ,, जाधोजी
१२४	,, ,, जगोजी	१४०	,, ,, हरिदासनी (२)
१२५	,, ,, पचायणदामजी	१४१	,, ,, गगादासजी
१२६	,, ,, पूरोनी	१४२	,, ,, गोयददामजी
१२७	,, ,, चरणदासजी (२)	१४३	,, ,, रायमलजी
१२८	,, ,, हेमदासजी	१४४	,, ,, स्यामदासजी (१)
१२९	,, ,, विसनदासजी	१४५	,, ,, स्यामदासजी (२)
१३०	,, ,, कल्याणदासजी	१४६	,, ,, गोविन्ददासजी
१३१	,, ,, वीरमदासजी	१४७	,, ,, उदालवनजी
१३२	,, ,, नेतोजी	१४८	,, ,, सन्तदासजी भारु
१३३	,, ,, नगोजी	१४९	,, ,, जीतोजी
१३४	,, ,, कलोजी	१५०	,, ,, वाजिदजी
१३५	,, ,, मनोहरदासजी	१५१	,, ,, ध्यानदासजी
१३६	,, ,, सुजाणदासजी	१५२	,, ,, भगवानदासजी



श्री दादूजी महाराज की सम्प्रदाय के कुछ योगी, महात्मा, सिद्ध पुरुष, विद्वान, भजनीक, मान्यपुरुष, परोपकारी, संगीतज्ञ महात्माओं

की

नामावली

संख्या	महात्माओं के नाम	संख्या	महात्माओं के नाम
१	श्रीमान् स्वा० बडे सुन्दरदासजी महाराज घाटड़ा	१२	श्रीमान् स्वा० जोगीदासजी महाराज निपुनिये
२	,, ,, भक्तरामजी महाराज गंगायचे	१३	,, ,, परमहंसजी महाराज भर (धमोरे के पास)
३	,, ,, लालदासजी महाराज महलाणा	१४	,, ,, रामरिषजी महाराज (सावड़)
४	,, ,, बस्तीरामजी महाराज बुरहानपुर	१५	,, ,, मुनिजी महाराज भिवानी
५	,, ,, हरिदासजी महाराज	१६	,, ,, हीरादासजी कसूर
६	,, ,, मनोहरदासजी महाराज (नारनोल)	१७	,, ,, देवादासजी महाराज घाटड़ा
७	,, ,, दीपरामजी महाराज कूँकणवाली	१८	,, ,, नागरीदासजी भादवा
८	,, ,, भक्तरामजी महाराज बीकानेर	१९	,, ,, सेवारामजी महाराज ऋषिकेश
९	,, ,, मोतीरामजी महाराज नाँवा	२०	,, ,, सनमानदासजी महाराज
१०	,, ,, आदूरामजी महाराज राणीला	२१	,, ,, जयरामदासजी महाराज कूदन
११	,, ,, रामस्वरूपजी महाराज (सीयां वाले)	२२	,, ,, तिगराणेवाले महात्मा

परम सिद्ध महात्माओं

की

नामावली

संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	श्रीमान् स्वा० राघोदासजी महाराज करौली	१४	श्रीमान् स्वा० सुखरामदासजी महाराज विद्याद
२	,, ,, नारायणदासजी महाराज	१५	,, ,, चैनरामजी महाराज बगड़
३	,, ,, भक्तरामदासजी म० उदयपुर	१६	,, ,, सहजरामजी महाराज जयपुर (अस्थलस्थापक)
४	,, ,, सेवारामजी मोटलास	१७	,, ,, गोपालदासजी
५	,, ,, हृदयरामजी महाराज	१८	,, ,, राजारामजी महाराज
६	,, ,, केवलरामजी महाराज	१९	,, ,, तोलारामजी महाराज घाय
७	,, ,, जैतरामजी महाराज आचार्य (नरेना)	२०	,, ,, दौलतरामजी महाराज नरेना
८	,, ,, किसनदेवजी महाराज आचार्य गद्दी (नरेना)	२१	,, ,, हरजीरामजी महाराज गुढा
९	,, तोलारामजी महाराज	२२	,, ,, भक्तरामजी भाडेश्वर
१०	,, ,, हृदयरामजी महाराज	२३	,, ,, रामविलासजी महाराज
११	,, ,, उटीरामजी महाराज पटियाला	२४	,, ,, बालकरामजी महाराज
१२	,, ,, कानड़दासजी महाराज भिवानी	२५	,, ,, माधवरामजी महाराज
१३	,, ,, हंसदासजी महाराज ऊठाला (मेवाड़)	२६	,, ,, ठाकुरदासजी महाराज

२७	श्रीमान् स्वा० जमुनादासजी महाराज	४०	श्रीमान स्वा० सूंधरामजी महाराज
२८	,, ,, परशरासजी महाराज देवास	४१	,, महन्त मोहनदासजी निवाई
२९	,, ,, गुमानदासजी महाराज	४२	,, स्वा० रामरिखजी
३०	,, ,, हंसदासजी महाराज जयपुर अखाडा	४३	,, ,, रामदयालजी महाराज
३१	,, ,, धनीरामजी महाराज कसूर	४४	,, ,, परमेश्वरदासजी महाराज
३२	,, ,, नंदरामजी महाराज मण्डलेश्वर	४५	,, ,, मूधौली वाले
३३	,, ,, सत्यराम बाबा अजमेर	४६	,, ,, ढंडीरामजी सांभर
३४	,, ,, पाषाणदासजी उज्जैन	४७	,, ,, गणेशदासजी गूदडी वाले
३५	,, ,, मनोहरदासजी महाराज शिवपुरी	४८	,, ,, हरभजनजी लाडला जयपुर
३६	,, ,, शिवभजनजी महाराज बीदासर	४९	,, ,, अर्जुनदासजी
३७	,, ,, भैरूंदासजी	५०	,, ,, माधोदासजी
३८	,, ,, सूतलीदासजी रींगस	५१	,, ,, नवलदासजी महाराज
३९	,, ,, गणेशदासजी	५२	,, ,, रामरूपजी महाराज



त्यागी, भजनीक महात्माओं

की

नामावली

संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	श्रीमान् स्वा० शेषरामजी महाराज ज० उदयपुर	१४	श्रीमान् स्वा० हरभजनजी महाराज
२	" " तुलछीरामजी महाराज ज० उदयपुर	१५	" " नारायणदासजी महाराज
३	" " श्रीहरजीरामजी महाराज आचार्य नरेणा	१६	" " रामनिवासजी महाराज
४	" " हरिकिसनजी महाराज	१७	" " रामदयालजी महाराज
५	" " रामप्रकाशदासजी महाराज	१८	" " केवलरामजी महाराज
६	" " सेवगरामजी महाराज	१९	" " चेतरामजी महाराज लालसोट
७	" " रामरायजी महाराज	२०	" " ब्रह्मदासजी महाराज
८	" " हरखिमालजी महाराज	२१	" " घासीरामजी महाराज
९	" " शेषरामजी महाराज	२२	" " रामधनजी
१०	" " चन्द्रदासजी	२३	" " आत्मारामजी
११	" " रणजी महाराज	२४	" " दूलादासजी साभर
१२	" " रघुवरदासजी	२५	" " भारमलजी
१३	" " ईश्वरदासजी महाराज मारोठ		

परम विद्वान् तथा कवि महात्माओं

की

नामावली

संख्या	महात्माओं के नाम	संख्या	महात्माओं के नाम
१	श्रीमान् स्वा० पं० सुन्दरदासजी छोटे (महाकवि)	१४	श्रीमान् स्वा० महा पं० श्री निश्चलदासजी महाराज
२	,, ,, भीखजनजी (कवि)	१५	,, ,, पं० रामदासजी जोधपुर
३	,, ,, चतरदासजी (कवि)	१६	,, ,, पं० चतुर्भुजजी नरेना
४	,, ,, राघवदासजी (भक्तमालकार)	१७	,, ,, पं० सुखरामजी नरेना
५	,, ,, हरभक्तजी	१८	,, ,, पं० श्रीरायजी पौराणिक सोड़ा
६	,, ,, किशोरदासजी कवि	१९	,, ,, कवि चम्पारामजी ज० उदयपुर
७	,, ,, बालकरामजी कवि	२०	,, ,, कवि मंगलदासजी ज० उदयपुर
८	,, ,, रसपुंजजी महाकवि	२१	,, ,, कवि रतनभजनजी ज० उदयपुर
९	,, ,, स्वरूपदासजी महाकवि	२२	,, ,, पं० नारायणदासजी नागौर
१०	,, ,, मधुपदासजी कवि	२३	,, ,, पं० जमनादासजी शाहपुरा
११	,, ,, पं० रामरिखमी	२४	,, ,, पं० रामरतनजी वैद्य
१२	,, ,, पं० सनेहीरामजी	२५	,, ,, रामप्रसादजी वैद्य बग्गड़
१३	,, भाषा पं० स्वामी रामनिवासजी	२६	,, ,, पं० धनीरामजी वैद्य गोपालवाड़ी जयपुर

परमार्थी सन्तसेवी महात्माओं

की

नामावली

संख्या	महात्माओं के नाम	संख्या	महात्माओं के नाम
१	श्रीमान् मा० स्वा० दीपरामजी मडलीश्वर	१४	श्रीमान् स्वा० आत्मारामजी
२	,, स्वा० रामरूपजी महाराज	१५	,, ,, मीठारामजी
३	,, ,, बजरगदासजी	१६	,, ,, राजारामजी
४	,, ,, ब्रह्मप्रकाशजी	१७	,, ,, प्रेमदासजी (२)
५	,, ,, टीकमदासजी	१८	,, ,, दादूरामजी ब्यावर
६	,, ,, सुखनिवासजी	१९	,, ,, जादूरामजी
७	,, ,, सुखरामदासजी	२०	,, ,, रामनिवासजी
८	,, ,, सुखरामजी,	२१	,, ,, महादेवजी
९	,, ,, प्रेमदासजी अलेवा	२२	,, ,, शिवजीरामजी
१०	,, ,, हीरादासजी साँवड	२३	,, ,, गोपालदासजी भुवानी
११	,, ,, रामरूपजी	२४	,, ,, मोहनदासजी अवधूत
१२	,, ,, चैनरामजी	२५	,, ,, विदुरजी
१३	,, ,, महाराज-टहलदासजी	२६	,, ,, रघुनाथजी लालकोठी, जयपुर

संगीतज्ञ महात्माओं

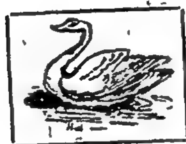
की

नामावली

संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	श्रीमान् सा० स्वा० निगमदासजी	१०	श्रीमान् सा० स्वा० श्रोपालजी ज० उदयपुर
२	„ „ „ आत्मविहारीजी	११	„ „ „ सेवारामजी ज० उदयपुर
३	„ „ „ रामलालजी सीकर	१२	„ „ „ चतुर्भुजजी ज० उदयपुर
४	„ „ „ सम्पतरामजी जयपुर	१३	„ „ „ ईश्वरदासजी
५	„ „ „ सूरदासजी इंदोखली	१४	„ „ „ रामशरणजी
६	„ „ „ प्रभुदासजी जैसलमेर	१५	„ „ „ रामधनजी
७	„ „ „ रामरतनजी किसनगढ	१६	„ „ „ नानूरामजी
८	„ „ „ चरणदासजी नरेना	१७	„ „ „ हीरादासजी
९	„ „ „ गोरधनजी	१८	„ „ „ दयारामजी

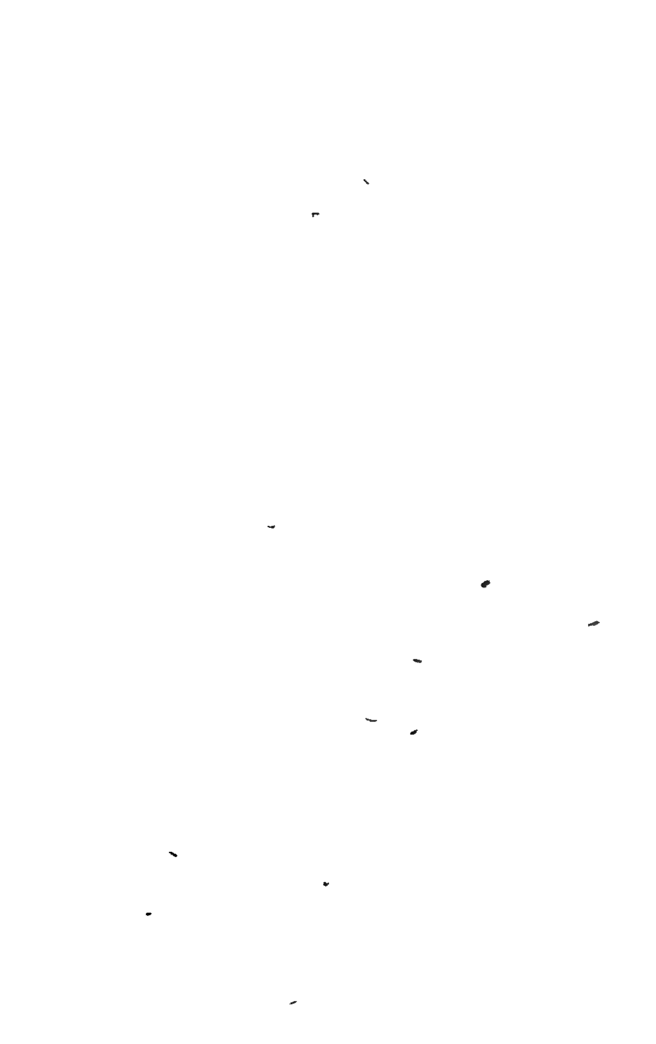
नोटः—*प्रारंभ की बावन थांमे, एकसौ बावन शिष्य तथा रचनाकारों की सूचियों को छोड़ शेष सब सूचियें श्रद्धेय महन्त श्री चेतनदासजी महाराज गरीबदासोत नरेना की अनुकम्पा से प्रस्तुत की गई हैं।*

सम्पादक—**मंगलदास स्वामी**
श्रीदादू महाविद्यालय, मोतीडूंगरी
जयपुर (राजस्थान)



श्री दादू महाविद्यालय

[२]





संस्था के संस्थापक—
आयुर्वेदमार्तण्ड श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज

श्रीदादू महाविद्यालय व छात्रावास

का

संक्षिप्त परिचय व विवरण

सं० १९७९ फाल्गुन शु० ५ से सं० २००८ के फाल्गुन तक

विद्यालय का आरम्भ—

जगन्नियन्ता की प्रकृति में अनेक कार्य सहसा सम्पन्न हुआ करते हैं। प्रत्येक कार्य की प्रेरणा तथा उसका प्रादुर्भाव विभिन्न रूपसे हुआ करता है।

कभी कभी ऐसे भी अवसर आते हैं कि जिनमें ऐसे कार्यों की दैवी-प्रेरणा से अकस्मात् स्फूर्ति हो जाती है तथा शीघ्र ही उनका मूर्तरूप भी बन जाता है जिनके विषय में न कभी सोचा गया है और न विचारा गया है। विद्यालय का उद्भव भी कुछ कुछ ऐसा ही है।

दादूपंथी सम्प्रदाय में आचार्यप्रवर महर्षि श्री स्वामी दादूजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के समय से ही एक वार्षिक मेले का आयोजन होता हुआ चला आरहा है। फा० शु० ३ से एकादशी तक यह मेला जयपुर राज्य के नारायणा (नरेना) कसबे में सम्पन्न होता है।

सम्प्रदाय के आचार्य का परिवर्तन होने के उपलक्ष्य में जो आयोजन होता है वह 'बड़ा मेला' कहलाता है। इस प्रकार का मेला तभी होता है जब एक आचार्य के गोलोकवास के अनन्तर उनके स्थान पर अपर आचार्य स्थान ग्रहण करते हैं।

सम्वत् १९७९ में माननीय स्वामीजी महाराज श्री दयारामजी ने अपने जीवनकाल में ही 'बड़े मेले' का आयोजन किया था। उक्त आयोजन करने का उनका विशेष ध्येय यह था कि वे अपने जीवनकाल में ही अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करना चाहते थे।

इस मेले की चर्चा सम्प्रदाय के साधुओं में चल रही थी। स्वर्गीय पूज्यपाद स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज को भी इस मेले के समाचार मिल चुके थे। उस समय पूज्य स्वामीजी के पास स्वामी कृपारामजी, स्वामी केशवदासजी, मैं

(लेखक) तथा अन्य कई साधु छात्र अध्ययन कर रहे थे । हम लोगों ने वैद्यजी महाराज से प्रार्थना की कि वे इस बार 'बड़े मेले' पर अवश्य पधारें । वैसे वैद्यजी महाराज वार्षिक मेले में बहुत ही कम जाया करते थे । हम लोगों के विशेष आग्रह पूर्ण निवेदन के उत्तर में उन्होंने निर्देश किया कि मेलो देखने के लिये मेले में जाना कोई उपादेयता नही रखता । यदि कोई कार्य सम्पन्न होसके तो मेले में जाना सार्थक है । हम लोगों ने निवेदन किया कि यदि आप आगे होकर सम्प्रदाय को कुछ निर्देश करेंगे तो कार्य होना भी कठिन नही है । कुछ दिनों की ऊहापोह के पश्चात् वैद्यजी महाराज का मेले में जाने का निश्चय होगया ।

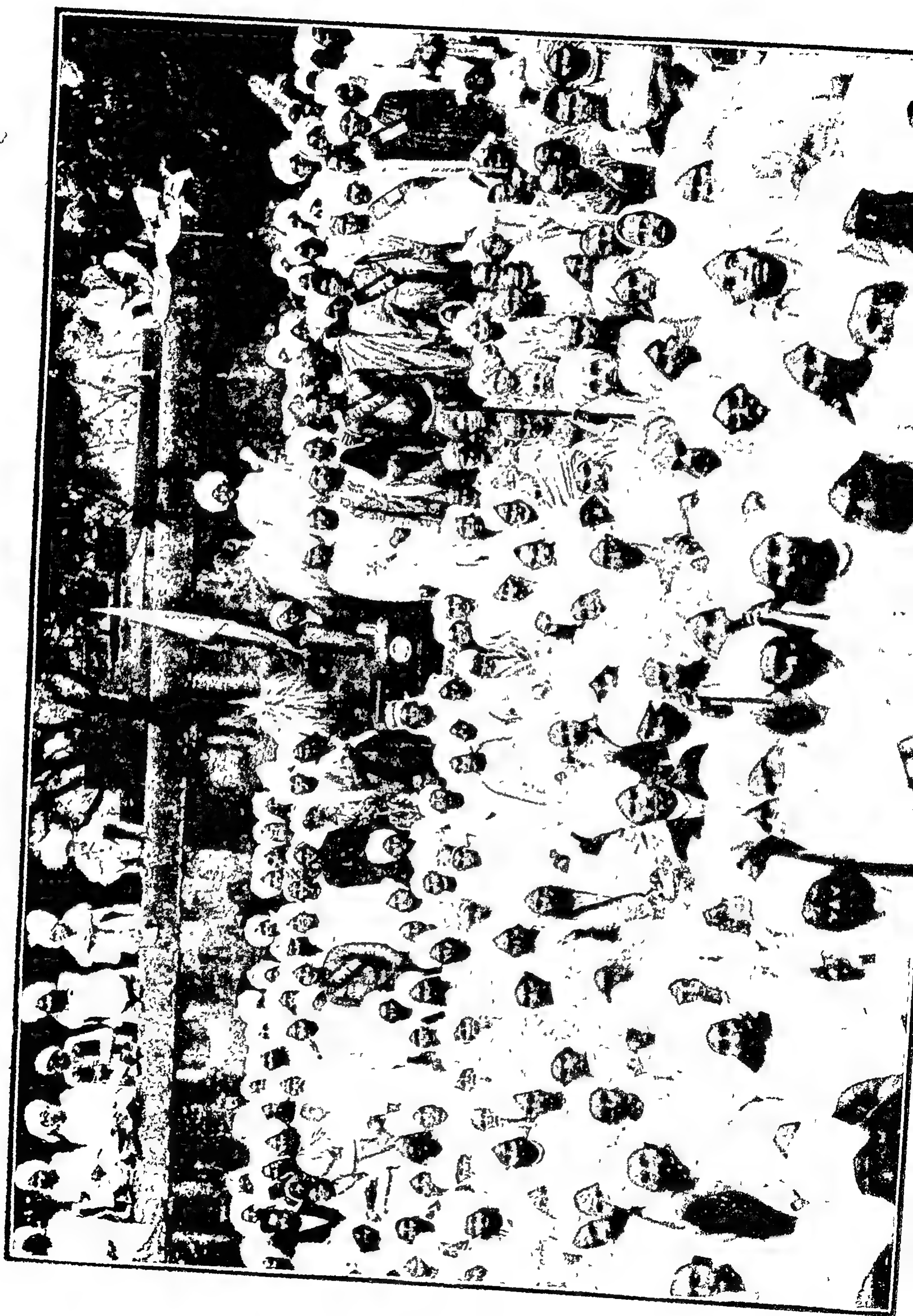
मेले पर सम्प्रदाय के हितार्थ एक सभा के निर्माण का निश्चय किया गया तथा उसके आधीन या उसके द्वारा संचालित एक शिक्षण संस्थाकी योजना को भी विचारार्थ रखने का निर्णय किया गया ।

समय व्यतीत हुआ और मेले का समय आ पहुचा । वैद्यजी महाराज के अनेक श्रद्धालु तथा प्रेमी महात्माओं ने भी वैद्यजी महाराज को नरेना पधारने की प्रार्थना की । फलस्वरूप वैद्यजी महाराज मेले में पधारे ।

सम्वत् १९७६ फाल्गुन शुक्ला ५ को रात्रि के समय कान्हडदासजी के चौभीते में मेले पर आये हुये सन्त महात्माओं की सभा का आयोजन किया गया । सभा मे स्वामी केशवदासजी आदि अनेक गण्य मान्य सज्जनों के प्रवचन हुए । दादूपंथी सम्प्रदाय की उन्नति, तथा सम्प्रदाय के हित उसके साहित्य के संरक्षण प्रकाशन व शिक्षाप्रसार के लिये 'दादूदयालु महासभा' की स्थापना का प्रश्न विचारार्थ प्रस्तुत किया गया ।

उपस्थित सहस्रों महात्माओं ने (जिनमें सन्त, महन्त, जमातें, विरक्त, तपस्वी आदि सभी थे) प्रस्ताव का अत्यन्त उत्साह से समर्थन किया । सर्व सम्मति से **'दादूदयालु महासभा'** का उसी समय निर्वाचन कर सभा की स्थापना की गई ।

फाल्गुन शुक्ला ६ को सायंकाल सभा के द्वितीयदिवस का अधिवेशन इसी स्थान में प्रारम्भ हुआ ।



इसी अधीवेशन में वैद्यजी महाराज द्वारा शिक्षाप्रचार के लिये एक शिक्षण संस्था स्थापित करने का प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित किया गया। प्रस्ताव के समर्थन तथा अनुमोदन में अनेक विज्ञ महात्माओं ने अपने अपने विचार व्यक्त किये। परम उल्लास तथा उत्साह के साथ यह प्रस्ताव भी सर्वानुमति से स्वीकृत किया गया। प्रस्ताव की स्वीकृति के साथ ही संस्था की स्थापना के लिये आर्थिक सहायता की मांग की गई। महन्त, सन्त तथा सभी श्रेणियों के महात्माओं ने यथा शक्य सहायताकार्य में भाग लेना आरंभ किया।

सभा का तीसरे दिन का अधिवेशन फा० शु० ७ को हुआ। उक्त अधिवेशन में शिक्षणसंस्था की स्थापना तथा उसके कार्यसंचालन के लिये एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन किया गया। निर्वाचित समिति को अधिकार दिया गया कि वह अपने निश्चय के अनुसार संस्था की स्थापना तथा उसके कार्यसंचालन की व्यवस्था करे।

सहायताप्राप्ति के लिये पूज्य वैद्यजी महाराज तथा कुछ अन्य महात्मा, जिनमें महन्त मनीरामजी. महन्त चैनसुखजी, स्वामी लालदासजी, बाबाजी महाराज गोपालदासजी तथा सन्त केशवदासजी आदि तथा कुछ मंडलीश्वरों का एक शिष्टमण्डल सब सन्त महात्माओं के पास पहुंचा।

शिष्टमण्डल को अपने कार्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। इस मेले पर दो हजार रुपये नकद तथा इकतीस हजार की सहायता के वचन मिले। इस तरह शिक्षासंस्था के लिये पहिले दौर में ही तेंतीस हजार के फंडका रूप बन गया।

शिक्षासंस्था को अच्छे रूप में संचालित करने के लिये उपयुक्त स्थान तथा पर्याप्त धन की आवश्यकता है, यह बात वैद्यजी महाराज से छिपी नहीं थी। कार्य के भावी रूप को सोचते हुए प्राप्त धनराशि बहुत अपर्याप्त थी।

वैद्यजी महाराज की धारणा थी कि संस्थाकी स्थापना कर देना तो कठिन नहीं है, पर आगे उसकी उचित आर्थिक सहायता तथा उसकी देख भाल व कार्यसंचालन करने के लिये योग्य व्यक्तियों की परमाश्यवकता है। यदि सहायक और कार्यकर्ताओं की व्यवस्था न हो तो फिर कार्यसंचालन सहज नहीं है। वे चाहते थे कि सहायता का कार्य वे ही कर सकते हैं जो स्वयं त्यागी हैं तथा प्रभावशाली

भी हैं। वे ऐसे व्यक्तियों के अनुसन्धान में थे। दैवात् उनका ध्यान उस महात्मा की ओर गया जिसका उपकरण तूम्बा, पालकी और एक चादर मात्र था। उनका नाम था स्वामी **सेवारामजी**। वैद्यजी महाराज ने उनसे अनुरोध किया कि वे इस कार्य में उचित सहायता प्रदान कराने का प्रयास करें। स्वामी सेवारामजी ने इसका उत्तर मौन भाषा में दिया। स्वामी सेवारामजी भी चाहते थे कि साधु लोग पढ़ें और विद्वान बनें। उनकी वह अन्तर्विचारणा इस अवसर पर और प्रबल हुई। उन्होंने मानसिक संकल्प में ही निश्चय किया कि, होसके तो, इस काम में शक्य प्रयास अपने द्वारा भी किया जाना चाहिये। वैद्यजी महाराज की आशा हुई और वह पूरी भी हुई। काम करने के लिये उत्साही, शिक्षाप्रेमी तथा सम्प्रदाय के उत्कर्ष की परम कामना करने वाले महन्त चैनसुखजी डीडवाना आगे आये।

इस तरह इस बृहत् मेले पर वैद्यजी महाराज का पधारना मेले की शोभावृद्धि के साथ साथ सम्प्रदाय सेवा के लिये परम फलदायी सिद्ध हुआ। सभा का निर्माण तथा शिक्षासंस्था के आयोजन का सूत्रपात होगया।

२— स्थापना

नरेना के मेले के पश्चात् जयपुर में कार्यकारिणी ने अपना कार्यारंभ किया। सहायता के जो वचन प्राप्त हुए थे उनकी, रकम मंगानी शुरू की गई। शिक्षासंस्था की स्थापना कब की जाय, इस पर विचारविमर्श होने लगा। बहुत से व्यक्तियों की सम्मति थी कि पर्याप्त कोषसंग्रह हो जाने के बाद ही कार्यारम्भ करना चाहिये। क्योंकि कोष के ब्याज की सहायता से ही काम का संचालन करना है। कार्यकारिणी के एक प्रमुख सदस्य माननीय स्वर्गीय डाक्टर दलजंगसिंहजी रांका एम० बी० ने संस्था की स्थापना तुरन्त करने पर बल दिया। उन्होंने अनेक ऐसे उदाहरण उपस्थित किये जिनमें कार्यारम्भ कर देने से काम चलने लगा। कार्यारम्भ न कर कोष के एकत्र होने की आशा वाले कार्य यातो प्रारम्भ ही नहीं हुए या फिर उनका आरम्भ समय बीतने पर हुआ। उनका आग्रह था कि कार्य प्रारंभ कर देने से एतदर्थ विशेष उद्योग अवश्य करना पड़ेगा, अन्यथा कार्य की गति धीरे धीरे मन्द पड़ने लगेगी।

वस्तुतः उनके कथन में दम था, तथ्य था। जो सदस्य कोषसंग्रह के बाद का करने कार्य विचार रखते थे वे भी फिर उनके विचार में सहमत होगये। निश्चय कर लिया गया कि जेठी दशहरा को संस्था की स्थापना कर दी जाय।

स्थापना के लिये दो प्रश्न हल करने थे। पहिला स्थान का, तथा दूसरा प्रविष्ट होने वाले छात्रों का। पहिला प्रश्न ही विकट बन गया। स्वतन्त्र जमीन मोल लेकर स्थान बनाने के लिये पर्याप्त समय तथा अर्थ की आवश्यकता थी। यह कार्यकारिणी के साध्य रोग नहीं था।

कार्यकारिणी के अन्यतम सदस्य जयपुर के प्रमुख नागरिक, स्वामी रतिरामजी की परम्परा के उत्तराधिकारी स्वामी श्री केशवदासजी ने स्थान की उलझन को दूर करने का निश्चय किया। रामनिवास बाग के एलबर्ट महल के पीछे ही रामनिवास बाग से सटा हुआ स्वामी रतिरामजी का बाग था। उसके तीन हिस्से थे। उनमें से एक हिस्सा जो "पुराना महल" के नाम से प्रसिद्ध था, उन्होंने शिक्षासंस्था की स्थापना के निमित्त दे देने का निश्चय व्यक्त किया।

उक्त सीमा मे पुराना महल. जिसमें दो कोठरियाँ थीं, इसके उत्तर मे एक तिवारा मय दो कोठरियों के था, दक्षिण में एक तिवारा मय एक कोठरी के था ये ही पक्के मकान थे। चारों ओर डडा था। एक कूवा बना हुआ था। कार्यकारिणी के सदस्यों ने स्थान का अवलोकन कर स्वामीजी के प्रस्ताव को सधन्यवाद स्वीकृत कर लिया।

संस्था की प्रारम्भिक अवस्था के लिये यह स्थान पर्याप्त था। स्थानवृद्धि की उसमें गुञ्जाइश थी ही। वैसे यह स्थान शहर से न अधिक दूर था और न अधिक समीप। स्वच्छता व जलवायु के विचार से रामनिवास के पास होने के कारण उपयुक्त भी था।

स्थान की बाधा सुलझ गई। छात्रों के लिये स्वामीजी श्री सेवारामजी महाराज ने जमात उदयपुर के साधुओं में प्रेरणा की। फलस्वरूप कई छात्रों के आने का भी निश्चय हो गया।

तिथि का निश्चय, स्थान की उपलब्धि और छात्रों के प्रवेश की समस्या सुलझ चुकी थी। अब केवल एक समस्या शेष थी और वह यह थी कि संस्था की स्थापना किससे कराई जाय, तथा उस समय क्या कार्यक्रम अपनाया जाय? कुछ ऐसा निश्चय किया गया कि संस्था की स्थापना के समय प्रमुख-प्रमुख कुछ महात्माओं को आमन्त्रित किया जाय तथा विशेष दिखावटी समारोह बिलकुल न किया जाय।

ब्रह्मनिष्ठ, परम पावनान्तःकरण पंडितप्रवर स्वामी श्री नारायणमुनिजी महाराज के करकमलों द्वारा इसके उद्घाटन का निश्चय किया गया। स्वामीजी उस समय बीकानेर में थे। उनसे प्रार्थना की गई और उन्होंने प्रार्थना को सहर्ष स्वीकृत कर लिया।

सं० १९९७ ज्येष्ठ शुक्ला दशमी (गंगा दशमी) के शुभ मुहूर्त में वैदिक विधि से देवार्चन कर जागरण तथा पूज्य श्री दादूजी महाराज की वाणी का मंगलमय पाठ कर तेरह छात्रों के प्रवेश के साथ "श्रीदादू महाविद्यालय व छात्रावास" का शुभ आरंभ महामना स्वामी श्री नारायणमुनिजी महाराज के पावन करकमलों से हुआ। जयपुर के प्रमुख महात्मा तथा शिक्षाप्रेमी विद्वद्वर्ग व बाहर के आहूत विशेष गण्य मान्य सज्जन उपस्थित थे।

अध्यापन के लिये नवलगढ़ निवासी पंडित श्री हीरालालजी की नियुक्ति की गई। सम्पूर्ण छात्र अक्षराभ्यास से ही अध्ययन करने वाले थे अतः हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा का श्रीगणेश किया गया। इस तरह नरेना के मेले पर निश्चय किये गये संकल्प को बिना विशेष विलम्ब के तथा बिना विशेष उपकरण सामग्री के सहज ही दैवी प्रेरणा से अत्यल्प साधन सामग्री में ही मूर्तरूप प्राप्त हो गया।

१ प्रारम्भिक काल—

विद्यालय का प्रारम्भकाल बहुत ही न्यून-साधन-सम्पन्न था। तेरह छात्र तथा चौदह हजार के कोष से इसका आरम्भ किया गया था। विद्यालय एकांगी विद्यालय न था साथ में छात्रावास भी आरम्भ से ही रखा गया था।

साधु-सम्प्रदाय का दीर्घकाल से चला आरहा क्रम शिक्षाप्रधान न होकर साधनाप्रधान था। संस्था को आरम्भ करने वालों का ध्येय प्रारम्भ से ही यह था कि संस्था के लिये न तो अनावश्यक दिखावे को ध्यान दिया जाय और न अयथार्थ प्रचार को।

संस्थास्थापना का ध्येय था साधुओं की उस उपेक्षावृत्ति को निवृत्त करना जो दीर्घकाल से उनमें शिक्षा से विपरीत भावना को बद्धमूल किये हुये थी।

छात्रावास का आयोजन इसी कारण किया गया था कि रहने की समुचित व्यवस्था के बिना बाहरी बच्चों को शिक्षित करसकना संभव नहीं था।

संस्था की स्थापना के पश्चात् ही कुछ दैवी कारण या अदृष्ट से जन्य ऐसी बाधायें उपस्थित हुईं जिनके कारण संस्था का शैशवकाल अति संकटग्रस्त रहा। आरंभकाल, अल्प साधन व अनुभवहीनता की त्रिपुटी तो पहिले थी ही, उस पर उपर्युक्त विशेष बाधा का आना कोढ़ में खाज की तरह विकट उपद्रवरूप का था, पर संस्थाप्रेमियों की दृढ़ता व सहायकों की स्थिरता ने बाधाओं का निराकरण कर दिया।

विद्यालय तथा छात्रावास उभय होने से स्थायी कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता प्रतीत हुई। संस्था के आरम्भ करने से पहिले ही इस पर विचार कर लिया गया था तथा कुछ व्यवस्था भी की गई थी।

छात्र जो प्रविष्ट हुये थे वे अधिकांशतः अक्षराभ्यास वाले ही थे, अतः हिन्दी और गणित के अध्यापनार्थ एक अध्यापक की नियुक्ति की गई। छात्रों के भोजन, वस्त्र, रहन सहन, शिक्षण आदि का सभी व्यय संस्था के जिम्मे था अतः इस खर्च के निर्वाह के लिये आर्थिक सहायता की परमावश्यकता थी। कुछ व्यक्तियों से एक एक मास के व्ययप्रदान की प्रार्थना की गई। उनने निवेदन के अनुरूप सहर्ष सहायता प्रदान कर संस्था के कार्य को सुगम कर दिया। यह काम कोई आठ दश महीने चले यह बात तो थी नहीं, यह तो अनवरत ही चलनेवाला था। छात्र जो प्रविष्ट हुए थे उनकी संख्यावृद्धि होनी ही थी, अतः अर्थसंग्रह का काम आवश्यक था। पहिले वर्ष के अन्त तक छात्रसंख्या अठारह हो गई।

स्वामी रतिरामजी के बाग का जो हिस्सा स्वर्गीय सन्त केशवदासजी ने प्रदान किया था उसमें दो पक्के स्थान तथा एक रसोई बनाने की कोटड़ी थी। छात्रों की वृद्धि के साथ-साथ स्थान की भी और आवश्यकता का होना अनिवार्य था। छात्रावास होने से बच्चों के लिये उचित भोजनव्यवस्था के लिये गोशाला का होना आवश्यक प्रतीत हुआ। गोशाला करने पर तन्निमित्त अन्य व्यवस्थायें स्वतः प्राप्त थीं।

प्रारम्भ के कार्य में उत्साह की तीव्रता होती है, संस्थापक, सहायक तथा कार्यकर्ता सभी में जोश था और था प्रबल उत्साह। छात्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी। द्वितीय वर्ष में करीब तीस छात्र हो गये। शिक्षा का काम भी कुछ आगे बढ़ने लग गया था।

स्थान का अभाव छप्पर तथा टीन लगाकर दूर किया गया। व्ययनिर्वाह के लिये संस्था के अन्यतम सहायक स्वामी श्री सेवारामजी महाराज ने अनुग्रह किया। उनने भारत के स्वनामधन्य बिडलापरिवार के माननीय जुगलकिशोरजी बिडला व घनश्यामदासजी बिडला से सौ सौ रुपये मासिक की सहायता की व्यवस्था करवादी। दो सौ रुपये मासिक का स्थायी सहारा हो जाने से संस्था का काम सुचारुरूप से सम्पन्न होने लगा।

दूसरे वर्ष में ही अध्यापक बढाने की आवश्यकता प्रतीत हुई, अत एक अध्यापक और नियत किया गया। संस्कृत का सामान्य अभ्यास भी चालू किया गया। दूसरे वर्ष के अन्त तक आरम्भ में प्रविष्ट होने वाले छात्रों ने सामान्य हिन्दी व गणित का ज्ञान प्राप्त करलिया था। दूसरे अध्यापक रखे गये थे उनने उन्हें संस्कृत की नियमित परीक्षोपयोगी शिक्षा देना आरम्भ किया।

महन्त चैनसुखजी महाराज डीडवाणा-निवासी जिनने आरम्भ में ही प्रबन्धसेवासम्बन्धी काम को अपनाया था बराबर पूरी लग्न से अपने उत्तरदायित्व को निर्वाहित कर रहे थे।

धीरे धीरे कार्य के उपकरणों का अनुबन्ध भी पूरा हो रहा था। शिक्षा-प्रेमी सहायकगण का ध्यान संस्था की ओर आकर्षित था ही। उनकी भावना में वृद्धि हो रही थी तथा वे शक्य सहायता का उत्तरदायित्व सम्यग् निबाहने में प्रयत्नशील थे। छात्रों की संख्या में धीरे धीरे वृद्धि होरही थी। तृतीय वर्ष के आरम्भ में छात्र तेरह से बढकर तीस तक जा पहुँचे थे

सम्प्रदाय के जमात, उतराधे, स्थानधारी, विरक्त सभी वर्गों ने अपनी अपनी इच्छानुसार सहायता में सहयोग प्रदान किया। चन्दे की रकम पचास हजार से कुछ ही कम रही थी। तीस हजार के करीब की रकम प्राप्त भी हो चुकी थी।

चिरकाल से शिक्षा के प्रति बद्धमूल उदासीनता सहसा साधुसमुदाय का पिंड छोड देती यह सम्भव नहीं था। पूर्वकाल में जब जब इस प्रकार का प्रयास किया गया तब तब इस भावना ने ही बाधा पहुँचाई थी। दो तीन बार उठाया गया यह कदम सुस्थिर नहीं हो पाया था पर इस बार उदासीनता की उस बाधा का सामना करते हुये आरम्भ किये गये प्रयास को मूर्त रूप देदिया गया था और वह मूर्त रूप अब इस स्थिति में आगया था कि उस प्रतिबन्धी भावना की बाधा का सामना करते हुये भी वह अपनी स्थिति सुदृढ रख सके।

प्रत्येक कार्य का प्रारम्भकाल ही अधिक संकटमय हुआ करता है। जन्म पाते ही बच्चे की रक्षा का विशेष प्रयास आवश्यक होता है। थोड़ीसी असावधानी ही उसके जीवन के लिये प्राणघातक बन जाती है। पौधा उत्पन्न होते ही विशेष रक्षणीय होता है इसी तरह सामूहिक कार्य में भी प्रारम्भ का समय अधिक सावधानी का रहता है। यदि उस समय उचित सावधानी तथा पूरी तत्परता न रखी जाय तो काम की स्थिति लड़खड़ा जाती है।

विद्यालय के शैशव के पांच वर्ष पूरे होने तक चालीस छात्र होगये। सहायता की रकम भी करीब चालीस हजार रुपये के पहुँच गई। अध्यापक भी चार शिक्षा का कार्य सम्पन्न करने लग गये थे। आरम्भ में प्रविष्ट हुये छात्रों में से आठ बनारस की प्रथमा परीक्षा दे चुके थे। पीछे के छात्र भी प्रथमा की कक्षा में आगये थे। किसी भी नये काम का आरम्भ होता है तब उसके चलने, न चलने की आशंका उत्पन्न हुआ ही करती है। बहुत से व्यक्ति जो पहिले के प्रयासों से परिचित थे, सशंक थे। उनको यह विश्वास कम था कि कार्य सम्यग् रूप से संचालित हो सकेगा। उनकी आशंका एकान्ततः निर्मूल नहीं कही जा सकती। क्योंकि इस तरह के सामूहिक कामों में अर्थ, श्रम, तथा सहयोग की समुचित उपलब्धि प्राप्त हो ही जाय ऐसा नहीं है।

स्वार्थानुबन्धी काम की तरह निःस्वार्थ काम में सब ओर से तत्परतामय सहयोग मिल सके ऐसा बहुत ही कम देखने में आया करता है। पर ईश्वरानुकम्पा से तथा महान् पुरुषों के शुभ संकल्पबल से इस काम के आरम्भ में सभी ओर से तत्परतामय सहयोग प्राप्त हुआ। विरोधी संभावनायें दूर होगईं। काम का ढांचा बैठ गया। पांच वर्ष का शैशव संस्था का निर्विघ्न समाप्त होगया। विघ्न आये उनका निराकरण करलिया गया। संस्था के चलने न चलने की शंका का निवारण होगया। जो व्यक्ति सशंकित थे उनका भी विश्वास पलटने लगा। संस्थापक, सहायक तथा कार्यकर्ता तो विश्वासमय थे ही। इस तरह संस्था के प्रारंभकाल का समय सुव्यवस्थित रूप में व्यतीत होगया और संस्था ने अपनी स्थिति स्थिर करली।

४. आरम्भ से अबतक—

सार्वजनिक संस्थाओं के लिये तीस वर्ष का समय थोड़ा समय नहीं कहा जा सकता। संस्था का जिस समय आरम्भ हुआ था उस समय से आज के

समय में कितना अन्तर पड़ गया है यह सभी के सामने है। समय परिवर्त्तनशील कहा ही गया है। संसार का चक्र अनवरत घूमता है। व्यक्ति, देश, काल तथा विचारसरणि में पल पल में परिवर्त्तन होता ही रहता है। केवल संसार का या काल का प्रवाह ही एकमात्र एकरस कहा जा सकता है।

संस्था के आरंभ के समय जो जो परिस्थितियें ध्यान में आई थी उनमें से अनेक आज समाप्त हो चुकी हैं। देश, काल ने अपना इतना परिवर्त्तन करलिया है कि उस समय की आवश्यकतायें आज अनावश्यकताओं में बदल गई हैं। संस्था के आरम्भ का मुख्य उद्देश्य था उस में भी भारी परिवर्त्तन की स्थिति आगई है। जिन महानुभावों के विचार से संस्था ने जन्म लिया था वे दिवंगत हैं। जिन व्यक्तियों ने इसका पालन पोषण किया था उनमें भी अनेकों स्मरणीय क्षेत्र में पहुँच गये हैं। काल क्षण-क्षण बदलता है। एक ही दिन में दिनकी कितनी अवस्थायें पलटती हैं तब तीस वर्ष के काल में अनेक अवस्थाओं का आना जाना लगा रहना स्वभावसिद्ध था।

आरम्भ के समय जिन जिन कल्पनाओं का एक भावी चित्र उपस्थित किया था, वास्तविकता ने उन चित्रों को काल्पनिक सिद्ध कर दिया था। विचार और व्यवहार में समीकरण सर्वदा रहे यह अतीव कठिन है यह तथ्य पुन पुन अभि व्यक्त होता रहता है।

जीवन उतार चढ़ावमय है तब एक सामूहिक संस्था के जीवन में उतार चढ़ाव का अनुबन्ध न हो, यह शक्य नहीं था।

जिस समय संस्था की स्थापना हुई थी उस समय शासन का ढांचा भिन्न था। प्राइवेट शिक्षासंस्थाओं पर राजकीय दृष्टि एकान्तत अनुग्रहमय नहीं रहा करती थी। अंग्रेजी राज्य ने अपनी स्थिति की सुदृढता के लिये सब क्षेत्रों पर अपना अंकुशमय दृढ पंजा गडा रखा था।

संस्था जिस स्थान में थी उसीके पास राजकीय कालेज का निर्माण हुआ। नवनिर्मित कालेज के संचालन के लिये मि० ओवन्स शिक्षाधिकारी के रूप में जयपुर आये। विद्यालय के छात्रों का भेष एक-सा रखने का नियम था, वे कटीवस्त्र और चोला रखा करते थे। देश में स्वराज्यप्राप्ति का आन्दोलन गांधीजी द्वारा तीव्रता से संचालित होरहा था। विदेशी वस्त्रों के बायकाट की आवाज बुलंद थी। स्वत-

स्वत्तप्राप्ति के आन्दोलन का असर शिक्षासंस्थाओं में शीघ्र होना स्वाभाविक था।

विद्यालय के छात्रों के वस्त्र भी देशी ही व्यवहार में लाये जारहे थे। विद्यालय में एक छोटासा पुस्तकालय था। पुस्तकालय में नवीन जागृति के साहित्य का समावेश भी था।

विद्यालय के स्थान का रास्ता जो कि रामनिवास फाटक से आने जाने का था, वह अब कालेज कम्पाउड में आगया था। ओवन्स साहब को यह अखरा, उनने विद्यालय के इस दरवाजे को बन्ध कर देने की आज्ञा दी। लडकों की वेश-भूषा भी उन्हें अच्छी प्रतीत नहीं हुई। शायद वे देशी वस्त्र की छूत को फैलने वाला रोग समझ रहे हों! उनने राज्य के शिक्षाविभाग तथा रेवेन्यू विभाग को अवगत किया कि विद्यालय का यह दरवाजा बन्ध करवा दिया जाय। हमने अपने रास्ते के लिये यदि यह बन्ध किया जाता है तो दूसरे मार्ग की मांग की। बहुत कुछ विवाद के बाद रास्ता बन्ध नहीं हुआ। संस्था की शिक्षा में उस समय छात्रों को कुछ-२ अंग्रेजी का अभ्यास भी करवाने का प्रयास चालू था। हम एक अच्छे अंग्रेजी शिक्षक की चाह में थे। कालेज के एक एम० ए० के छात्र ने उस समय ओवन्ससाहब के जासूस के रूप मे विद्यालय में शिक्षक के पद पर प्रवेश किया। उसकी रिपोर्ट पर पुस्तकालय की करीब पचास पुस्तकें जिनको कि इन्सपेक्टर महोदय ने तलाशी में प्राप्त की, शिक्षाविभाग ने मँगवाली। संस्था को उस समय शिक्षा विभाग से चालीस रुपये मासिक सहायता प्राप्त होती थी। ओवन्ससाहब इस घटना से और भी क्षुब्ध हुये। इस घटना से उनकी भावना में इस बातने और भी बल प्राप्त किया कि इन्हें यहां से हटाना चाहिये।

कालेज-निर्माण से आस पास के सब स्थान भी अवरुद्ध होगये। हमें जो स्थान केशवदासजी ने बताया था वह संस्था की स्थिति के अनुसार अपर्याप्त था। छात्रों को शौच के लिये फतहटीबे जाना पड़ता था। बाग के कूवे का पानी अपेय था। पानी रामनिवास बाग से लाना पडता था। कुछ काल बाद पानी का कष्ट तो निवृत्त होगया जब कि पी० डब्लू० डी० के महकमे से एक नल विद्यालय के पिछले भाग में खोल दिया गया। शिक्षाविभाग के प्रमुख अधिकारी की विपरीत दृष्टि, स्थान का संकोच आदि ऐसे हेतु थे जिनने संस्था के स्थान-परिवर्त्तन की भावना को उत्पन्न किया तथा उसे बलवती किया।

शिक्षा का कार्य जैसे जैसे अग्रसर होता गया वैसे वैसे शिक्षा की विशेष व्यवस्था करने की भी आवश्यकता बढ़ी। अध्यापको की संस्था में विवर्द्धन हुआ। छात्रो की सख्या पचास तक हो चुकी थी। सख्यावृद्धि के अनुरूप ही उपकरण-वृद्धि होना स्वाभाविक था। प्रवन्धव्यवस्था में भी वृद्धि हुई है। आर्थिक परिस्थिति सामान्य होने से अर्थसाध्य जो व्यवस्थायें थी वे नही अपनायी जासकी। संस्था का स्वरूप एक तरह से एक सीमा तक स्थिर-सा होगया था। छात्र पचास के आस पास रहते थे। इससे अधिक छात्रो की सख्या होने के लिये आर्थिक व अन्य व्यवस्थाये बढ़ती, उनकी पूर्ति शक्य नहीं थी। पचास की छात्रसंख्या में अधिक से अधिक छात्र ऐसे रहते थे जिनका न केवल शिक्षण का अपितु भोजनादि का सभी व्यय सस्था से पूरा किया जाता था। छात्रावास मे रहने वाले छात्रो से सात रुपये मासिक लेने का नियम स्वीकृत था। पर इस नियम की पूर्ति वैसे ही छात्रों से हो सकती थी जो सम्पन्न स्थान के होते।

साधुओं की प्रचलित स्थिति मे अधिक सम्पन्नता के कोई विशेष साधन अपनाये हुये नही थे। अधिकाश साधु तो ऐसे ही होते थे जिनके सामान्य भरण पोषण से भिन्न कोई आर्थिक आय नही थी। इस स्थिति में अधिकाश साधु जो अपने शिष्यो को शिक्षित करना चाहते थे वे मासिक व्यय छात्रावास को दे सकने में समर्थ नही थे। संस्था मे आयके स्रोत सीमित थे। अत अपनी आयके स्रोत के अनुसार ही व्यय की व्यवस्था की जा सकती थी। इसीसे संस्था का रूप एक दायरे तक बन्ध सा गया था।

सस्था की स्थापना के समय से बीस वर्ष का समय समृद्धि का समय कहा जा सकता है, क्योंकि इस समय में छात्रावास के उपयोगी सामग्री खाद्य वस्तुएँ चारा फूस, इन्धन, वस्त्र आदि बहुत सस्ते थे। घी, दूध, अन्न प्रचुर मात्रा में पूरे सस्ते भाव मे प्राप्त होरहे थे। व्यक्तियों के वेतन भी साधारण थे। काम के लिये पर्याप्त व्यक्ति प्राप्त हो सकने की सहूलियत थी। जीवनोपयोगी अन्य साधनों में भी पूरा सस्तापन था।

बीस वर्ष बीतने के पश्चात् समय का दौर बदला। द्वितीय विश्वयुद्ध का श्रीगणेश हुआ। सम्वत् ९६ से चारे फूस का तथा अन्न का राजस्थान मे दुष्काल हुवा। यहीं से कठिनाइयों ने जन्म लेना आरम्भ किया। युद्ध की चिनगारी ने

भयंकर रूप धारण किया। शनैः-२ विश्व का बहुत बड़ा भाग युद्ध की आग में आहुत होने लगा।

देश में ब्रिटिश तथा अमरीकी फौजों ने बहुत बड़ा फौजी अड्डा बनाया। युद्ध का विस्तार यूरोप, एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका तक व्याप्त हुआ। जापान के शत्रुपक्ष में सम्मिलित होने से बर्मा से अंग्रेजी शासन की समाप्ति हो गई। जापानी तथा आजाद फौजों का मुख भारत की ओर अग्रसर हुआ। भारत की पूर्वी सीमा में युद्ध की अग्नि प्रज्वलित होने लगी। युद्ध के कारण देश के उत्पादन का सारा प्रवाह युद्धसामग्री की ओर मुड गया। युद्ध की फौजी भर्ती ने खेती आदि के क्षेत्रों में जनसंकीर्णता उत्पन्न करनी आरम्भ कर दी।

युद्ध में उपकरण सामग्री के अनवरत विनाश के कारण देश का संचित संग्रह समाप्त होने लगा। प्रकृति-विपर्यय से उत्पादन में कमी आने लगी। धीरे-२ जीवनोपयोगी व्यवहार में आने वाली सभी सामग्रियें मँहगी होने लगीं। काल का यह बदला हुवा रुख बदलता ही गया। युद्ध समाप्त हो गया। साथ ही स्वराज्यप्राप्ति के तीव्र आन्दोलन तथा विश्व की बदली हुई अवस्थाओं ने शासन पर भारी दबाव डाला। अंग्रेजों ने भारत छोडने का निश्चय किया और इस निश्चय को व्यवहृत करने से देश को दो भागों में विभक्त कर दिया। देश के विभक्त होने से युद्धजनित परिस्थितियों ने जो विपमतायें उत्पन्न की थीं उनको बहुत बडी सहायता मिली। बंगाल, पंजाब, सीमाप्रान्त के सुसंगठित जातीय उपद्रव, काश्मीर की लडाई, बंगाल, पंजाब का बँटवारा, आबादी का परिवर्तन तथा शेप प्रदेश के क्षेत्र में जातीय मतभेद की तीव्रता ने नवीन स्वतन्त्र भारत के रास्ते में कठिनाइयों की बाढ पैदा कर दी।

देश की इस अनवस्था का परिणाम देश में रहने वालो पर पड़ना अनिवार्य था। विशेपतः उस तरह की संस्थाओं पर जो दान के सहारे से संचालित थीं। इस परिणाम का तीव्र धक्का इस संस्था पर भी आया। संस्था के आय के स्रोतों में तो विस्तार को स्थान नहीं था। व्यय के विस्तार अनिवार्य रूप से होते ही जा रहे थे।

संस्था के परम सहायक व प्रमुख संस्थापक पूज्यपाद स्वामी श्री लक्ष्मीराम-जी महाराज ने संस्था के उन्नीसवें वर्प मे स्वर्गारोहण कर लिया था। संस्था का

सबल आधार चला गया था। साथ ही दिन प्रतिदिन बाधाओं का बल विवर्द्धित होता जाता था। विद्यालय के स्वकीय स्थानप्रवेश के पश्चात् सन् ३८ से अब ५० तक इसी अवस्था का सामना करना पड रहा है। संस्था में शिक्षा विस्तार तथा कुछ अन्य जीवन निर्वाह में सहायता पहुचाने वाले साधनों को आरम्भ करने का विचार था वे सब विचार अब स्वप्न ही रह गये। अब तो सामने सवाल यह है कि इन कठिनाइयों से कब और कैसे मुक्ति पाई जाय ? संस्था के सहायकों ने इस आडे समय में संस्था की रक्षा में पर्याप्त हाथ बटाया। अध्यापकों ने अतीव त्याग, छात्रों ने श्रम और साहस द्वारा सस्था की रक्षा में अपना उपयोग किया।

सस्था में भोजन बनाने वालों के सिवाय और सब कार्य छात्रों को ही सम्पन्न करने होते हैं। छात्रावास में कोई भृत्य नहीं रखा गया, न अब है। खर्च में जहा तक होसका संकोच को आश्रय दे तथा आय में होसका वहां तक वृद्धि का प्रयास कर युद्ध का तथा युद्ध से अब तक का परवर्तिकाल निकाला गया है।

सस्था में आयुर्वेद के अध्ययन मे प्रैक्टिकल की व्यवस्था का विचार था। कुछ हाथ के कार्यों को आरभ करने की शुरूआत की गई थी वे सब स्थगित करने पडे। दुरूह बाधाये पार करली गई पर सस्था की अभिवृद्धि का मार्ग रुक गया।

छात्रों की सख्या साठ तक हुई थी वह धीरे २ चालीस पचास के बीच में आ ठहरी। आर्थिक सकोच से विद्यालय की सहायता पर अधिक छात्र लेने सभव नही थे। जो छात्र पहिले से विद्यालय की सहायता पर थे उनको अध्ययन पूरा होने तक सहायता मिलना आवश्यक था अत वृद्धि की अपेक्षा प्रचलित स्थिति का सरक्षण ही आवश्यक समझा गया और तदनुसार ही व्यवस्था बैठाई गई।

तीस वर्ष पहिले शिक्षा का जैसा देश में अभाव था उसमें अब बहुत परिवर्तन होगया है। साधुसमुदाय के शिक्षा-अभाव को दूर करने में सस्था ने अपना उचित उत्तरदायित्व पूरा किया। अनेकों योग्य विद्वान् तथा सैकडों सामान्य शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति संस्था ने समाज को प्रदान कर दिये। शिक्षा का क्षेत्र कितना कठिनाई-पूर्ण है यह सभी योग्य महानुभाव जानते हैं। सौ छात्र अध्ययन प्रारम्भ करते हैं उनमें से विरले ही उच्च शिक्षा तक पहुच पाते हैं। आरंभ से शिक्षा के किसी विशेष विषय के अन्त तक पहुचना हर छात्र के लिये संभव नही है। शिक्षा प्रारम्भ

करने वाले छात्रों में से आधे से अधिक तो प्राथमिक शिक्षा तक पहुंचने से पहिले ही विश्राम ग्रहण कर लेते हैं । शेष बचे हुओं में से कुछ प्रतिशत ही माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति कर पाते हैं । उच्चशिक्षा तक पहुंचना तथा उसकी पूर्ति करना पांच प्रतिशत से अधिक संभव नहीं । शिक्षाक्षेत्र की व्यापक इस परिस्थिति के अनुसार विद्यालय ने अपना काम आशानुरूप ही सम्पन्न किया है। विद्यालय में आरम्भ से अब तक कितने छात्रों ने किन-२ विषयों की कहां तक शिक्षा पाई है इसका दिग्दर्शन उस परिपत्र से ज्ञात होगा जिसमें संस्था द्वारा शिक्षा पाये हुओं का उल्लेख आगे किया गया है। संस्था की आरम्भ से अब तक क्या परि-स्थिति रही इसका सामान्य-सा यह निरूपण है विशेष सम्बन्धित विषयों से ज्ञात होगा ही।

शिक्षा स्थिति

संस्था में अक्षराभ्यास से प्रारम्भ होकर आचार्य तक शिक्षा की व्यवस्था है। व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, दर्शन तथा आयुर्वेद के अध्ययन का पूरा प्रबन्ध है।

आरम्भ हिन्दी से किया जाता है। हिन्दी का पठन पाठन, शुद्ध लेख, शब्दार्थ, गणित की सामान्य शिक्षा हो जाने पर संस्कृत का आरम्भ कराया जाता है। संस्कृत के आरम्भ में उसके शब्द व धातुज्ञान तथा पाठ्य पुस्तकों के अध्ययन से संस्कृत के उच्चारण तथा शुद्ध पढने व सामान्य शब्दार्थ समझने जितना ज्ञान हो जाने पर व्याकरण का आरम्भ कराया जाता है। व्याकरण का प्रथमा तथा मध्यमा तक का अध्ययन सभी छात्रों के लिए आवश्यक रखा गया है।

मध्यमा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् छात्र जिस विषय का अध्ययन करना चाहें उस विषय को ग्रहण कर उच्च शिक्षा में संलग्न होते हैं। उच्च शिक्षा के विषय उपर्युक्त ही हैं। आयुर्वेद को छोड़कर भिन्न विषयों की परीक्षायें बनारस वि० विद्या-लय की दिलाई जाती हैं। आयुर्वेद की जयपुर राजकीय कालेज के अनुसार। कुछ छात्र व्याकरण साहित्य की भी जयपुर की परीक्षायें देते रहते हैं।

शिक्षा प्राप्त करने के लिये सभी छात्रों को प्रवेश की अनुमति है। पठन पाठन के लिये किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती। छात्रावास में रहने वाले

छात्रों को तो पढाई की सब पुस्तकें भी यहां से दी जाती हैं। उनका परीक्षाशुल्क व परीक्षाव्यय भी संस्था द्वारा पूरा किया जाता है।

जो छात्र छात्रावास में न रह कर केवल शिक्षा प्राप्त करते हैं उन्हें अपने पठन पाठन सामग्री की स्वयं व्यवस्था करनी होती है। शिक्षण में आरम्भ से ही यह ध्यान रखा जाता है कि छात्र का ज्ञान अधीत विषय में अच्छा हो। वह केवल ऊपरी ज्ञान तक ही सीमित न हो।

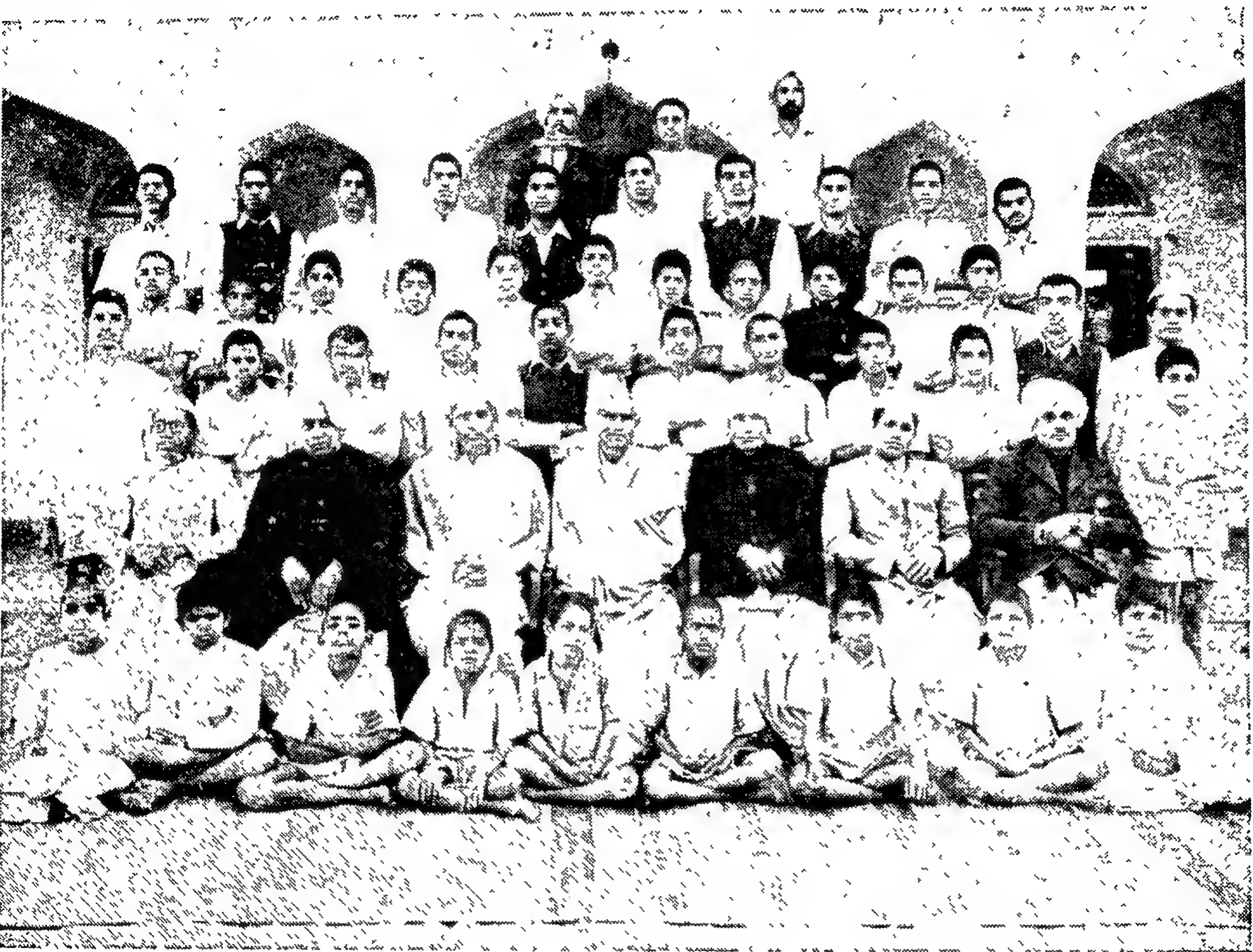
अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि परीक्षाप्रणाली में शिक्षा का निष्कर्ष किसी न किसी तरह परीक्षा पास कर लेने तक सीमित होता जाता है। विद्यालय ने अपने यहां इस दोष को दूर करने में यथाशक्य बचाया है।

छात्रों को अधीत विषय का अच्छा वास्तविक ज्ञान हो इस लक्ष्य की पूर्ति को प्रधानता दी जाती है। शिक्षक अपने-२ विषय के सम्यग् ज्ञाता हैं तथा उनका शिक्षणक्रम इसी रूप का चला है कि जिसमें छात्रों ने परीक्षा प्रवाह की प्रबलता में भी अपने-२ विषयों को समझने में अच्छी सफलता प्राप्त की।

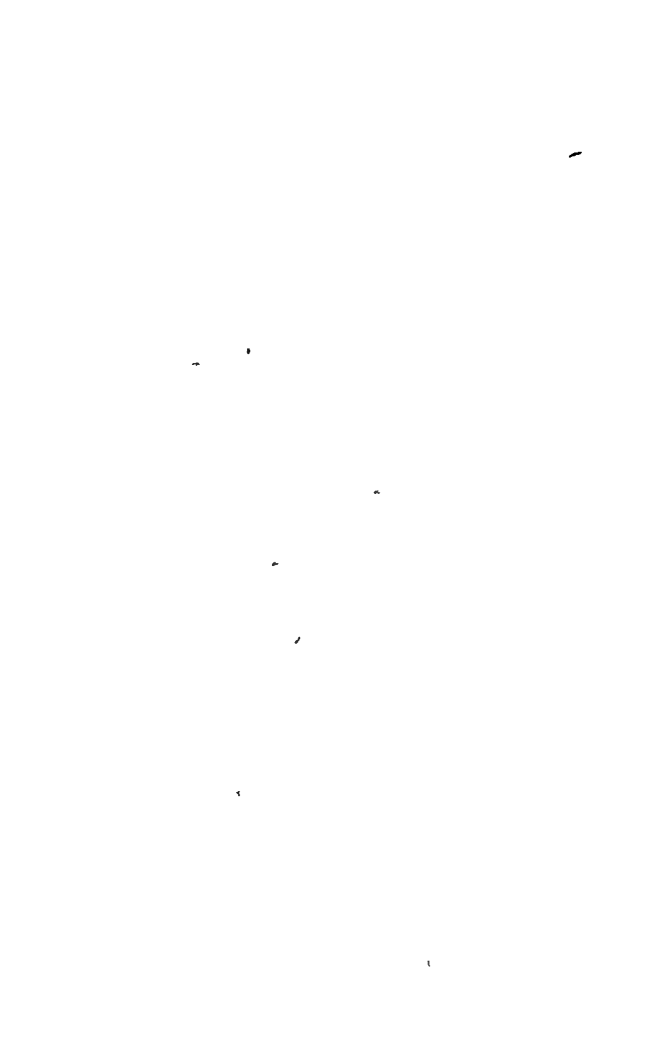
शिक्षा की कसौटी दो तरह की है। १ स्वकीय विषय ज्ञान, २ परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना। आज के युग में तो शिक्षा का नाप तोल दूसरे रूप में ही किया जाता है।

विद्यालय ने जहां तक साध्य था, दोनों ही कसौटियों में अपने छात्रों को सफल किया है। उनके विषयज्ञान की परीक्षा समय २ पर अन्य शिक्षासंस्थाओं के छात्रों से सामुख्य (विवाद) द्वारा व्यक्त होती रही है। परीक्षा पास की कसौटी तो प्रतिवर्ष सामने आती है। विद्यालय की स्थापना सं० १६७७ के ज्येष्ठ में हुई थी। सं० १६८९ में विद्यालय के आठ छात्र प्रथमा परीक्षा में बैठे थे और वे सब के सब उत्तीर्ण हुये थे। सं० ८१ से २००७ तक की परीक्षाओं का परिणाम अस्सी से नव्वे प्रतिशत तक रहता रहा है। एक भी साल ऐसा नहीं है जिसमें अस्सी प्रतिशत से कम विद्यालय का परीक्षापरिणाम रहा हो।

छब्बीस वर्ष का लम्बा समय परीक्षापरिणाम की इस स्थिति से सिद्ध करता है कि विद्यालय का शिक्षाक्रम सार्थक है। विद्यालय से शिक्षा पाये हुए छात्रों की योग्यता उनका दूसरा यथार्थ परिणाम है। उनका ज्ञान ही उनकी यथार्थ योग्यता को व्यक्त करता है। समय-२ पर विद्यालय में पधारने वाले विद्वानों ने छात्रों की अध्ययनस्थिति का परीक्षण कर जिस प्रकार का सन्तोष प्रगट किया



विद्यालय–छात्रावास के विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग



उससे भी उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है। विद्यालय में अधीत छात्रों ने जिस क्षेत्र में कार्यारम्भ किया है वहां भी उनकी योग्यता सार्थक सिद्ध हुई है। विद्वानों के अभिमत भी इसी के पोषक हैं। संस्था का आरम्भ करने वाले स्वर्गीय महामना स्वामीजी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज का तो एकमात्र ध्येय ही यह था कि संस्कृत-वाङ्मय की ज्ञान की रक्षार्थ साधुओं को संस्कृत का अध्ययन करना ही चाहिये।

आजीविका के प्रश्न को हल करने के लिये संस्कृतशिक्षा उस समय अनुपयोगी थी और इस समय भी अनुपयोगी है। राजकीय नौकरी के क्षेत्रों में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का ही समावेश था। संस्कृतशिक्षा से शिक्षित व्यक्ति तो शिक्षित ही नहीं समझे जाते थे। पर भारतीय संस्कृति का अनुबन्ध संस्कृत-शिक्षा से ही है। सांस्कृतिक जीवन के लिये संस्कृतशिक्षा अनिवार्य है। साधु समुदाय पर सॉस्कृतिक अनुबन्ध के प्रवाह को प्रवाहित रखने का उत्तरदायित्व है। अतः समय की पुकार के अनुरूप न होते हुये भी संस्कृत शिक्षा का महत्व है अपनी परम्परा तथा संस्कृति के संरक्षण की पूर्ति।

विद्यालय इसी ज्ञानयज्ञ की पूर्ति में संलग्न है। उसने धैर्यपूर्वक इस लक्ष्य पूर्ति का निर्वाह किया है व कर रहा है। शिक्षा में शास्त्रीय विषयों के साथ साथ व्यायाम व संगीत के शिक्षण की भी व्यवस्था है।

प्रसिद्ध व्यायामशिक्षक गोपालजी स्वामी व्यायामाचार्य ने पर्याप्त समय लगा कर विविध प्रकार के व्यायाम में छात्रों को निपुण बना दिया है। ड्रिल, कवायद, लाठी, लेजम, दंड, लकडी, पट्टा, वर्णेठी, तलवार, भाला, छुरा आदि के अनेकों प्रदर्शन छात्र जानते हैं। धनुष बाण का अभ्यास भी छात्रों ने किया है। फौजी व्यायाम का भी अंशांश उन्हें बताया गया है। छात्रों के अनेकों बार व्यायाम प्रदर्शन के कार्य को देख द्रष्टाजनों ने महती सराहना की है। छात्रों का व्यायाम-कार्य वस्तुतः ही सराहनीय है। संगीत का क्रम तीन चार वर्ष से चल रहा है। अनेकों छात्रों ने संगीत प्राथमिक अभ्यास कर लिया है। वे विविध शिक्षोपयोगी गायनों को सम्यक्तया गा लेते हैं। अपना तथा अन्यों का मनस्तोष करने की क्षमता तो उनमें आ ही गई है। वे शिक्षासमाप्ति के पश्चात् चाहेंगे तो अपने इस अभ्यास का सहज ही विवर्द्धन कर सकेंगे।

संस्था के शैशवकाल से ही अंग्रेजी के सामान्यज्ञान का समावेश किया गया था। कुछ दिनों तक उसका नियमतः शिक्षण चलता रहा। कई छात्रों ने अंग्रेजी

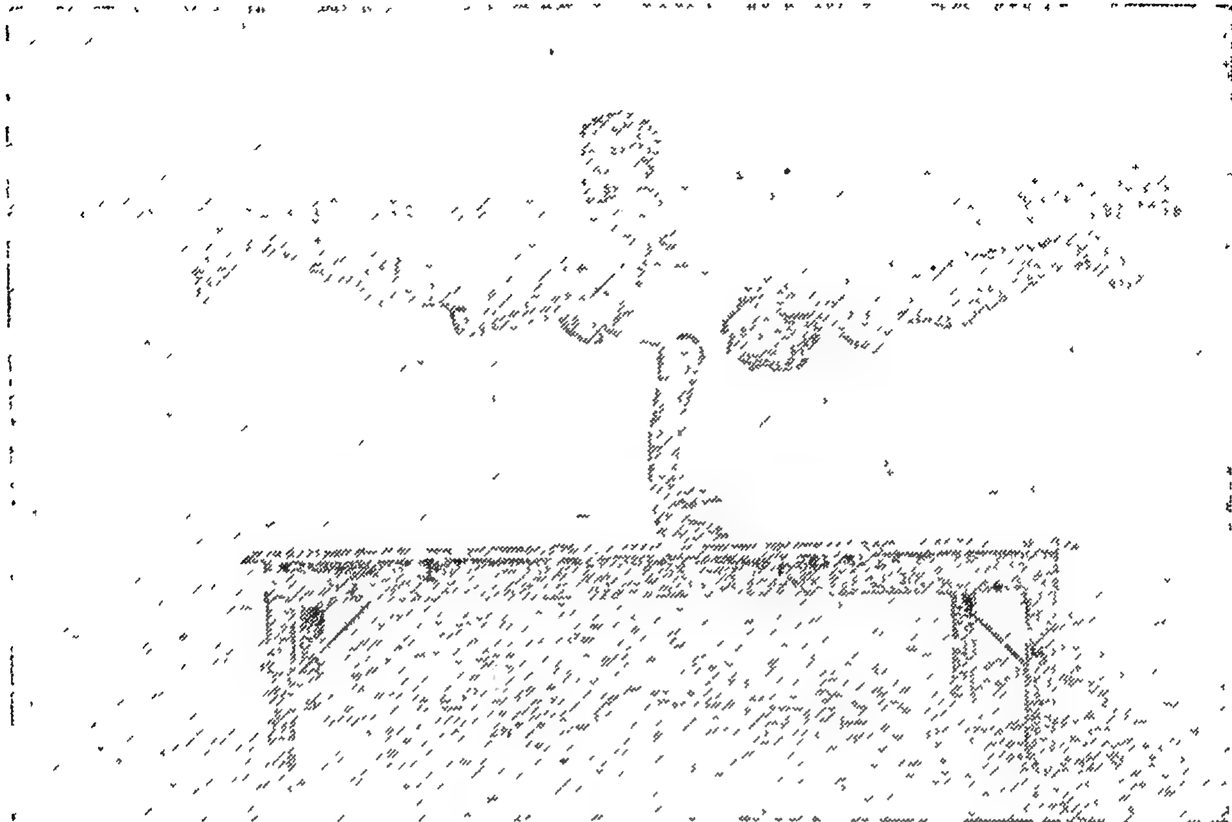
का विषय लेकर मिडिल व मैट्रिक तक की परीक्षायें भी दी तथा उनमें सफलता भी प्राप्त की। पर वह अनुबन्ध सर्वदा न चल सका। पुन पुन उसके बन्द तथा चालू होते रहने से अपेक्षित परिणाम की पूर्ति नहीं हो पाई। फिर भी कई छात्र साधारण ज्ञान वाले तो बन ही गये, और उनमें से जिनने आगे पढने की चेष्टा की उन्हे अपनी पूर्वा शिक्षा से सहारा भी लगा।

इस तरह संस्कृतशिक्षा की प्रधानता के साथ-२ व्यायाम-संगीत-अंग्रेजी आदि का सहायक शिक्षण भी समय-२ पर चलता रहा है, जैसा कि मैंने व्यक्त किया है। कुछ हस्त कौशल के कामों की शिक्षा देने का भी विचार किया गया था। वस्त्र निर्माण, सिलाई तथा कम्पोजीटरी का कुछ-२ कार्य प्रारम्भ भी किया गया था, पर अर्थकृच्छ्रता ने तथा युद्धजनित इतर कठिनाइयों ने उस कार्य को अग्रसर नहीं होने दिया।

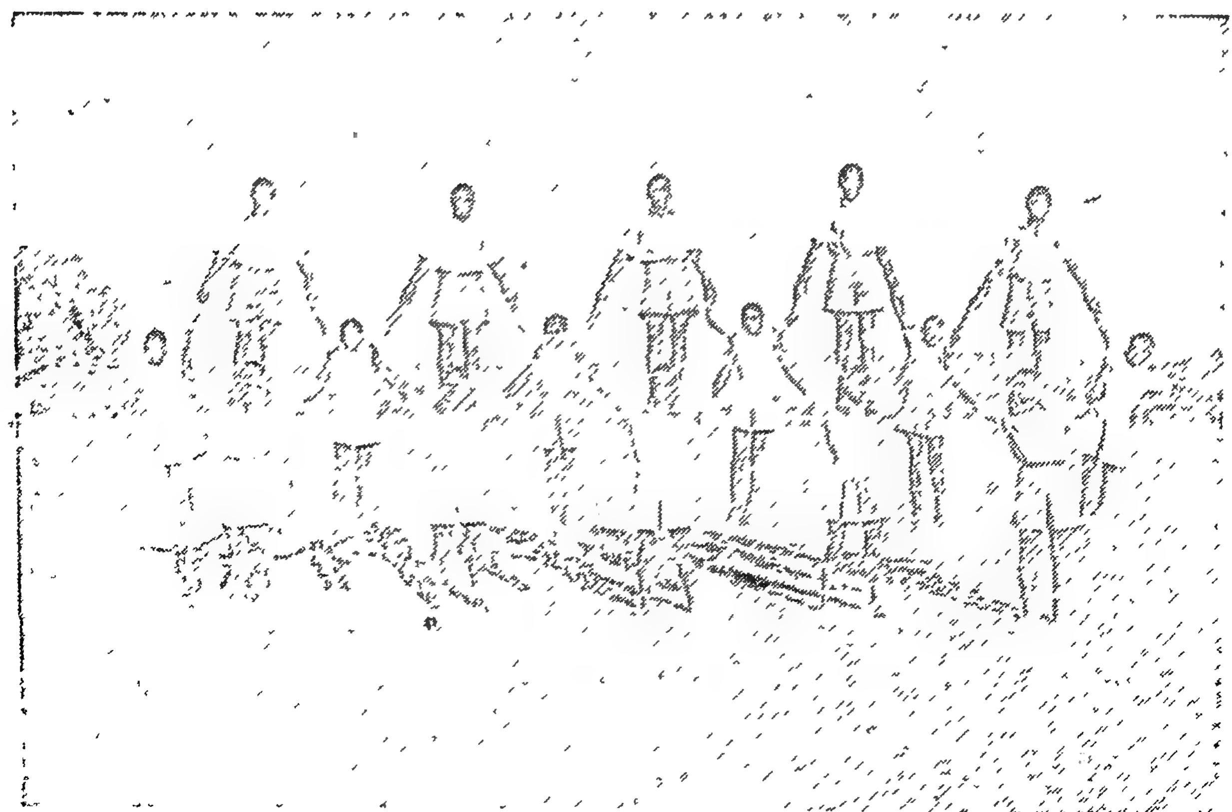
संस्था आरम्भ से ही छात्रावास सहित चालू की गई थी। शास्त्रीय तथा भाषाज्ञान के साथ सांस्कृतिक ज्ञान भी आवश्यक था। छात्रावास में प्राय साधु छात्र ही रहते रहे हैं अत सन्तसाहित्य का परिचय भी वे अपनी शिक्षा के साथ करते रहे हैं। छात्रावास में कोई भी व्यक्ति रह सकता है केवल साधु समुदाय के लिये ही छात्रावास हो ऐसी बात नहीं है। पर संस्था का आरम्भ तथा व्यवस्था साधुसमुदाय द्वारा होने से साधुओं का बाहुल्य अनिवार्य था व है।

मनुष्य के लिये शिक्षा जितनी आवश्यक है उतना ही आवश्यक है उसका चरित्रनिर्माण। अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का अनुबन्ध अपने व्यवहार में रखने से ही हमारी भारतीयता सार्थक हो सकती है। छात्रावास के छात्र इस विषय में भी उपादेय सिद्ध हुये हैं। विद्यालय से निकले हुये स्नातक वेषभूषा तथा संस्कृति में भी पूरे भारतीय हैं। उनमें अपने देश की सभ्यता का अभिमान है। संस्कृतशिक्षा के लिये यह प्रसिद्धि-सी प्रचलित है कि वे वर्त्तमान कालिक ज्ञान से प्राय अछूत रहते हैं। इस संस्था के छात्र इस अपवाद से भी बरी हैं। वे संस्कृत की शिक्षा के साथ-२ देश की वर्तमानकालिक प्रवृत्तियों से भी परिचित रहे हैं।

विद्यालय के पुस्तकालय में उपयोगी पुस्तकों तथा समाचारपत्रादि के मंगाने की व्यवस्था रहने से तथा समय-२ पर आपसी चर्चा तथा सामयिक सभा सोसायटियों के अनुबन्ध से वे देश की चालू हलचलों की सदा जानकारी रखते रहे हैं।



डबल मयूरासन



सुदर्शन नं ३



पाक्षिक सभा, छात्रों के आपसी वादविवाद द्वारा शिक्षा से भिन्न सामयिक ज्ञान की पूर्ति का क्रम भी चलता रहा है। इस तरह संस्था द्वारा एकान्ततः एक क्रम में अवरुद्ध शिक्षा के क्रम का निर्वाह न होकर चहुँमुखी क्रम की पूर्ति की गई है। संस्था ने छात्रों को भाषाज्ञान, शास्त्रज्ञान तथा व्यवहारज्ञान प्रदान कर उत्तम नागरिक रूप में बनाने का सतत प्रयास किया है, और इस प्रयास में वह अधिकांशतः सफल सिद्ध हुई है। संस्कृतशिक्षा के निराश्रित प्रवाह को आश्रय प्रदान कर संस्था ने तदर्थ अपना कहाँ तक कैसे उत्तरदायित्व पूरा किया यह आरम्भ से इसके अब तक के सामने आये परिणाम से सिद्ध हो जाता है। उस परिणाम की स्थिति को देखने पर यही निर्द्वन्द्व कहा जा सकता है कि संस्था ने अपने तीस वर्ष यथाशक्य सार्थकता के साथ समाप्त किये हैं। उसकी शिक्षास्थिति सन्तोषजनक है।

६ आर्थिक अवस्था—

विद्यालय की आर्थिक अवस्था आरम्भ से कमजोर थी। केवल चौदह हजार रुपये के कोष से ही कार्यारम्भ कर दिया गया था। कार्य का आरम्भ इसी आशा से किया गया था कि कोष का उचित संग्रह कर लिया जायगा।

विद्यालय का जिस समय आरंभ हुआ था देश के व्यवसायियों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। संभावना थी कि कलकत्ता, बम्बई के कुछ उच्च व्यवसायियों से जो शिक्षाप्रेमी हैं तथा जिनका सम्पर्क दादूपंथी सम्प्रदाय से चला आया है वे प्रयास करने पर इसके लिये उचित सहायता प्रदान करेंगे।

विद्यालय की स्थापना की अपील में एक लाख के कोषसंग्रह का निवेदन किया गया था। पूरी रकम साधुवर्ग से होने की सभावना तो थी नहीं। यही सोचा गया था कि साधुवर्ग तथा गृहस्थवर्ग दोनों की सहायता से उपर्युक्त कोष की पूर्ति आसानी से हो जायगी।

विद्यालय की स्थापना के पश्चात् ही डेपुटेशन कलकत्ता, बम्बई आदि शहरों में जाने वाला था। इसका निश्चय भी किया जा चुका था। पर विद्यालय की स्थापना के बाद कुछ ऐसी सामाजिक स्थितियें उत्पन्न हुई कि जिससे अर्थसंग्रह के लिये बाहर जाने वाला कार्यक्रम काम में नहीं आसका।

विद्यालय के तीसरे वर्ष ही आर्थिक कठिनाई सामने आने लग गई थी जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। उस समय पूज्य स्वामी श्री सेवारामजी महाराज ने प्रेरणा कर श्रीमान् बाबू घनश्यामदासजी बिडला व बाबू जुगलकिशोर जी बिडला से सौ २ रुपये मासिक की सहायता की व्यवस्था करवादी थी। बाबू जुगलकिशोरजी की यह मासिक सहायता पाच वर्ष से कुछ अधिक समय तक मिली। बाबू घनश्यामदासजी की सौ रुपये की मासिक सहायता करीब पन्द्रह वर्ष तक चालू रही।

कहना नहीं होगा कि विद्यालय का शैशवकाल इसी सहायता से सम्यग् निर्वाहित हुआ। स्वामीजी सेवारामजी महाराज की प्रेरणा से यदि यह सहायता प्रारभ न होती तो सभव है विद्यालय की स्थिति इस रूप को प्राप्त न कर सकती।

साधुओं की सहायता तथा कुछ गृहस्थवर्ग के सहयोग से चन्दे की कुल रकम सत्तर हजार के करीब पहुची। बचत तथा कैश सर्टीफिकेटों के ब्याज व कागजों की ब्याज की रकम भी मूलधन में मिश्रित हुई। इससे कोष की रकम का जोड इस समय अट्ठासी हजार से कुछ ऊपर है।

युद्ध से पहिले की स्थिति में जो कुछ अर्थसग्रह हुआ था उसके ब्याज तथा अन्य आय से पचास छात्रों के छात्रावास सहित विद्यालय का कार्य सचारु रूप से चल जाता था। पचास छात्रो म से पचीस छात्र नि शुल्क भी होते थे।

युद्ध के चलने के बाद से अब तक आर्थिक रूप पूरी कठिनाईमय है। विद्यालय के स्थायी कोष में से बहत्तर हजार रुपये से एक मकान देहली में सन् १६३८ में खरीद लिया गया। तेरह हजार रुपयो में से दश हजार लछमीराम ट्रस्ट में तथा तीन हजार बाबू घनश्यामदासजी बिडला के यहा जमा हैं। इनका ब्याज प्रतिवर्ष आजाता है। देहली के मकान का किराया करीब पौने छ हजार वार्षिक है। पाच सौ के करीब तेरह हजार के ब्याज के आजाते हैं। इस तरह सवा छ हजार वार्षिक की विद्यालय की स्थायी आमदनी है।

सरकार के शिक्षाविभाग की सहायता, छात्रों के छात्रावास व्यय की शुल्क तथा वार्षिक विशेष सहायता आदि से भी चार पाच हजार की आमदनी हो जाती

है। खर्च कुल आजकल बीस हजार वार्षिक से भी ऊपर है। पिछले पांच छै वर्ष से प्राय: ही विशेष सहायता प्राप्तकर जैसे तैसे कार्य की पूर्ति की जाती है। पिछले वर्षों में आय व्यय के संतुलन के पश्चात कुछ बचत की रकम भी थी। वह सब इन पांच छै वर्षों में समाप्त होगई है। संस्था की आयवृद्धि के लिये आधुनिक युग के जो उपाय, प्रचार तथा चन्दे के लिये डेप्यूटेशन आदि ले जाने के हैं वे नहीं के समान ही काम में लिये गये हैं। प्रारम्भ के दो वर्षों में कई जगह डेप्यूटेशन गया भी था पश्चात् यह क्रम सर्वथा बन्द ही होगया। प्रचार वाली बात आरम्भ से ही नहीं अपनाई गई थी, और न अबतक वह कभी काम में लाई गई है। साधुसमुदाय को अवश्य समय २ पर विद्यालय की स्थिति का ज्ञान कराया गया तथा उसी से आवश्यक सहायता प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया गया।

अर्थाभाव की कठिनाइयों का निराकरण वस्तुतः देखा जाय तो माननीय पूज्य स्वामी श्री सेवारामजी महाराजकी प्रेरणा से ही होता रहा है। जब जब भी आर्थिक प्रश्न उपस्थित हुए बाबाजी महाराजने स्वकीय प्रेरणासे उनकी पूर्ति की।

विद्यालयकी तीस वर्ष में जो कुछ आय हुई है। उसमें चतुर्थांश भाग अकेले स्वामी श्री सेवारामजी की प्रेरणाका परिणाम है। उन्होंने साठ हजारसे अधिक रकम विद्यालय की सहायतार्थ प्राप्त कराई। विद्यालय के नवीन-भवन-निर्माण में भी आपका ही सहयोग प्रमुख रहा। विद्यालय की बीचकी अर्थकृच्छ्रता आपही के पुण्य प्रयास से निवृत्त होती रही। युद्धारम्भ के बाद से अबतक एक युग में तो आपको और भी अधिक श्रम करना पड़ा। आपकी विशेष श्रमजन्य सहायता से ही इस दु:सह काल को जैसे तैसे निकाला गया है।

वर्तमान काल में देशकी जो स्थिति चल रही है उससे अनुमान होता है कि अभी पांच चार वर्ष तक मौजूदा स्थिति का परिवर्तन होजाय ऐसा शक्य नहीं है। विद्यालय के अर्थाभावजन्य कष्ट का निवारण भी इस स्थिति में होना संभव प्रतीत नहीं होता। अर्थकृच्छ्रता के कारण विद्यालय के सामान्य कामों को पूरा करनेमें भी कठिनाई प्रतीत हो रही है। छात्रावास के कारण सभी व्यवहार्य वस्तुओं का उपयोग अनिवार्य है। उनकी उपलब्धि में आजकल जिस तरह की समस्यायें खड़ी होती हैं वे भी कार्यबाधक है। ये सब कठिनाइयाँ तभी निवृत्त हो

सकती हैं जब कि विद्यालय को पर्याप्त अर्थोपलब्धि हो । अन्यथा तीस वर्ष का समय जिस तरह निकाला गया है उसी तरह अभाव अभियोग के साथ ही आगे का समय भी निकालना होगा ।

कहने का अभिप्राय इतना ही है कि विद्यालय मय छात्रावास के अपना व्यय आराम से चला सके ऐसी उसकी आर्थिक स्थिति नहीं है । न अब यह आशा ही बाधनी चाहिये कि अभाव का निवारण शीघ्र हो सकेगा ।

७ स्वकीय स्थान—

हम पीछे निवेदन कर ही आये हैं कि विद्यालय का आरम्भ सन्त केशवदासजीकी अनुकम्पासे उनके स्वकीय स्थान स्वामी रतीरामजी के बाग में पुराने महल का क्षेत्र दे देने से वहीं हुआ था । विद्यालय तथा छात्रावास के लिये जो मकान उसमें थे तथा अन्य कुछ बनाये गये थे वे पर्याप्त नहीं थे । जमीन उस क्षेत्र में अवश्य इतनी थी कि और मकान बनाये जा सकें ।

विचार भी यही था कि कुछ और स्थान यहीं बनाए जाय पर राजकीय अग्रेजी कालेज का निर्माण होने से उसके आस पास का बहुत सा खाली क्षेत्र अवरुद्ध होगया । राजकीय बडे अस्पताल के भी इधर ही बनने का निश्चय हो चुका था । विद्यालय के चारो ओर की भूमि इसतरह राजकीय क्षेत्र मे चली गई थी । महाराजा कालेज तो नये भवन मे आ ही गया था । उसके नवीन प्रिंसिपल महोदय ओवन्स साहब का ध्यान विद्यालय के लिये अनुकूल था ही नहीं, उनकी प्रबल इच्छा थी कि यह सस्था इस कालेज के पास नहीं रहनी चाहिये । क्योंकि उस समयका राजनैतिक वातावरण देश में तीव्र गति से बदल रहा था । माननीय महात्मा गाधी की प्रेरणा ने देश के सभी क्षेत्रो मे नवीन लहर पैदा करदी थी ।

विशेषत शिक्षा-सस्थाओं मे उस प्रेरणा की लहर और भी वेग से प्रवाहित हुई थी । देश मे स्वतत्रता प्राप्ति के आन्दोलन का रूप दिन प्रतिदिन तीव्र से तीव्रतर होता जाता था । विद्यालय के छात्रों की वेष भूषा उन दिनों प्राय खादी की ही रहती थी । खादी उस समय अग्रेजी शासन के लिये तोप की तरह हानिकर समझी जाती थी । पीछे उल्लेख हो ही चुका है कि ओवन्स

महोदय ने किसतरह विद्यालय का दरवाजा बन्द करवाने का प्रयास किया था। किस तरह एक एम. ए. के छात्र को सी. आई डी के रूप में भेजा था।

निष्कर्ष यह है कि एक राजकीय प्रमुख अधिकारी के साथ, जिसका कि शिक्षा-क्षेत्र से ही प्रधानतया सम्बन्ध था, (ओवन्स साहब ही कुछ समय बाद शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर बन चुके थे) संघर्ष आरम्भ होगया था। अस्पताल आदि बनने की व्यवस्था से चारों ओर यह विद्यालय राजकीय क्षेत्र की परिधि से घिर जाने को था। छात्रों को शौचादि क्रिया तथा खेल कूद के लिये जो सहूलियत थी वह परिसमाप्त होने को थी। स्थान का संकोच था ही उसके लिये स्थान-निर्माण भी आवश्यक था। इस सब स्थिति को ध्यान में रखकर विद्यालय की कार्यकारिणी ने यही निश्चय किया कि विद्यालय का स्थान कहीं अन्यत्र ही लिया जाय या बनाया जाय।

इस निश्चय के पश्चात् मोतीडूंगरी की सड़क पर जो साधुओं की जमीन थी जिसकी कि संज्ञा हंसदासजी के अखाड़े के नाम से थी, उसमें से कुछ भाग प्राप्त करने की चेष्टा की गई। उस अखाड़ेकी भूमि की सम्भाल उस समय स्वामी सुखदेवजी मदनीवालोंके हाथ में थी। वैसे यह भूमि जमात उदयपुर की समझी जाती थी। पर इसका उपयोग प्रायः दादूपन्थियों की सभी जमातें करती थीं। जमीन ठीक मौके पर थी तथा करीब चौतीस बीघा थी। इसमें से कुछ भाग ठाकुर रूपसिंहजी नायला वालों ने जबरदस्ती अधिकार में कर लिया था जिसका कि मुकदमा सुखदेवजी लड़ रहे थे।

सुखदेवजी ने, जो भाग रूपसिंहजी ने अधिकार में कर लिया था, उसे विद्यालय को दे देने को कहा। अन्य भूभाग देने में वे सहमत नहीं हुए। विद्यालय की का० का० के सदस्यों का ध्यान था कि वह साधुओं की ही जगह है इसी में विद्यालयका स्थान बन जाय तो आगे इन स्थानों पर भी साधुओं का ही अधिकार रहेगा तथा इस भूमि का उचित उपयोग भी हो सकेगा एवं रक्षा भी। पर यह बात सुखदेवजी के ध्यान में नहीं बैठी। रूपसिंहजी ने जो भूमि अधिकृत की थी, उसके मुकदमे के फैसले में न मालूम कितना समय लगे अतः यही निश्चय रहा कि अन्य जमीन देखी जाय।

अखाडे के आस पास भी दो तीन भूभाग थे, जो ठीक थे, पर उनमें कुछ कानूनी अडचने थीं। ठाकुर नन्दकिशोरसिंहजी का बाग भी देखा गया जो कि सागानेर की सडक पर है पर उसकी कीमत उस समय के विचार से इतनी थी कि जिसकी व्यवस्था सस्था से शक्य नहीं थी। अन्त मे राज्य से दो टुकडो की बाबत निवेदन किया गया। उनमें से यह टुकडा, जहाँ कि इस समय विद्यालय है, सरकार ने रियायती मूल्य से देने की स्वीकृति दी।

प्राय भूमि मे जमीन के हिस्से समतल न होकर बहुत ऊँचे नीचे थे। उनके समतल करने मे ही पर्याप्त व्यय की सम्भावना थी, पर समीप मे और किसी उचित स्थान के मिलने की स्थिति न होने से यही भूभाग लेने का निश्चय किया गया।

विद्यालय की स्थापना के अठारहवें वर्ष मे यह नई जमीन ली गई तथा इसमें निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया। सबसे पहिले पानी की आवश्यकता-पूर्तिके लिये कुएके निर्माणका कार्य आरम्भ हुआ। कुआ बनजानेके बाद विद्यालय के स्थान-निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया। स्थाननिर्माण के लिये जमीन लेने के पश्चात् सहायता प्राप्ति का प्रयास किया गया।

परम सहायक पूज्य श्री स्वामी सेवारामजी महाराज ने स्थाननिर्माण के लिए भी पर्याप्त सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। आपके प्रयास से कुआ, विद्यालय के दो बडे कमरे, भण्डार, कोठ्यार के सब स्थानों तथा डडे की पूर्ति मे उचित सहायता मिली। सन्त महन्त महात्माओ ने भी उचित सहायता दी। पूज्य बाबाजी महाराज की प्रेरणा से बिडला परिवार की भी स्थाननिर्माण मे उचित सहायता प्राप्त हुई। समय सहूलियत का था, सभी वस्तुएँ अत्यन्त मन्दी थीं। उपकरण सामग्री की प्राप्ति में कोई दिक्कत थी नहीं। मजदूरी भाव बहुत कम थे। इन सब अनुकूलताओ के कारण करीब तेतीस हजार की लागत से तीस तीस फुट लम्बे तथा मय बरामदे के २५--१५ फुट चौडे चार बडे कमरे, बीच मे पैंतीस फुट का कमरा दश फुटके बरामदे सहित, जो कि सभाभवन मन्दिर तथा पुस्तकालय का काम देता है, बनाये गये। साठ फुट लम्बा तथा तीस फुट चौडा भण्डार तथा कोठ्यार एव उसके आगे सोलह फुट चौडे चबूतरे का निर्माण किया गया। कुआ, एक कमरे के नीचे तीस पचीस फुट का तहखाना तथा छात्रों



अखाड़ा



लाठी करने की तय्यारी में



की सहायतासे एक तीस पचीस फुटके दायरे की अतिथिशाला का निर्माण हुआ। चारसौ फुट लम्बे तथा दोसौ बीस फुट चौड़े हिस्सेके चारों ओर ग्यारह फुट ऊँचा डण्डा भी बनाया गया।

पशुओं के चारे फूस तथा रहने के लिये टीन से ढककर पशुशाला का निर्माण किया गया। पुराने विद्यालय में टीनों के कई साईवान बनाये गये थे। माननीय सन्त मोतीरामजी ने जो कि उस समय स्वामी रतीरामजी की परम्परामें उत्तराधिकारी थे, उन सब टीन के साईवानों को उतार ले जाने की अनुमति प्रदान करदी थी इससे पशुशाला में तथा अन्य साईवानों में उन्हीं टीनों से काम चल गया। संवत् १९९५ में उपर्युक्त रूप के विद्यालय के भवन का निर्माण हो गया।

पानी का एक हौज, कार्यालय, औषधालय तथा अन्य छै कमरों का निर्माण बाद में हुआ। अब तक स्थाननिर्माण में करीब पैंतालीस हजार रुपये से कुछ अधिक व्यय हुआ है। जब कि आज की स्थिति से यह डेढ लाख से ऊपर पहुंचता। विद्यालय में पहले बिजली फिटिंग नहीं कराई गई थी, पर पिछले तीन चार वर्षो में कन्ट्रोल व्यवस्था ने तैल-प्राप्ति में जैसी उलझन उत्पन्न की उससे बाध्य होकर बिजली का उपयोग किया गया। अब सब स्थानों में तथा कुए में भी बिजली लगादी गई है।

विद्यालय का इस समय का स्थान जल वायु तथा रहन सहन के विचार से बहुत ही उत्तम है। मौजूदा मकानों में करीब सौ छात्र रह सकते हैं। स्थान, जल, रोशनी तथा खेल कूद आदि सभी आवश्यकतापूर्ति के उत्तम साधन हैं। इस स्थान में विद्यालय को आये १५ वर्ष हो चुके हैं। अट्ठारह वर्ष श्री स्वामी रतीरामजी के बाग में रहा।

८ विशेषोत्सव

विद्यालय की स्थापना के पश्चात् विद्यालय की महासमिति के अधिवेशन नरेना के मेले पर ही हुआ करते है इसी को विद्यालय का वार्षिकोत्सव भी कह सकते हैं। आरंभ के कुछ वर्षो तक नरेना में ही इसका वार्षिकोत्सव मनाया जाता था, परन्तु साधुओं की विचार-विभिन्नता के कारण यह उत्सव धीरे धीरे

महासमिति के अधिवेशन तक ही सीमित कर लिया गया । वैसे विद्यालय का जन्मदिन ज्येष्ठ शुक्ला दशमी है उस दिन विद्यालय-परिवार विद्यालय ही में उत्सव मना लिया करता है। इस तरह इस संस्था का ऐसा उत्सव कोई नहीं है जिस में सीधा जनसम्पर्क हो। सार्वजनिक संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशन इस लिये किये जाते हैं जिस से जनसाधारण का ध्यान संस्था की ओर आकर्षित होता रहे। साथ ही सामयिक सहायता भी उत्सवों में प्राप्त होती रहती है। विद्यालय के इस प्रकार के उत्सव न होने से न तो विशेष जनसम्पर्क ही बढा तथा न सामयिक सहायता का ही कोई अवसर आया । प्रबुद्ध तथा विशेष महानुभावों को छोड कर जनसाधारण को संस्था का यथावत् परिचय भी इसी कारण से न हो सका।

संस्था जयपुर में तेतीस वर्ष से है। इतने लम्बे समय में संस्था के चार ऐसे उत्सव हुए हैं जिन में जनसाधारण ने भाग लिया । ये चार विशेषोत्सव कहे जा सकते हैं। क्योंकि इनके करने के निमित्त भी विशेष थे। इन चार उत्सवोंमें दो राज्यानुबन्धी थे। जिन में पहिला संवत् १६७८ में हुआ। यह वर्तमान जयपुराधिपति तथा राजस्थान के राज-प्रमुख माननीय महाराज श्री मानसिंह जी की गोदनशीनी के उपलक्ष में था। उस समय की स्थिति को जानने वालों से छिपा नहीं है कि स्वर्गीय महाराज श्री माधवसिंहजी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने में कितनी उलझनें सामने आई थीं। उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर राज्य के सामन्तवर्ग में पर्याप्त विभिन्नतायें थीं। ठिकाना झलाय जो कि जयपुर राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी था माननीय महाराज माधवसिंहजी के समय भी अपने अधिकारसे वंचित रह गया था इसबार वह उसके लिए प्रबल प्रयत्नशील था। साथ ही राजस्थान के कुछ महाराजा तथा अंग्रेजी सरकार का पोलीटिकल विभाग तथा स्थानीय रेजीडेण्ट भी इस विषय में सक्रिय भाग ले रहे थे ।

महाराजा माधवसिंहजी की इच्छा थी कि अपने ही ठिकाने (ईसरदा) से उत्तराधिकारी लिया जाय। इस कठिनाई का किन किन कूटनैतिक उपायों तथा अन्य सबल प्रयत्नों से निराकरण किया गया यह बात उस समय के शासनक्षेत्र के व्यक्ति ही सम्यक् प्रकार से जानते हैं। महाराजा माधवसिंहजी की इच्छा

सफल हुई और माननीय वर्तमान महाराजा जयपुर के उत्तराधिकारी स्वीकृत कर लिये गये।

इस शुभ अवसर पर प्रजा के सभी वर्गों ने विविध प्रकार से अपने हृद्गत भावों को अनेकानेक उत्सवों के आयोजनों द्वारा व्यक्त किया था। उसी मंगलमय अवसर की उपलब्धि में विद्यालय द्वारा भी उत्सव का आयोजन संवत् १९७८ में ज्येष्ठ शुक्ला १४ को रामनिवास बागमें महलके आगे किया गया था। राज्य के सभी प्रमुख अधिकारियों ने उत्सव में भाग लिया था। छात्रों द्वारा महाराज के चिरायुष्य की प्रार्थना के साथ उत्सव का आरंभ हुआ था। अनेक वक्ताओं के भाषण, कवितापाठ तथा संगीत की मधुर ध्वनि से उत्सव को अलंकृत किया गया था।

राज्यसम्बन्धी दूसरा उत्सव संवत् १९८८ में मनाया गया था। इस उत्सव के आयोजन का निमित्त माननीय महाराजा मानसिंहजी के महाराजकुमार का जन्म था। जयपुर में कई पीढियाँ चली गई थीं, जिनमें उत्तराधिकारी गोद द्वारा ही होते आये थे। महाराजाओं के सन्तान नहीं होती थी। महाराजकुमार का जन्म इस स्थितिमें प्रजा के विचारसे अत्यन्त आनन्दमय था। सामान्य गृहस्थ ही जब गार्हस्थ्य की सफलताका द्योतक सन्तान को मानता है, तब राज्यके विचार से महाराज के महाराजकुमार का जन्म तो महान् महोत्सवप्रद माना जाय तो अनुचित ही क्या? इस अवसर पर भी प्रजा आनन्दोत्सवों में हिलोरें लेने लगी थी। जयपुर नगरी नित्य नई नवीनता से आलोकित होती थी। प्रजा के इस हर्षप्रवाह में विद्यालय कैसे तटस्थ रहता। विद्यालय द्वारा भी उत्सव का आयोजन किया गया। विविध प्रकार के भावों द्वारा अपनी मंगल-कामना व्यक्त की गई। इस तरह दो विशेपोत्सव इन दो विशेप निमित्तों के द्योतक थे। इनका विद्यालयसम्बन्धी लक्ष्य किसी भी स्थिति में नहीं था।

विद्यालय से सम्बन्धित विशेपोत्सव पिछले तीस वर्षों में दो सम्पन्न हुए हैं। पहिला उत्सव विद्यालय के दश वर्ष समाप्त होने पर मनाया गया था। यह संवत् १९८७ के कार्तिक कृष्णा ५-६, ता० १२-१३ अक्टूबर सन् १९३० में सम्पन्न किया गया था। उत्सव का आयोजन विद्यालय के तात्कालिक स्थान स्वामी रतीरामजी के बाग में हुआ था।

पहिले दिन सभापति का आसन उस समय के शिक्षा-सचिव ठाकुर श्री नरेन्द्रसिंहजी जोवनेर ने सुशोभित किया था। द्वितीय दिन का सभापतित्व माननीय ठाकुर साहब देवीसिंहजी, चौमू ने, जो कि उस समय दादूपन्थी साधुओं के महकमे के भी प्रमुख अधिकारी थे, किया था।

विद्यालय से सम्बन्ध रखने वाले सभी महानुभाव महन्त, सन्त, महात्मा विद्वान्, पंडितवर्ग, राजगुरु तथा जयपुर के उच्च नागरिक उत्सव में सहर्ष सम्मिलित हुए थे। संस्था के संस्थापक माननीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के व्यक्तित्व ने उस समारोह में सभी को सम्मिलित होने की विशेष प्रेरणा प्रदान की थी। संस्था का श्रीगणेश जिनके पवित्र करकमलों से हुआ था वे ब्रह्मनिष्ठ, परम विद्वान् नैष्ठिक, महात्मा श्री नारायण मुनिजी भी उत्सव को सुशोभित करने के लिये बहुत दूर से इसी लिये पधारे थे।

साधु-सम्प्रदाय के अनेकों महानुभावों ने यात्रा के कष्टों की किञ्चित् भी परवाह न करके विद्यालय पर अपनी अनुकम्पा को अपनी उपस्थिति द्वारा व्यक्त किया था।

उत्सव का स्थान ध्वजा, पताका, मंगलद्वारों द्वारा सुसज्जित किया गया था। शुभ मंगलमय समय में स्वागत गान के साथ उत्सव का शुभ श्रीगणेश हुआ। छात्रों के हिन्दी तथा संस्कृत में विभिन्न विषयों पर भाषण हुए जिस से दश वर्ष में विद्यालय ने क्या प्रगति की इसका स्पष्ट रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता था। छात्रों की विभिन्न विषयों पर विवाद प्रतियोगिता दर्शनीय रही। छात्र शास्त्र ज्ञान से ही परिचित हुए हैं यही बात नहीं थी वे "विद्या शास्त्रस्य शास्त्रस्य" के अनुसार शस्त्रविद्या के भी अभ्यासी थे। उन्होंने डाड पट्टा, लकडी, तलवार आदि के अनेकों खेलों से अपने इस ज्ञान का भी अच्छा सबूत उपस्थित किया था।

छात्रोंके ज्ञान व शारीरिक श्रम सम्बन्धी स्थितिकी यथार्थताको देख उपस्थित जनताने परम संतोष अभिव्यक्त किया था। छात्रोंके उभयात्मक कार्य प्रदर्शन के पश्चात् माननीय शिक्षा सचिव महोदय द्वारा छात्रों को पदक, प्रमाणपत्र तथा पुस्तकादि पारितोषिक वितरण किया गया। अन्त में सभापतिजी ने

संस्था की उपादेयता छात्रों की ज्ञानस्थिति के औचित्य के आधारपर विविध युक्तियों से सिद्ध की। संस्था द्वारा राजस्थानके साधुवर्ग तथा इतर संस्कृत शिक्षानुरागियों का कितना हित सम्पादित हो सकता है इसका युक्तियुक्त विवेचन किया।

उपस्थित महात्मागण तथा अन्य नागरिकों को उनने प्रेरित किया कि वे इस अत्यन्त उपादेय शिक्षासंस्था की उन्नति में यथाशक्य सक्रिय सहायता से हाथ बँटावें।

माननीय श्री सूर्यनारायणजी शर्मा व्याकरणाचार्य के धन्यवादभाषण के पश्चात् पहिले दिन की कार्यवाही समाप्त की गई।

दूसरे दिन का समारंभ मंगलाचरणादि के पश्चात् पूज्य श्रद्धेयप्रवर विपश्चित् सम्माननीय महात्मा श्री नारायण स्वामीजीके भाषण से हुआ। वेदान्त जैसे निगूढ विषय को आपने अपनी प्रवचन-शैली से ऐसा सरल बना दिया कि साधारण से साधारण जन को भी उसके समझने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं होती थी। आप ब्यावर से उत्सव में सम्मिलित होने के लिये ही दो दिन के लिये आये थे और आजका एक भाषण ही आपके कार्यक्रम में था, परन्तु जनसमुदाय ने आपके भाषण को सुन आपसे अत्यन्त आग्रहके साथ निवेदन किया कि वेदान्त के विषय पर ही आपके और भाषण हों। जनता के आग्रह का आपने आदर किया और उत्सव के पश्चात् भी आपने तीन दिन अपने तीन भाषण और दिये। इसी से ज्ञात हो जाता है कि आपका भाषण कितना महत्वप्रद व कितना सारगर्भित तथा सरल रीति से होता था।

आपके भाषण के पश्चात् जयपुर के विख्यात भक्त शिरोमणि मुंशी श्रीमथुराप्रसादजी तथा राजकीय संस्कृत कालेज के अध्यक्ष सम्माननीय पंडितप्रवर महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी के मार्मिक भाषण हुए। मुंशीजी ने शिक्षा का महत्व प्रदर्शित कर इस संस्था द्वारा शिक्षा का जो कार्य सम्पन्न हो रहा है उस ओर साधुवर्ग तथा अन्य श्रेष्ठिवर्ग का ध्यान आकर्षित किया। सार्वजनिक संस्था के नाते यह सभी जनसमुदाय से सहायता की आकांक्षा रखती थी।

माननीय महामहोपाध्यायजी ने अपने पाण्डित्यपूर्ण प्रवचन से शिक्षा का महान् महत्व प्रदर्शित किया। शिक्षा ही से मानव मानवता को प्राप्त होता है।

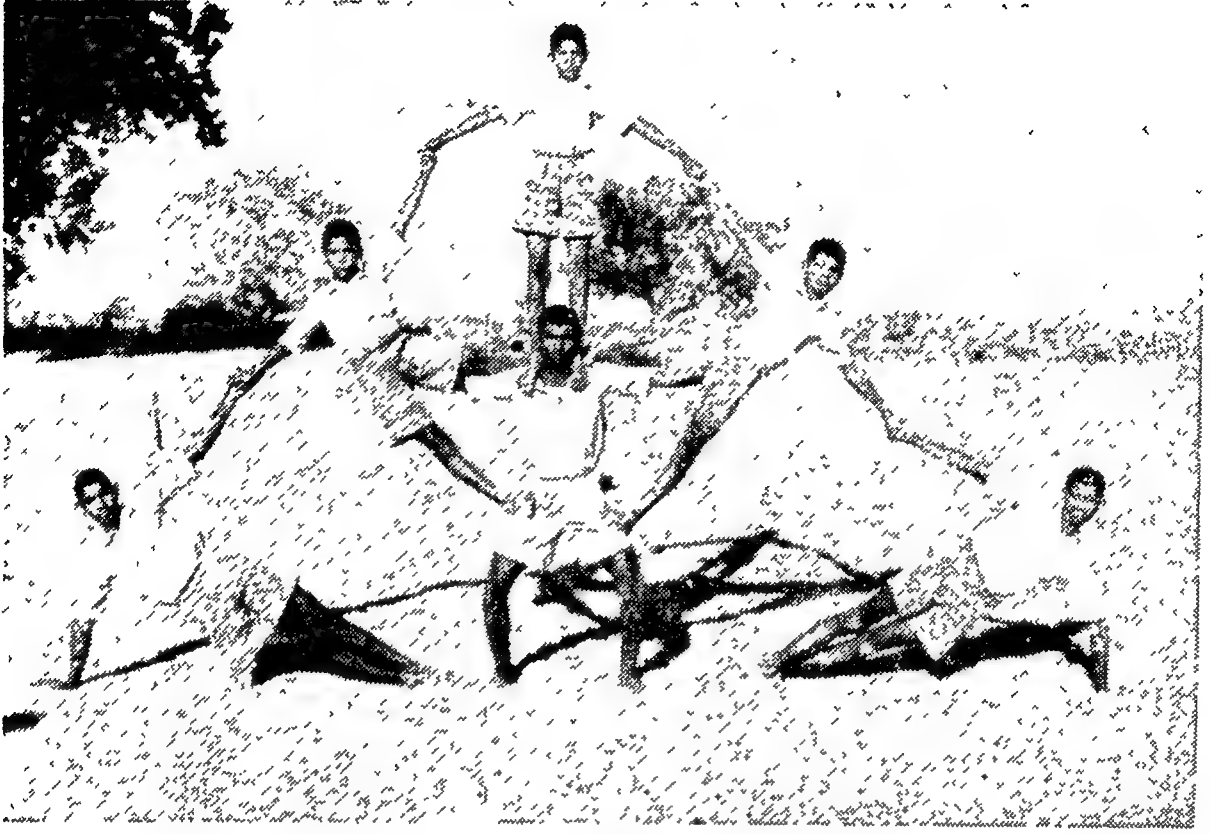
समाज की उच्च स्थिति का आधार शिक्षा ही है। नागरिकता के कर्तव्य तथा माननीय उत्तरदायित्व का ठीक ठीक निर्वाह मनुष्य तभी कर सकता है जब कि वह सम्यक् शास्त्रीय शिक्षा से शिक्षित हो। विद्यालय इस कार्य को किस तत्परता से कर रहा है इसके लिये अन्य उदाहरण की आवश्यकता नहीं। इसका विगत दश वर्ष का कार्य ही इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि संस्था बिना किसी बाहरी दिखावे के अपने लक्ष्य की ओर तत्परता से अग्रसर हो रही है।

अन्त में द्वितीय दिन के सभापतिजी ने अपने भाषण द्वारा सामयिक परिवर्तित परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए आजके समय में शिक्षा की कितनी अधिक आवश्यकता है इसका विविध युक्तियों से समर्थन किया। साधुसमुदाय भारतीय संस्कृतिका एक सबल आधारस्तम्भ है। वह अपने इस आधार को तभी उचित रूप में रख सकता है जब कि वह संस्कृत शिक्षासे सम्यग् अनुप्राणित हो। संस्था से साधु, गृहस्थ सभी लाभ उठा रहे हैं। साधुओं के शिष्यों की तरह ही जनसाधारण की सन्तति भी यहाँ उसी तरह शिक्षा पा रही है। अतः संस्था को स्थायी रूप देने में साधुवर्ग तथा जनसमुदाय सभी को समान रूप से भागीदार होने की आवश्यकता है।

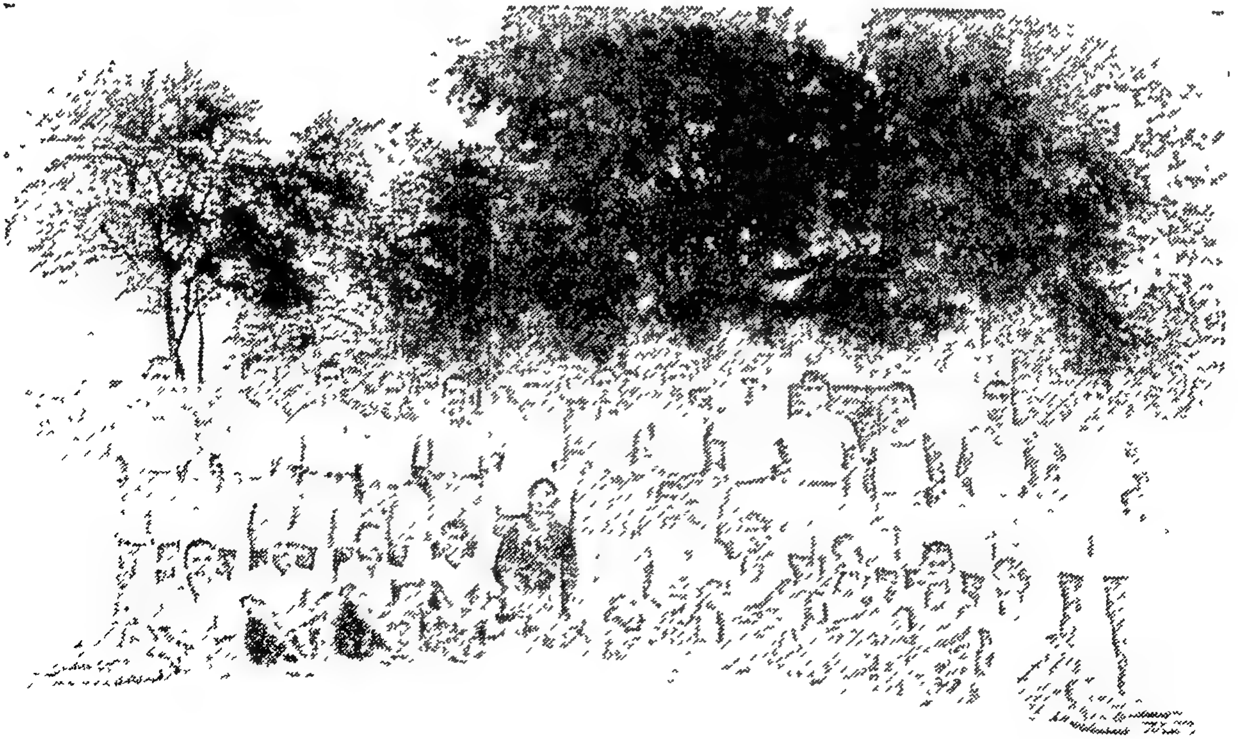
संस्था का आरंभ बहुत ही थोडे साधनों से कर दिया गया था। दश वर्ष का समय व्यतीत कर संस्था ने अपनी उचित उपादेयता सिद्ध कर दी है अतः अब इसकी आर्थिक स्थिति को डावाडोल रखना संगत नहीं है। सार्वजनिक संस्थाओं का सहारा हमी लोग हैं। अतः हम सभी को अपनी अपनी इच्छानुसार इसकी सहायता कर संस्था का हित सम्पन्न करना चाहिये।

आपने अपने भाषण को दो सहस्र की सहायता के क्रियात्मक उदाहरणके साथ समाप्त कर सहायता के स्रोत का उद्‌घाटन कर दिया। समारोह में उत्तराध तथा राजस्थान के विविध स्थानों से समागत सन्त महात्माओं ने अपनी अपनी सहायता प्रदान करनी प्रारंभ की।

संस्था के संस्थापक स्वर्गीय माननीय वैद्यजी महाराज श्री लक्ष्मीरामजी ने दश सहस्र की सहायता की घोषणा की। महन्त महाराज श्री मनीरामजी कलानोर ने इक्कीस सौ, वैद्यवर्य श्री स्वामी लालदासजी बीकानेर ने इक्कीस सौ, जमात



गर्दन आडी २



फुटबाल खिलाड़ी

चानसेन तथा लालसोट के पंचों द्वारा अपनी अपनी जमात की एक एक मास की राज्य द्वारा मिलने वाली वेतन प्रदान करने की घोषणा की। अन्य महात्माओं ने भी अपनी अपनी श्रद्धानुसार सहायता के वचन प्रदान किये। करीब सत्ताईस हजार रुपये की सहायता थोड़े से ही समय में प्राप्त होगई।

उत्सव के आयोजन के प्रमुख स्तम्भ माननीय पुरोहित श्री रामनिवासजी एम. ए. व नायब श्रीनिवासजी बी ए को विशेष धन्यवाद देते हुए सभी समागत सज्जनों का आभार प्रदर्शित कर उत्सव के द्वितीय दिवस का आयोजन समाप्त किया गया।

इस तरह संस्था का स्वसम्बन्धित यह पहिला विशेषोत्सव था।

—:: संस्थाका द्वितीय विशेषोत्सव ::—

जैसा कि पिछले 'स्थाननिर्माण विवेचन' में मोतीडूंगरी के पास विद्यालय के स्वतन्त्र भवन निर्माण का दिग्दर्शन कराया गया है उस के बन चुकने पर विद्यालय के प्रवेशकाल में यह दूसरा उत्सव 'उद्घाटनोत्सव' संज्ञा से सम्बोधित है।

यह उत्सव प्रवेशोत्सव भी कहा जा सकता है। सम्वत् १९९५ की फाल्गुन शुक्ला १२–१३ ता० ३–४ मार्च सन् १९३९ इसकी तिथियें थीं।

उद्घाटन-समारोह फाल्गुन शुक्ला १२ को था। उस दिन का कार्यक्रम प्रातःकाल ८ बजे से आरम्भ हुआ। आचार्यप्रवर परम साधक ब्रह्मनिष्ठ महात्मा 'श्रीदादूदयालजी की वाणी' ग्रन्थ साहबका जुलूस महन्त महाराज श्रीगंगादासजी की हवेली जो कि विद्याधर के रास्ते में है—से प्रारम्भ हुआ।

वाणीजीका आरोहण स्वर्णसिंहासन सज्जित एक हाथी पर किया गया। आगे हाथी, घोड़े, झण्डा, नौबत तथा अन्य विविध लवाजमा था। जुलूस का आरम्भ त्रिपोलिया से हुआ। करीब एक हजार महात्मा तथा दो हजार से अधिक संख्यामें नागरिक एकत्रित थे। जुलूसके आगे नौबत, शहनाई, बैण्ड आदि विविध बाजे बज रहे थे। भजनमण्डलियें भजनों की रसधारा प्रवाहित कर रही थीं।

साधुसमुदाय सत्यराम साखी का जयघोष कर रहा था । स्वण्डेत अपने विविध व्यायाम के कौशल दिखला रहे थे ।

जुलूस ज्यो ज्यो आगे जोहरी बाजार की ओर अग्रसर हो रहा था वैसे वैसे जनसमुदायकी संख्या वृद्धि होती जाती थी । रास्तेमें "वाणीजी"की स्थान स्थान पर आरती अभ्यर्थना की जाती थी । इस तरह यह जुलूस प्रात आठ बजे आरम्भ हो ग्यारह बजे दिन के विद्यालय के स्थान मे पहुचा ।

विद्यालय के श्री स्वामी लक्ष्मीराम सभाभवन के मन्दिर मे वाणीजी की विधि अनुसार स्थापना की गई । बारह बजे इस कार्य की पूर्ति हुई ।

विद्यालय का नवीन भवन ध्वजा पताकाओं से सुसज्जित था । विद्यालय के बृहत् प्राङ्गण मे सभामण्डप बनाया गया था । मध्याह्न में चार बजे से उद्-घाटनोत्सव का आरम्भ था । समय पर सब स्थान नागरिकों तथा सन्त महन्तों और महात्माओं से खचाखच भर गया । स्वागतगान तथा मगलाचरण के साथ कार्यारम्भ हुआ । सभापति का आसन सम्माननीय शिक्षा - सचिव ठाकुर श्री नरेन्द्रसिंहजी ने सुशोभित किया । उद्घाटन आपही के कर कमलों द्वारा होना था । विद्यालय के छात्रो ने अपने नानाविध व्यायाम के खेल प्रदर्शित किये । विद्यालय का यह उन्नीसवें वर्ष में दूसरा अधिवेशन था । अब तक जिन जिन छात्रो ने अध्ययनकाल मे उच्च योग्यताये प्राप्त की तथा वर्तमान में जिनका शिक्षा मे उचित स्थान था तथा जो अपने लक्ष्यको श्रम व वास्तविक ज्ञानके साथ प्राप्तकर रहे थे वैसे छात्रो को त्रिविध (पदक, प्रमाणपत्र, पुस्तक) पारितोषिक माननीय सभापतिजी ने अपने करकमलो से वितीर्ण किये । विद्यालय का अब तक का सामान्य विवरण मन्त्री ने सुनाया ।

माननीय सभापति महोदय ने अपने सारगर्भित भाषण में विद्यालय की क्रमिक उन्नति का दिग्दर्शन कराया । संस्था द्वारा शिक्षा के कार्य की जिस तरह उचित रूपमें पूर्ति हो रही है वह कितनी उपादेय है इसपर सम्यक् प्रकाश डाला । संस्था अपने स्वकीय स्वतत्र भवन मे पदार्पण कर रही है इसपर भी आपने अपने भावो को व्यक्त किया । संस्था की उपादेयता, संस्था की शिक्षा का महत्व, संस्था में रहने वाले छात्रों की विशेषता आदि सम्बन्धित विषयो पर सुन्दर प्रकाश डाल आपने विद्यालय भवन का उद्घाटन किया ।



श्री दादू महाविद्यालय की कार्यकारिणी समिति के वर्तमान पदाधिकारी



रात्रि को विद्यालय की महासमिति का विशेष अधिवेशन हुआ। दादू दयालु महासभा जिसकी स्थापना सम्वत् १९७६ के मेले में हुई थी तथा सभा द्वारा ही विद्यालय का आयोजन हुआ था (सभा का कार्य बीच में कुछ समय के लिये शिथिल-सा होगया था) उसके पुनःसंगठन पर महासमिति में विचार किया गया। उत्सव में सम्मिलित होने को सात सौ, आठ सौ महात्मा सन्त महन्त उपस्थित हुए थे। उन सबकी सम्मति ली गई। सभा ने महासभा के कार्य को व्यवस्थित बनाने में अपनी सहमति प्रगट की।

सभा का पुनः नवीन संगठन किया गया। सदस्य बनाने का भी क्रम आरम्भ किया। कुछ विशेष सहायता भी प्राप्त की गई। सभा की महासमिति तथा नई कार्यकारिणी का भी निर्माण किया गया। इस तरह पहिले दिन की कार्यवाही पर्याप्त सफलता के साथ सम्पन्न हुई।

फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को द्वितीय दिन का कार्यारम्भ महासभा की नवनिर्मित कार्यकारिणी की बैठक से हुआ। महासभा के भावी कार्यक्रम की रूपरेखा का निश्चय किया गया। दादूपन्थी साधु समुदाय से सम्बन्ध रखनेवाली पंचसूत्री योजना को कार्यान्वित करने का निर्णय किया गया। पश्चात् विद्यालय की महासमिति का अधिवेशन हुआ। नवीन स्थान में आने के बाद विद्यालय को और किन किन विशेष विषयों की ओर अग्रसर होना है इस पर विचार विनिमय किया गया। भवन में कुछ स्थान और निर्माण होने की आवश्यकतापूर्ति के लिये आज ही विशेष प्रयास करने का निश्चय किया गया। आयुर्वेद-शिक्षण में प्रेक्टिकल शिक्षा की व्यवस्था कैसी सम्मिलित की जाय तथा उसकी पूर्ति के लिये कहाँ कहाँ से क्या क्या सहायता मिल सकती है इस पर भी विचार विमर्श हुआ।

कुछ कलात्मक शिक्षा का अनुबन्ध रहे, यह विषय भी चर्चा में आया। वस्त्र स्वावलम्बन की भी चर्चा हुई। आयुर्वेद शिक्षा में औषधालय का अनुबन्ध महत्त्वप्रद है अतः एक औषधालय भी स्थापित किया जाय, यह निश्चय किया गया। और भी विद्यालय तथा छात्रावास सम्बन्धी आवश्यक अनेक विषयों पर विचार विमर्श किये गये।

मध्याह्न में महाराजा संस्कृत कालेज के अध्यक्ष ख्यातनामा महामहोपाध्याय प० श्री गिरिधर शर्मा जी के सभापतित्व में उत्सव का कार्यारम्भ हुआ। आज छात्रों के संस्कृत भाषा में विभिन्न विषयों पर वादविवाद तथा भाषण हुए। कल व्यायाम प्रदर्शन के बहुत से कार्य नहीं दिखाये गये थे वे आज प्रदर्शित किये गये। छात्रों ने तलवार, भाला, छुरी आदि शस्त्रों के विविध युद्धोपयोगी हाथों का प्रयोग करके दिखाया। धनुष तीर से नाना तरह के लक्ष्यवेधों का प्रदर्शन किया गया। आँखे बाध कर शब्द वेध लक्ष्य भी दिखाया गया। तलवार से विविध काट भी दिखाये गये। खेलों का यह प्रदर्शन किसी शिक्षासंस्था के छात्रों द्वारा दिखाने का जयपुर में यह दूसरा ही अवसर था। माननीय व्यायामाचार्य गोपालस्वामी जी ने छात्रों को व्यायाम की जो शिक्षा दी उसकी सभी ने भूरि भूरि प्रशंसा की, तथा विद्यालय की महासमिति के तथा महासभाके सभापति जी के द्वारा स्वामीजी को दुसाला, पदक, तथा एक थैली भेंट स्वरूप प्रदान कर उनका उचित सम्मान प्रदर्शित किया गया।

व्यायाम प्रदर्शन के पश्चात् मंत्री ने विद्यालय के अब तक के कार्य का संक्षिप्त परिचय तथा वार्षिक रिपोर्ट सुनाई। संवत् १९८१ जब कि संस्था के छात्र परीक्षा में बैठने आरंभ हुए, से अब तक चौदह वर्षका संस्था का परीक्षा परिणाम कितना उत्तम रहा यह प्रति वर्ष के प्रतिशत औसत से व्यक्त किया गया। परीक्षा के चौदह वर्षों में ऐसा एक भी वर्ष नहीं था जिस में ८०, ८५ प्रतिशत से कम परीक्षा परिणाम रहा हो। कई वर्ष तो ऐसे भी थे जिन में ९० तथा ९५ प्रतिशत परीक्षा-परिणाम थे। केवल परीक्षा-परिणाम ही उत्तम थे ऐसी बात नहीं, विद्यालय के छात्रों में स्वकीय परीक्षा विषयक ज्ञान भी उत्तम स्थिति में था।

विद्यालय द्वारा इन अठारह वर्षों में शिक्षाक्षेत्र में क्या २ और कैसा कार्य सम्पादित हुआ है इसकी भी सम्यक् जानकारी करवाई गई। चौदह हजार की थोड़ी सी पूंजी से आरंभ किये गये विद्यालय की, अब इतने दिन में आर्थिक स्थिति भी छयासी हजार तक पहुँच गई है यह ज्ञात किया गया। विद्यालय की स्थायी आय के विचार से स्थायी कोश को बहत्तर हजार की रकम से प्यारी बावड़ी, तम्बाकू कटला, देहली में एक जायदाद विद्यालय के नाम से जून, १९३८ में खरीद ली गई। जिसका किराया साढे तीन सौ से कुछ ऊपर है। अन्य

आय के स्रोतों का निरूपण कर तथा विद्यालय की अन्य प्रवृत्तियों का परिचय देकर उपस्थित महानुभावों को विद्यालय की स्थिति से सम्यक् परिचित कराया गया।

मन्त्री के कार्य विवरण सुनाने के बाद कई अन्य वक्ताओं ने विद्यालय की उन्नति के लिये उपस्थित समुदाय से सहयोग तथा सहायता प्रदान करने का निवेदन किया। अन्त में माननीय सभापति महोदय ने अपना विद्वत्तापूर्ण भाषण आरंभ किया। विद्यालय में शिक्षासम्बन्धी चल रहे कार्य के औचित्यका दिग्दर्शन कराते हुए शिक्षा का परिणाम, शिक्षा से प्राप्त होने वाले वास्तविक ज्ञान व योग्यता की उपलब्धि ही है यह सिद्ध किया। आगे उनने कहा कि चालू परीक्षा-प्रणाली के कारण योग्यता व वास्तविक ज्ञान गौण होता जा रहा है। शिक्षा में यह खतरा कम चिन्तनीय नहीं है।

शिक्षाका वास्तविक उद्देश्य ज्ञान पिछड़ता जा रहा है। परीक्षामें पास होने की प्रवृत्ति प्रबल होती जारही है। उत्तरोत्तर बढ़ती हुई छात्रों की यह मनोभावना शिक्षा के महत्व को सुरक्षित रख सकेगी इसमें सन्देह है। ऐसी स्थिति में भी इस संस्था में परीक्षा के साथ साथ योग्यतानिष्पत्ति का भी पूरा प्रयास किया जा रहा है। यह संस्था का स्तुत्य प्रयास है।

जयपुर में राजकीय कालेज के पश्चात् संस्कृतशिक्षण के लिये इसी संस्था का नाम लिया जा सकता है। राजपूताने में भी यह संस्था गणनीय कही जा सकती है। संस्थासे सभी वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने का लाभ प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति का संरक्षण, देखा जाय तो संस्कृत शिक्षा पर ही प्रधानतया अवलम्बित है।

अंग्रेजी शिक्षा के सदोष कार्यक्रम से हमारे देश के जो विशेष गुण थे वे नष्ट होरहे हैं। पाश्चात्य देशों के दोषों का इस देश में विवर्द्धन हो रहा है। व्यक्तिस्वातन्त्र्य तथा व्यक्तिगत स्वार्थों की भावना प्रबल होती जा रही है। वेष भूषा व भावों में भारतीयता की अपेक्षा विदेशीयता स्थान ग्रहण कर रही है। इस प्रवाह में संस्कृत शिक्षण की संस्थायें ही इस आशा की आधार कही जा सकती हैं जहाँ कि भारतीयता का अंश सुरक्षित है। संस्था की उपदेयता का

है। उनका हृदय, आत्मा तथा उनके मन सङ्कल्प अब भी संस्था के अप्रत्यक्ष रूप में सहायक हैं तथा समय समय पर उसकी रक्षा करते हैं। फिर भी उनके दृश्य-शरीर के अभाव में व्यक्तिगत व व्यक्तित्वजन्य जो सहायता मिलती थी उसकी पूर्ति अब सम्भव नहीं है।

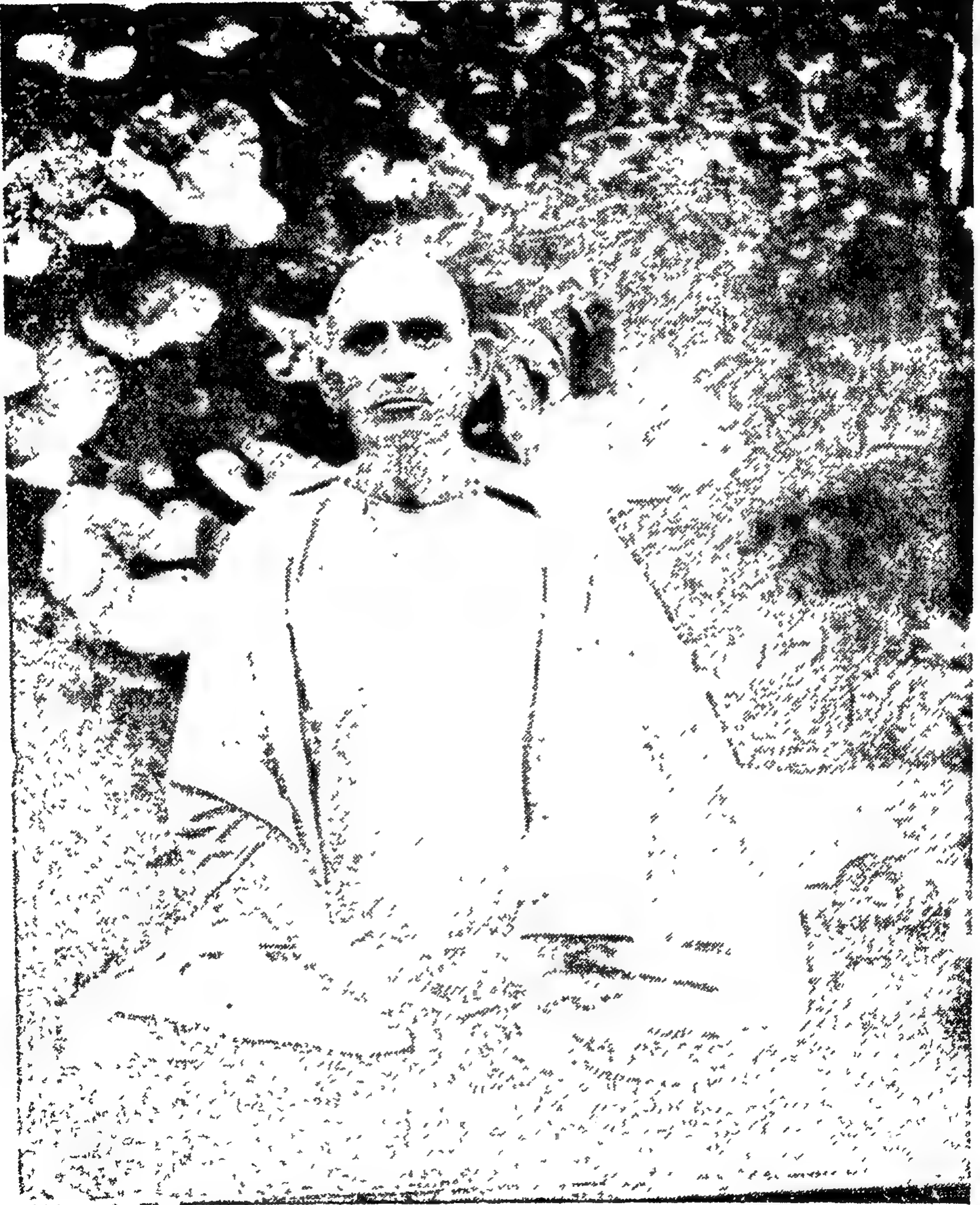
विद्यालय उनकी मानस संतति है। वे ही इसके पिता तथा कर्णधार थे। उन्होंने इसको अनवरत तपित कर इसकी जीवनरक्षा की, पालना की और पोषण किया। यह सब जो कुछ भी है उन्हीं की विभूति का, उन्हीं के प्रयास का तथा उन्हीं की सहायता का परिणाम है।

—:: वीतराग महात्मा श्री सेवारामजी ::—

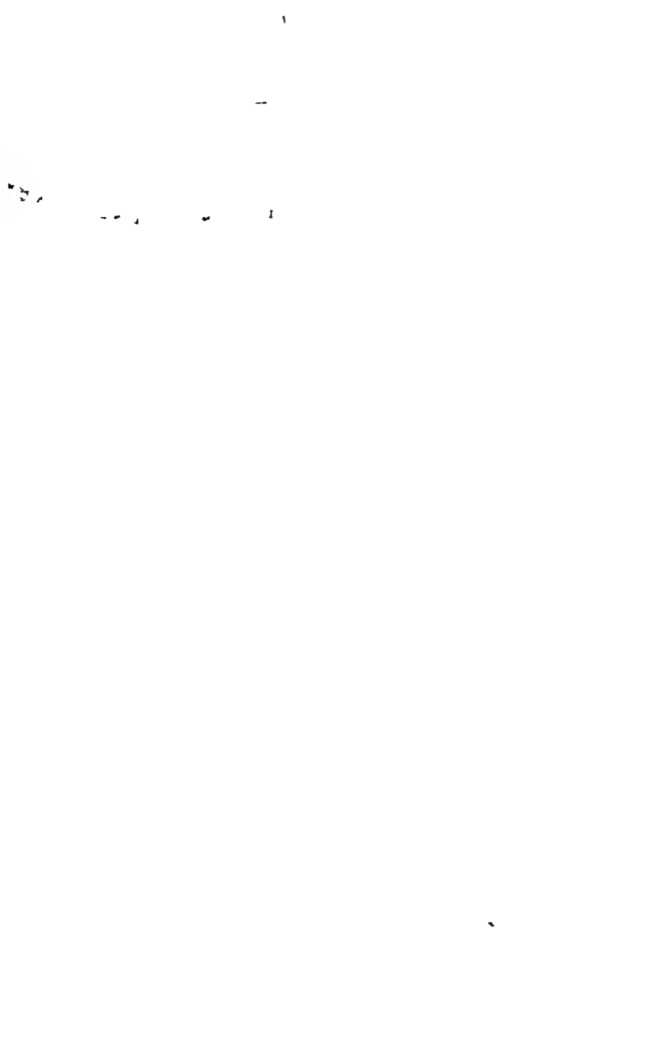
स्वामीजी के पश्चात् संस्थाके अनन्यतम सहायक हैं पूज्यचरण महाराज श्री स्वामी सेवारामजी। जैसा कि मैंने पीछे व्यक्त किया है संस्था की स्थापना के प्रयास का आरम्भ होते ही वैद्यजी महाराज की इच्छा हुई कि कोई स्वार्थविहीन-भावना वाला महात्मा इसका सहायक हो तभी इस कार्य का आरम्भ तथा संरक्षण हो सकेगा। नराणे में संवत् ७६ के मेले में, जब कि संस्था की स्थापना का विचार स्वीकृत किया गया था, स्वामी सेवारामजी महाराज भी पधारे हुए थे। आप उस समय एकाकी ही रहते व एकाकी ही विचरते थे। आत्मचिंतन का ही एक कार्य था। व्यावहारिक जगत् की सब उलझनें आपने छोड दी थीं। मेले में आप दर्शकरूप में ही पधारे थे। विद्यालय की स्थापना की चर्चा सुन आपकी भी अन्त सहानुभूति उसके प्रति अवश्य हुई।

वैद्यजी महाराज ने कई बार उपर्युक्त भावना अपने निकट सम्पर्कित सज्जनों के सामने व्यक्त की। मुझे ठीक तो स्मरण नहीं है, पर शायद महन्त श्री चैनसुखदासजी डीडवाणा वालों ने वैद्यजी महाराज को स्वामी सेवारामजी का परिचय दिया तथा ज्ञात किया कि यदि आप उन्हें निवेदन करें तो शायद वे इस कार्य में पर्याप्त सहायता कर सकते हैं।

वैद्यजी महाराज स्वामीजी से मिले तथा उनसे अपने भाव व्यक्त किये। उस समय से आज तक स्वामीजी महाराज ने वैद्यजी महाराज की इच्छा को पूर्ण रूप से निर्वाहित करने का प्रयास किया।



वीतराग परमहंस महात्मा श्री सेवारामजी (पृष्ठ १३८)



वैद्यजी महाराजकी इस इच्छापूर्ति के करने से उनके स्वकीय कार्यमें पर्याप्त बाधा आई। निःस्पृह तथा निर्द्वन्द्व रहने वाले सज्जन जब प्रवृत्तिमय प्रेरणा की पूर्ति का प्रयास करें तो उन्हें अन्तर्वेदना हुए विना नहीं रहती। जो सर्वथा स्वतंत्र थे जिनको किसी से कुछ प्राप्त करने की सर्वथा इच्छा नहीं थी, किसी के सामने खड़े होना या जाना जिन्हें बिलकुल अभीष्ट नहीं था; उन्हीं को विद्यालय की सहायता के लिये अनेकों व्यक्तियों के पास जाना पड़ा व उन्हें प्रेरित करना पड़ा। उनके उच्च व्यक्तित्व तथा सत्य व्यवहार से जहाँ भी उनने प्रेरणा की सर्वदा उस कार्य की पूर्ति हुई। विद्यालय की सहायतार्थ प्रयास करने पर अन्य अनेकों काम करने वाले भी उनसे अपने अपने काम में सहायक होने की आशा करने लगे। प्रवृत्तिमय काम के कारण उनकी विपरीत समालोचना भी चली। कभी कभी कुछ आक्षेप भी होने लगे। निष्कर्ष यह है कि स्वामीजी के निर्द्वन्द्व जीवनप्रवाह में विद्यालय की सहायता ने विक्षेप पैदा कर दिया। फिर भी वैद्यजी महाराज के निर्देश या निवेदन की स्वीकृति कर लेने के कारण स्वामीजी अभी तक अपना सहयोग उसी रूप में प्रदान करते रहे। अकेले स्वामीजी की प्रेरणा से संस्था को आठ सहस्र से अधिक की आर्थिक सहायता पहुँची है। तन और मन की सहायता का लेखा जोखा शाब्दिक विवरण की सीमा से बाहर है। उनकी शारीरिक तथा मानसिक सहायता के क्रम ने ही हम लोगोंका पथ-प्रदर्शन किया है।

विद्यालय का आरम्भ सम्माननीय डाक्टर श्री दलजनसिंहजी एम. बी. बी. एस. की प्रेरणा से अत्यल्प अर्थ तथा साधनों की परिस्थिति में कर दिया गया था। पर आपके साहसिक सहयोग ने धीरे धीरे सब बाधायें दूर कर दीं। प्रारम्भिक वर्षों के अर्थाभाव की निवृत्ति आप ही के सत् प्रयास से हुई। अन्य साधनों के अभाव भी आप ही के प्रयास से निवृत्त हुए।

पूज्य वैद्यजी महाराज के देहावसानके समय से ही आपका स्वास्थ्य बिगड़ा था, वह अन्त तक उसी रूपमें चलता रहा। एक वर्षसे स्वास्थ्य की स्थिति और भी गिरावट की ओर थी पर आपने विद्यालय की सहायतामें इस अवस्थामें भी किसी तरह की कमी नहीं आने दी। पिछला एक युग विश्वव्यापी युद्ध तथा युद्धजनित विविध कठिनाइयों का क्रीड़ास्थल रहा है। कहना नहीं होगा कि इस विकट

समय मे प्रत्येक व्यक्ति को त्रिविध कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक सहायता पर चलने वाली सस्थाओ के लिए तो कहना ही क्या है, उनमे भी समय प्रवाहो के पुकारो को अपनाने वाली मस्था की दिक्कतों का रूप और भी अधिक कठिनाईपूर्ण स्वाभाविक है।

इस कठिन समय में मस्था को यदि पूज्य स्वामी श्री सेवारामजी महाराज का सहयोग प्राप्त न हाता तो न मालूम, सस्था को इसी रूप मे चलाया जाना शक्य होता या नहीं। वैद्यजी महाराजके अभावमें वैसे ही सस्थामें दौर्बल्य आना स्वाभाविक था। फिर समय का परिवर्तित रूप, युद्ध, युद्धजन्य विभिन्न विभीषिकाएँ, जनसाधारण की परिवर्तित स्थिति, मानव-समुदाय के मानसिक क्षेत्र में उथल पुथल आदि सामान्य बाधायें नहीं हैं। पर इन सब बन्धनों को पार करते हुए विद्यालय अभी अपनी उचित स्थिति बनाये हुए है यह सब इन्हीं महापुरुष की सहायता व सहयोग का परिणाम है।

विड़ला परिवार—

बिडला परिवार भारत का ख्यातनामा श्रेष्ठिवश है। इस परिवार से स्वर्गीय वैद्यजी महाराज का भी सम्बन्ध था, पर विद्यालय की सहायतार्थ इस परिवार मे प्रेरणा माननीय श्री सेवारामजी महाराजने ही की। उन्ही की प्रेरणा मे इस अकेले परिवार ने विद्यालय की भारी सहायता की है। करीब पाच वर्ष तक दो सौ रुपये मासिक तथा पन्द्रह वर्ष तक सौ रुपये मासिक की सहायता आपसे मिलती रही। यही कारण था कि सस्था को विना धनसग्रह के प्रारम्भ कर देने पर भी आर्थिक बाधा का विशेष सामना न करना पडा।

सस्था का इस समय जो स्थायी कोश एकत्रित हुआ है उसमें भी उपर्युक्त आर्थिक सहायता ही कारण है। क्योंकि करीब पन्द्रह सोलह वर्ष तक इसी सहायता से इतना सहारा लगता रहा जिससे अन्य आमदनी के जरिये सस्था का लागत खर्च निकलता रहा। अन्यथा चन्दे की जो रकम प्राप्त की गई थी या प्राप्त हो रही थी वह सब खर्च मे ही समाप्त हो जाती। किन्तु इस सहायता के कारण चन्दे की रकम में से एक पाई का भी खर्च करने का मौका नहीं आया। दो बार उसके व्याज की रकम भी मूलधन मे सम्मिलित की गई। इसी से इसका स्थायी



स्व० वैद्य श्री लालदासजी, बीकानेर (पृष्ठ १४३)



वैद्य श्री जयरामदासजी स्वामी, जयपुर (पृष्ठ १४१)

कोश अस्सी हजार से ऊपर पहुँच सका। बिड़ला परिवार की सहायता को ही यह श्रेय है कि देहली में संस्थाकी एक जायदाद स्थापित करली गई जिसकी आय करीब पौने पांच सौ रुपये मासिक है।

स्थाननिर्माण के कार्यमें भी इस परिवार से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। कूआ तथा दो बड़े कमरे आप की ही सहायता के प्रतीक हैं। आपके परिवार की कुल सहायता का जोड़ भी चालीस से पचास हजार के बीच का है। यह संख्या ही इस बात की द्योतक है कि विद्यालय के अर्थाभाव तथा आर्थिक कठिनाइयों के निवारण में बिड़ला परिवार का कितना सहयोग है। विद्यालय के बाल-जीवन की सुरक्षा अ प से ही हुई यह कहा जाय तो अनुचित नहीं। संस्था तथा संस्था से लाभ उठाने वाले सभी छात्रगण इस परिवार के परम कृतज्ञ हैं कि जिनने समय पर संस्था का संरक्षण कर उसके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में उचित सेवा कराने में अपने सात्विक दानका उचित उपयोग किया।

वैद्य स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य—

स्वर्गीय पूज्य वैद्यरत्न स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराजके उत्तराधिकारी श्रीमान् वैद्य जयरामदासजी भिषगाचार्य (वाइस प्रिंसिपल, महाराजा आयुर्वैदिक कालेज, जयपुर, राजस्थान) इस संस्था के संचालक-कर्तव्य को पूरा करें यह तो आवश्यक ही है, क्योंकि उनने जिनके उत्तराधिकारी का भारवहन जिम्मे लिया है, विद्यालय उन्हीं की स्थापित संस्था है। कहना नहीं होगा कि स्वामी जयरामदासजी ने अपने इस कर्तव्य को सर्वदा जागरूक रहकर सम्पादित किया व कर रहे हैं।

स्वर्गीय स्वामीजी द्वारा स्थापित धन्वन्तरि औषधालय तथा विद्यालय इन दोनों ही संस्थाओं की उन्नति के लिये आप अपनी शक्ति तथा विचार का उपयोग सदैव करते ही रहते हैं। दोनों संस्थाओं के संचालन में भी आपका पूरा पूरा हाथ है। दोनों ही संस्थाओं के कार्य का निरीक्षण भी आप बराबर करते रहते हैं।

आपकी भी यही प्रबल भावना है कि स्वामीजी के ये दोनों मानसपुत्र स्वस्थ, सशक्त तथा दीर्घजीवी रहें। इस कार्य में किसी प्रकार की बाधा न आए।



ग्यारह अखाड़ों में सबसे अग्रणी है। जयपुर राज्य से आपके स्थान को तीन ग्राम की जागीर है तथा राज्य में आपका परम संमाननीय स्थान है। दरबार में आपकी कुर्सी है। निवाई के स्वर्गीय महन्तजी तथा वर्तमान महन्त महाराज मन्नादासजी व अधिकारी रामप्रसादजी दोनों ही महानुभाव विद्यालय के मान्य सहायकों में से हैं। आप विद्यालय की कार्यकारिणी के चिरकाल से अन्यतम सदस्य हैं। विद्यालय सम्बन्धी सभी विचारणीय प्रश्नों में महन्त महाराज की ओर से रामप्रसादजी का पूरा पूरा सहयोग प्राप्त होता रहता है। समय समय पर विद्यालय की सहायता में आप भी भाग बंटाते रहते हैं।

दादूपन्थी सम्प्रदाय में उतराधे महन्त सन्तों का एक विशेष स्थान है। जिला रोहतक, जिला हिसार, जिला गुड़गाँवाँ में अनेक प्रतिष्ठित उतराधे महात्माओं के बड़े बड़े स्थान हैं। उन्हीं में जिला रोहतक में रोहतक और भिवानी के बीच कलानोर ग्राम है वहाँ छोटी बाईसी संज्ञासे प्रसिद्ध उतराधके अनेकों स्थानोंमें महन्त महाराज मनीरामजी का स्थान प्रमुख है। आप योग्य विद्वान् तथा अत्यन्त विद्याप्रेमी हैं। सम्प्रदाय के इतिवृत्त तथा दादूपन्थी सन्त साहित्य के आप मर्मज्ञ ज्ञाता हैं। विद्यालय के स्थापन-काल से अब तक आपका सहयोग विद्यालय को बराबर मिलता रहा है। आप केवल आर्थिक सहायता ही नहीं अपितु मानसिक सहायता भी बराबर देते रहते हैं। आप भी विद्यालय की कार्यकारिणी के अन्यतम सदस्य हैं।

कलानोर से ही आकर महात्मा सहजरामजी ने रतनगढ़ में तथा बीकानेर में निवास किया था। उनकी परम्परा में महाराज हीरादासजी के शिष्य स्वर्गीय स्वामी श्री लालदासजी व सन्त श्री किशनदासजी बीकानेर भी विद्यालय पर परम अनुकम्पा रखते हैं। स्वर्गीय लालदासजी महाराज ने आयुर्वेद की शिक्षा स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज से प्राप्त की थी। उनका वैद्यजी महाराज में अत्यन्त श्रद्धामय गुरुभाव था। वैद्यजी महाराज द्वारा विद्यालय की स्थापना की गई थी अतः लालदासजी इस संस्था को गुरुसंस्था के रूप में मान्यता देते थे। उनका इस संस्था से हार्दिक प्रेम था। वे स्वयं तो जो कुछ सहायता दे सकते थे, देते ही थे पर अन्य महात्माओं को भी इसके लिये बराबर प्रेरणा

करते रहते थे। उनने जीवनकाल मे संस्था पर पूरा पूरा अनुग्रह रक्खा। उनके पश्चात् संतजी श्री किशनदासजी भी विद्यालय पर उसी तरह से कृपा रखते हैं। विद्यालय का जब भी जो कोई संकेत सहायताके लिए उन्हें मिलता है उसे वे यथाशक्य पूरा किया करते हैं। उपर्युक्त तीनों सज्जनों की तरह उतराध के वर्तमान समय के जितने भी प्रतिष्ठित स्थानो के अधिपति महन्त हैं वे सब विद्यालय की उचित सहायता मे भाग बटाते रहे हैं। उन सबके भिन्न भिन्न वर्णन से लेख का कलेवर अधिक होता है अत यहाँ हम उनके नामोल्लेख करके ही उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं। महन्त रामदासजी राणीला, महन्त किशनदासजी दूबलधन, महन्त रामदासजी डेहली, महन्त दयारामजी अलेवा, महन्त सहजरामजी कान्हौर, महन्त अमरदासजी समचाना वैद्य शिवरामदासजी भिवानी, महन्त भूरदासजी लिखमीदासजी चोंद, महन्त रामकादासजी तलाव, स्वामी बलरामजी बेरी, वैद्य अर्जुनदासजी गिरिधरानन्दजी चरखी दादरी, वैद्य श्री गोपालदासजी महाराज बुवानी, वैद्यवर स्वर्गीय श्री रघुनाथदासजी भिवानी, अवधूत श्री श्यामसुन्दरजी भिवानी, पंडित रामानन्दजी बुवानी, महन्त रामानन्दजी किटौली, महन्त दयालभजनजी ऊमरा, वैद्य जानकीदासजी रामगढ, महन्त किशोरदासजी रामगढ, वैद्य शिवकरणदासजी चिडावा, स्वर्गीय वैद्य श्री रामलालजी भिवानी, महन्त रामकृष्णजी भिवानी, कविराज श्री मोहनदासजी कलकत्ता आदि। उपर्युक्त माननीय महात्माओं तथा महन्त सन्तों मे से दिवगत महापुरुषों को छोड शेष सभी महानुभाव अब भी विद्यालय के सहायक हैं। समय पडने पर आप सभी यथोचित सहायता करने में कभी आगा पीछा नहीं करते।

उतराधे महात्माओं की तरह ही जमातों में जो जो सम्पन्न स्थान हैं उन सबने भी विद्यालय की सहायता मे उचित हिस्सा बटाया है। जमात उदयपुर, जमात लालसोट, जमात चानसेन, जमात निवाई, जमात महावीर तथा जमात सवाई माधोपुर से भी विविध स्थानों तथा महन्त सन्तों से सहायता उपलब्ध होती रही है। इनमें वैद्य भोलारामजी बढू, मागूरामजी रतनपुरा, चिमनदासजी जाजी,थाम्भायत दयालदासजी उदयपुर तथा दलेरामजी भूरारामजी पलसाना के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री दादूमहाविद्यालय व छात्रावास

झूंझनूं छावनी में निवास करने वाले पूज्य स्वर्गीय स्वामी श्री उदयरामजी महाराज का नाम हम विशेष रूप से स्मरण करें तो असंगत नहीं, क्योंकि आप उच्चकोटि के आदर्श महात्मा थे। आपकी विद्यालय पर असीम अनुकम्पा थी। आपने मानसिक आशीर्वाद तथा आर्थिक सहायता उभय रूप का सहयोग प्रदान किया था।

जमात चानसेन, थोक जुगलदासजी के सन्त हरदेवदासजी की सहायता महत्त्वप्रद है। आपने प्रारंभ से ही पायणे के हिसाब से विद्यालय की सहायता प्रारंभ कर दी थी। चन्दा, स्थान तथा सहायता सम्बन्धी जो भी काम विद्यालय के आये, आपने तथा आपके सहयोगी अन्य स्थानों ने समुचित सहायता प्रदान करने की उदारता प्रदर्शित की है। आप समाज के प्रत्येक काम में सबसे पहिले भाग लेते हैं।

थांभायती महन्तों में सम्माननीय महन्त महाराज श्री गंगारामजी रामगढ़, महन्त चैनसुखदासजी डीडवाना, महन्त श्री रामरिखदासजी रतिया, महन्त श्री लक्ष्मीरामजी घाटड़ा, महन्त श्री जुगलदासजी भादवा की सहायता भी उल्लेखनीय है।

विरक्त महात्मा तथा मंडलीश्वरों ने भी सहायता के काममें अपना स्थान पर्याप्त आगे रक्खा है। विरक्त महात्माओं के अर्थोपलब्धि के विशेप साधन न होते हुए भी उनने अपने अकिञ्चित् स्रोतों द्वारा जो भी अर्थ प्राप्त हुआ उसका अधिक भाग सहायतार्थ प्रदान कर अपनी विरक्ति की सार्थकता सिद्ध की है। मंडलीश्वर श्री जुगतरामजी, मंडलीश्वर पं० श्री युक्तानन्दजी, मंडलीश्वर तपस्वी श्रीगिरिधारीदासजी महाराज, मंडलीश्वर श्रीरामदासजी, मंडलीश्वर श्री बालूरामजी के नाम विशेपतः स्मरणीय हैं। इन सभी सज्जनों ने विद्यालय की सहायता में सर्वविध सहयोग प्रदान किया है।

साधुओं में से और भी अनेकों सज्जन—जिनकी पूरी सूची देना इस विवरण में शक्य नहीं, स्मरणीय हैं। साधुओं की तरह ही अन्य गृहस्थस्वर्ग ने भी विद्यालय की सहायता में उचित भाग अदा किया है। गृहस्थ सज्जनों के अर्थ-व्यय के न मालूम, कितने हेतु आगे से आगे उपस्थित रहते हैं फिर भी उनने इस

सात्त्विक दान में सहयोग देना आवश्यक समझ विद्यालय का हितसाधन किया तदर्थ वे भी सब अभिनन्दनीय हैं। तीस वर्ष के लम्बे समय में सहस्रों सहायकों की सख्या है। पाई पैसेसे लेकर सहस्रोंकी सहायता देनेवाले सभी सज्जन सहायक कोटि में हैं। सभी ने अपने अर्थ का उत्सर्ग किया है अत हम सभी सज्जनों का जिनका कि नामोल्लेख नहीं किया गया है, विशेष रूप से आभार प्रदर्शित कर अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

—: अध्यापकवर्ग व कार्यकर्ता :—

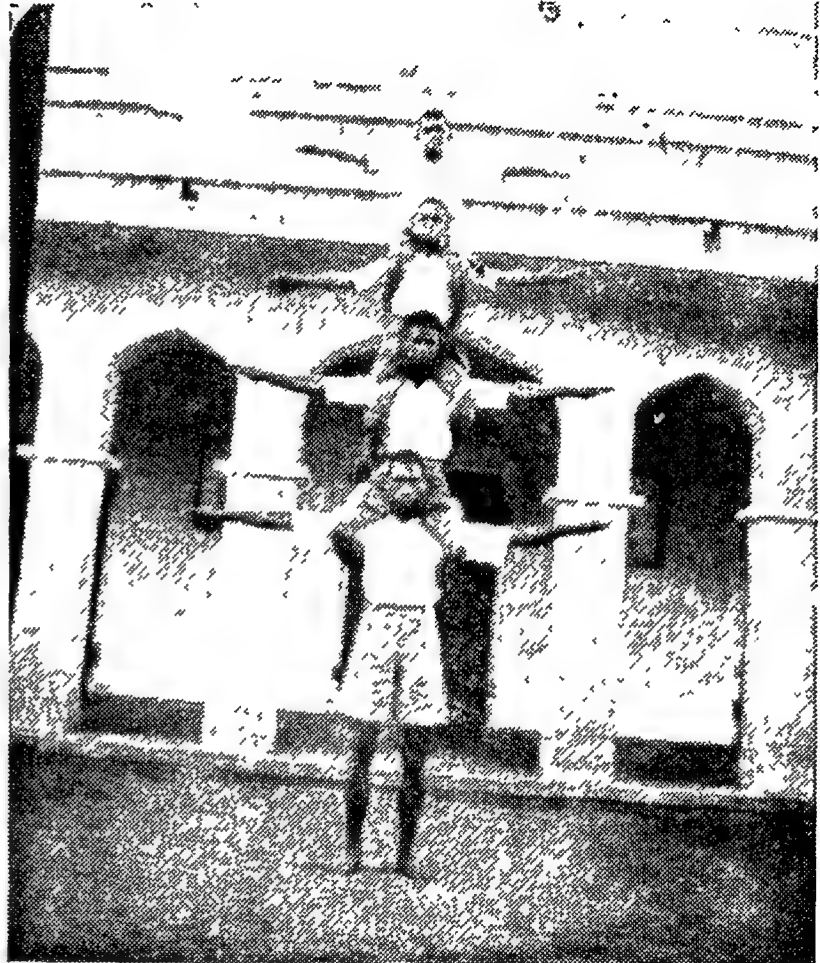
विद्यालय में जो कुछ शिक्षासम्बन्धी परिणाम है एव छात्रों की परीक्षा सफलता के साथ साथ योग्यतासम्बन्धी उपादेयता है वह सब अध्यापकों के श्रम तथा सहयोग का ही परिणाम है। जिन शिक्षकों ने दीर्घकाल तक अपने ज्ञान तथा अनुभव से अज्ञ निरक्षर छात्रों को साक्षर व ज्ञानसम्पन्न बनाने का श्रम किया है वे सबसे अधिक धन्यवादार्ह हैं। उनके प्रति सस्थाकी श्रद्धा तथा कृतज्ञता सर्वदा बनी रहेगी। उनका सक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है क्योंकि इस शकट के धुर्य वे ही थे और हैं।

अध्यापकों के दो वर्ग हैं—एक अल्पकालिक तथा दूसरा दीर्घकालिक। अल्पकालिक अध्यापकों का कार्य शिक्षा के नाते समान होते हुए भी परिणाम के नाते दीर्घकालिक अध्यापकों के समान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनका सबध छात्रों के साथ अधिक समय तक नहीं रहा। अत हम दोनों ही तरह के अध्यापकों का परिचय देते हुए भी दीर्घकालिक अध्यापकों का परिचय विस्तार से देंगे।

विद्यालय के प्रारम्भकाल में सर्वप्रथम अध्यापन का भार उठाने वाले प० हीरालालजी शर्मा थे। आप जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावाटी में नवलगढ के रहने वाले थे। आप हिन्दी, गणित तथा साधारण सस्कृत के भी ज्ञाता थे। आप हिन्दी-अध्यापन के लिये ही नियुक्त हुए थे। आपका रहन सहन बहुत सादा था। प्राचीनता की पूरी निष्ठा के साथ रक्षा करना आप अपना कर्तव्य मानते थे। ब्राह्मण का दैनिक कर्म सध्या, गायत्री का जप, पूजा पाठ आपका नियम से चलता था।



गर्दन आडी नं० ४



देवदार ४



स्पृश्यास्पृश्यव्यवस्था का पालन आप दृढ़ता से किया करते थे। भोजन अपने हाथ से ही बनाया करते थे। आप अपने कर्म का सम्यक् निर्वाह करते हुए अध्यापन का कार्य पूरी लगन से किया करते थे। पठन-पाठन के कार्य में आपकी धर्मनिष्ठा किसी रूप में भी बाधक नहीं थी। उनने प्रारम्भ के छात्रों को हिन्दी तथा गणित की शिक्षा दी थी। वे करीब तीन वर्ष तक विद्यालय में अध्यापन कार्य करते रहे। छात्रों पर उनके साधु जीवन का प्रभाव अंकित होता था। जितने अंश की वे शिक्षा देते थे उसे छात्रों को हृदयंगम करा देने का पूरा प्रयास करते थे। आरम्भ के जो छात्र उन से शिक्षा पाये हुए हैं वे अद्यावधि उनके अध्यापन-कार्य की सराहना करते हैं तथा उनका नाम परम समादर के साथ स्मरण करते हैं।

आपके स्थान पर अध्यापन के लिये थोड़े थोड़े समय के लिये दो तीन अध्यापक और आये। उन में श्री माधवप्रसादजी शास्त्री तथा भँवरलालजी शर्मा भी थे। आपने भी विद्यालय में पाँच छः मास तक अध्यापन का कार्य किया था। आपका समय अल्प होने से आपकी शैली का छात्रों के साथ विशेष अनुबन्ध नहीं बना।

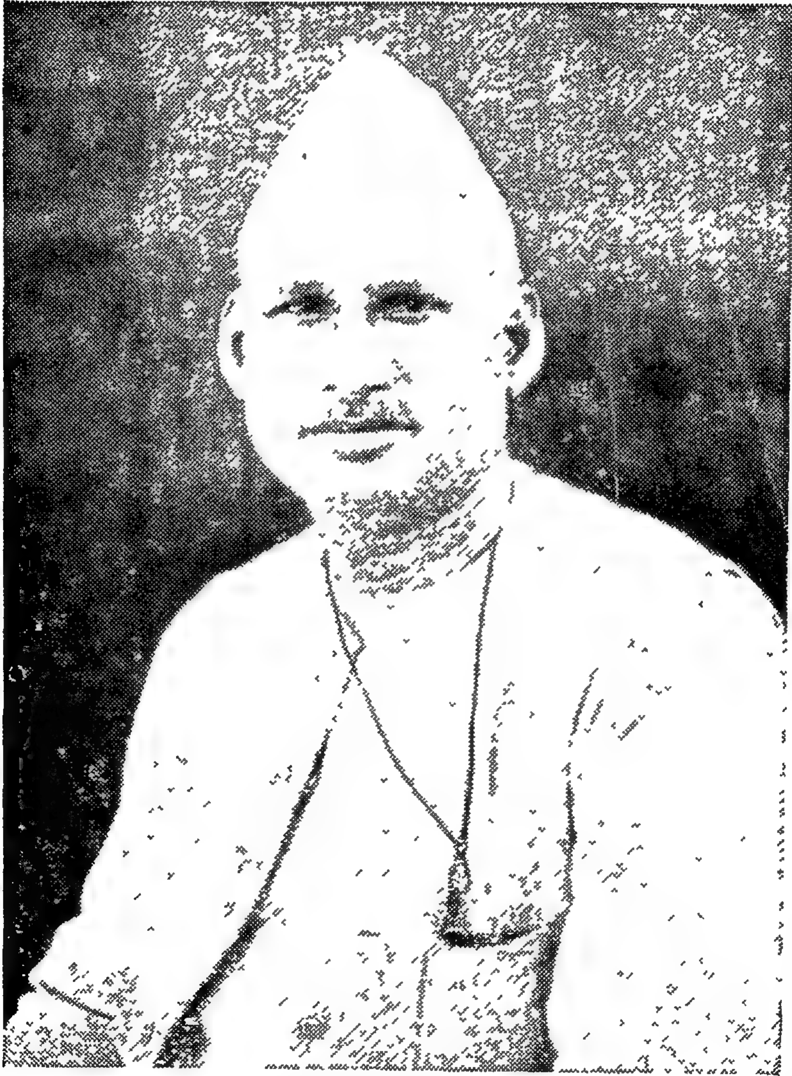
ज्यौतिषी श्री लक्ष्मीनारायणजी संस्कृत-अध्यापन के लिये सर्वप्रथम नियुक्त हुए थे। आप ज्यौतिष की शास्त्री परीक्षा पास थे। ज्यौतिष का ही कार्य किया करते थे, पर पहिले अध्यापन का कार्य भी किये हुए थे, अतः विद्यालय में सहसा अध्यापक की आवश्यकता होने पर आपने अस्थायी रूप से कुछ समय तक कार्य करना स्वीकार किया था। आप अपने विषय के अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत का प्रारंभिक अध्यापन आपने जितने समय किया, अच्छा किया। लम्बे समय तक कार्य करने की तो आपकी प्रारंभ से ही इच्छा नहीं थी। आप ने ही छात्रों को सामान्य संस्कृत का अध्ययन कराकर लघुकौमुदी का आरंभ करवाया था।

आपका स्वभाव सरल तथा शान्त था। अध्यापन में दण्डप्रयोग आप शायद ही कभी करते। जिन छात्रों ने आप से संस्कृत का आरंभ किया था वे सब आगे जा कर अच्छे विद्वान् बने। आपका अल्पकालिक अध्यापन भी विद्यार्थियों के लिये हितावह रहा।

हिन्दी के अध्यापकों में चिड़ूण के छीतरमलजी शर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। आपने दो वर्ष तक हिन्दी-अध्यापन का कार्य किया। विद्यालय के अपने नये स्थान मोतीडूगरी पर आने के बाद आप अध्यापक नियुक्त हुये थे। आप श्रमशील अध्यापक थे। अपने समय की समुचित पाबन्दी के साथ तत्परता से काम करने की आप मे चाह थी। आपका कार्यकाल भी उपादेय रहा।

छात्रों मे जब सस्कृत पढने वाले छात्रो की पर्याप्त सख्या हो गई तथा अनेको छात्र प्रथमा तथा मध्यमा उत्तीर्ण हो चुके थे तब पूज्य स्वर्गीय वैद्यजी महाराजने मण्डलीश्वर बालूरामजीके गुरुभाई पण्डितप्रवर श्री स्वामी हरिनन्दन जी से कहा कि वे भी छात्रो को शिक्षा प्रदान करें। स्वामी हरिनन्दनजी सस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे। आपने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, न्याय तथा आयुर्वेद में आचार्य परीक्षायें पास की थीं। आपकी योग्यता आपकी विद्वत्ता के अनुरूप थी। सस्कृत मे आप गद्य पद्य रचना अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूपसे किया करते थे। स्वर्गीय वैद्य जी महाराज की इच्छा थी कि विद्यालय मे अध्ययन करने वाले छात्र सस्कृतके व्याकरण, न्याय, वेदान्त विषयोंके योग्य विद्वान् बनें। हरिनदनजी न्याय, वेदात पढाने के लिये ही चुने गये थे। आप स्वामीजी महाराज के बाग मे ही निवास करते थे। अध्यापन के लिये विद्यालय पधारते थे। करीब ६ मास तक आपने अध्यापन का कार्य चलाया। आपके विचार में आपसे पढने की स्थिति मे अभी कुछ विलम्ब था। आपका ध्यान था कि छात्र शास्त्री तक के ग्रन्थों का अध्ययन कर लें तो फिर उन्हे न्याय तथा वेदान्त के प्रामाणिक ग्रन्थों के अध्ययन करने की उचित क्षमता प्राप्त हो। विद्यालय के छात्र अभी मध्यमा तक ही पहुँचे थे, अत आप पुन आने के विचार से ६ मास तक अध्यापन करा कर चले गये थे। दैवयोग से आपका पुन आगमन नहीं हो सका और आपसे जो लाभ छात्रों को मिलना था उसका फिर अवसर नहीं आ सका।

विद्यालय के पाच वर्ष व्यतीत होने पर जबकि कुछ छात्र प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके तब सस्कृत अध्यापन के लिए दो अध्यापकों की और आवश्यकता हुई। उस समय बिहार के एक विद्वान् जिनका नाम ठीक स्मरण नहीं है, शायद गणेश झा हो, विद्यालय में कुछ दिन के लिए अध्यापनार्थ नियुक्त हुए थे। आप पाच विषयो के तीर्थ थे। आप मध्यमा के छात्रों के अध्यापनार्थ आये



पं० श्री सिद्धगोपालजी शास्त्री (पृष्ठ १४६)

थे परन्तु तीन चार मास के बाद ही चले गये क्योंकि आपको यह देश अनुकूल नहीं पड़ा।

स्वामीजी महाराज की इच्छा थी कि छात्रों को संस्कृत के साथ साथ कुछ कुछ अंग्रेजी भी पढ़ाई जा सके तो उत्तम रहे। इसके लिए सर्वप्रथम यशोधरजी झा बी. ए. नियुक्त हुए। आप मिथिला के रहने वाले थे। आपने करीब तीन वर्ष विद्यालय में छात्रों को अंग्रेजी का अभ्यास करवाया। आप मिलनसार तथा सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। अध्ययन का कार्य भी आप पूरी तत्परता से सम्पन्न करते थे। आपकी नियुक्ति महाराज संस्कृत कालेज में हो जाने से आप वहाँ चले गये। आपके पश्चात् आपके स्थान पर अंग्रेजी–अध्यापन के लिये पर्याप्त परिश्रम किया। आपके अध्यापन-काल में कई छात्रों ने अंग्रेजी मिडिल परीक्षा पास की। आपने कई छात्रों को मैट्रिक की भी तैयारी करवाई। आपका पढ़ाने का तरीका सहज तथा सुबोध था। आप जब तक रहे, अंग्रेजी का क्रम अनवरत चला। आपके छोड़ देने पर यह क्रम पुनः भंग होगया जिसकी पूर्ति स्थायी रूपसे हुई ही नहीं। बीच बीच में अंग्रेजी पढ़ाने की कई बार व्यवस्था बैठाई गई पर वह स्थायी रूप से दीर्घ काल तक न चल सकी। आपके पश्चात् और भी दो तीन सज्जन अंग्रेजी अध्यापन के लिये आये पर जैसा कि ऊपर ज्ञात किया जा चुका है, अधिक समय तक स्थायी न रहने से कार्य का अभीष्ट परिणाम न निकला।

अब उन महानुभावों का परिचय उपस्थित किया जाता है जिनने दीर्घकाल तक अध्यापन कार्य किया है तथा जिनके सम्पर्क से छात्रों को तद्विषयक ज्ञान की समीचीन प्राप्ति हुई है।

विद्यालय के प्रारम्भ में दूसरे वर्ष जब छात्र हिन्दी का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर चुके तो उन्हें संस्कृत-अध्यापन की आवश्यकता हुई। इसके लिये लक्ष्मीनारायणजी ज्यौतिषी रक्खे गये थे। पर वे ज्यौतिष का काम करने के कारण स्थायी रूप से अध्यापन का कार्य नहीं कर सकते थे। अतः महामहोपाध्याय पं० गिरिधरजी शर्मा की सम्मति से उनके पास ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार में शिक्षा पाये हुए पंडित सिद्धगोपालजी शास्त्री अवस्थी बुलाये गये। संस्कृत का

अध्यापन आपमे ही अकुंरित व पल्लवित हुआ। आपकी अध्यापनशैली में नवीनता थी। छात्र स्वय किस तरह अपने विषय को हृदयगम कर सके इसीपर आपका अधिक ध्यान रहता था। आपने लघुकौमुदीका अध्यापन कराया। आप सूत्र पर ही उसके अनुबन्धी विषय को अवगत करा दिया करते थे। प्रत्येक प्रयोग को समुचित रूपमे बताये विना आप आगे अध्यापन नहीं कराते थे।

आप छात्रों की देखरेख भी बडी सजगता से करते थे। आपके समय में आपकी कक्षा के छात्र अपने अध्ययनाध्यापन मे भिन्न किसी क्रिया मे सलग्न नहीं हो सकते थे। आरम्भ के छात्रों ने आप के ही अध्यापन मे प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की।

मध्यमा के प्रथम खण्ड तक का अध्यापन भी आप ने ही करवाया। आप विद्यालय मे छ वर्ष तक सस्कृताध्यापक का कार्य करते रहे। आपने जो जो विषय पढाया, उसमे छात्र अच्छी योग्यता प्राप्त कर सके। आप व्याकरण, साहित्य तथा अनुवाद का कार्य बहुत ही उत्तमता से सम्पन्न करवाते थे। विद्यालय की उन्नति आपका सर्वोपरि लक्ष्य था। आप विद्यालय के दायरे मे ही निवास करते थे अत अध्यापन के नियत काल के पश्चात् भी आप छात्रों को सभालते रहते थे।

आपके कार्यकाल मे छात्रो ने परीक्षा में तथा योग्यता में अच्छी सफलता प्राप्त की। आप के ही द्वारा शिक्षा का क्रम सुव्यवस्थित बना। आप अध्यापक तो थे ही, विद्यालय के सचालन कार्य मे भी पूरा भाग लेते थे। इस तरह आपने जितने दिन सस्था का कार्य किया वह आत्मीय भावना से किया। आप केवल समय मात्र के ही अध्यापक नहीं थे। आप वास्तविक अध्यापक थे जिनका लक्ष्य समय के साथ न बधकर ज्ञान के साथ बधा रहता है। सबसे पहिले आप ही अध्यापक हैं जिनसे सस्था को आधे युग तक अनवरत लाभ पहुँचा। आप सस्कृत के तो विद्वान थे ही पर अग्रेजी के भी सम्यग् ज्ञाता थे। शिक्षणक्रम मे किस रीति का उपयोग करना चाहिये तदर्थ आप प्राचीन तथा नवीन दोनो प्रणालियों की अच्छाइयों के पोषक थे। आपने अपनी अध्यापन विधि मे दोनो ही प्रणालियो का उपयोग किया था।

आपके कार्यारम्भ के कुछ समय के पश्चात् पिछली कक्षाओं को संस्कृताध्यापन के लिये बून्दी के पण्डित गजानन्दजी नागर की नियुक्ति हुई थी। आप संस्कृत की सहायक शिक्षा, प्रारम्भिक अंग्रेजी तथा आगे की कक्षाओं को गणित का अध्यापन कराया करते थे। आप बून्दीके उच्च प्रतिष्ठित परिवार के व्यक्ति थे। कारणवश ही आपको अध्यापक होने का अवसर था। आप स्वभाव से परम शान्त तथा कोमल प्रकृति के सज्जन थे। अपने काम को यथानियम निर्वाहित करना आपका लक्ष्य रहता था। अपने नियत कार्य से भिन्न अन्य किसी भी व्यावर्तक कामों में आप कभी भागीदार नहीं होते थे। आपने भी संस्था को आधे युग तक अपनी सेवायें प्रदान की थीं। आपके कार्य से भी संस्था को पर्याप्त सहायता मिली।

हिन्दी के क्षेत्र में लम्बे समय तक कार्य करनेवाले दो महानुभाव हैं। पंडित गौरीलालजी शर्मा तथा गोविन्दरावजी तैलंग।

पंडित हीरालालजी के नवलगढ़ चले जाने पर पंडित गौरीलालजी ने कार्य सम्भाला। पंडितजी बहुत समय से अध्यापन का कार्य करते आ रहे थे। हिन्दी तथा गणित के विषय आप बहुत ही उत्तम रीति से पढ़ाया करते थे। आप अपने सुदीर्घ शरीर के अनुरूप ही सुदीर्घ बुद्धि व मेधा भी रखते थे। आपकी अध्यापनशैली इतनी सहल थी कि छात्र को अध्ययन में किसी प्रकार का बोझ प्रतीत नहीं होता था। पंडितजी के पास पढ़ने में उसकी मनोवृत्ति इधर उधर न जाकर पढ़ने में ही लगी रहती थी। बिना निरोध तथा बिना दण्ड के छात्रों को अपना विषय तैयार करवा देना सभी अध्यापकों का कार्य नहीं है। अध्यापकों में निग्रह तथा दण्डविधि का आश्रय अधिकांश अध्यापक लिया करते हैं। प्रारम्भिक कक्षाओं में प्रायः ही अध्यापक इसी तरह के होते हैं जो दमन तथा दण्ड से अध्यापन का काम करते हैं, पर पंडितजी इसके अपवाद थे। आपने एक युग तक संस्था की उत्तम सेवा की। पिताकी तरह छात्रोंका संरक्षण कर उन्हें ज्ञान प्रदान करने में आपका उचित महत्व था जो सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

पंडितजी गौरीलालजी के सहयोगी तथा पश्चात् उनके उत्तराधिकारी पंडित गोविन्दरावजी तैलंग भी हिन्दी अध्यापकों में दीर्घ समय तक अपना स्थान रखने वाले हैं। आप राजस्थान के प्रसिद्ध कवि पद्माकर के वंशज हैं। आप

यहाँ के राजकवि हैं। आप हिन्दी साहित्य के ज्ञाता तथा कवि भी हैं। आपने भी विद्यालय के छात्रों को अपने अनुभवपूर्ण ज्ञान से बहुत समय तक लाभ पहुँचाया। हिन्दी शिक्षकों में आपका समय सबसे अधिक रहा है। आपने विद्यालय का कार्य सर्वदा आत्मीय बुद्धि से सम्पन्न किया। आप जब तक कार्यक्षम रहे अपने काम को सावधानी से पूरा करते रहे। आपकी नेत्रज्योति कम होने लग गई थी तब कार्य का परित्याग करना पड़ा। आपसे सैंकड़ों छात्रों ने हिन्दी तथा गणित की शिक्षा पाई है। आपकी श्रमसाधना का मूल्य महान् है। विद्यालय परिवार तथा छात्रगण आपके ऋणी हैं। आपके अवकाश प्राप्त करने पर आपके सुपुत्र कमलाकरजी ने भी आपके स्थान पर कुछ दिनों तक कार्य किया पर वे अपनी ज्ञानवृद्धि के विचार से इस काम को अधिक समय तक नहीं अपना सके।

संस्कृताध्यापनमें सर्वोपरि स्थान जिनका है वे हैं, चिरस्मरणीय पंडित श्री रामचन्द्रजी शास्त्री। आप मेरठ जिले में भटियाना कस्बे के निवासी थे। आपका स्थान मेरठमें भी होने के कारण आप मेरठ में ही निवास किया करते थे। पंडित सिद्धगोपालजी के कार्य परित्याग के बाद पं० श्री रामधारीजी शास्त्री डूडलोद की अनुकम्पा से आपकी विद्यालय में नियुक्ति हुई। आप प्रसिद्ध वैयाकरण माननीय पंडितप्रवर परमानन्दजी शास्त्री के प्रमुख शिष्यों में से थे। उन्हीं से आपने व्याकरण का सम्यक् अध्ययन किया था। साहित्य, न्याय, दर्शन, वेदान्त, मीमांसा के विषयों में भी आपकी पूरी पूरी गति थी। आप कुछ समय तक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार में अध्यापन कार्य करा चुके थे। आप परीक्षा तो शास्त्री ही उत्तीर्ण थे। क्योंकि पहले के समय में यही परीक्षा संस्कृत में सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई थी। पर आपकी योग्यता अनेकों आचार्यों से उत्तम थी। आप जिस किसी विषय का अध्यापन कराते पहिले उस विषय को स्वयं देख लिया करते थे। वे समय पर पुस्तक खोलकर पढाने की बजाय पहिले अपनी तैयारी कर पढाने को उत्तम मानते थे। वे रेल्वे के हाईस्कूल में कुछ दिन संस्कृत - अध्यापक के स्थान पर तथा बुलन्दशहर की हाईस्कूल में भी संस्कृत - अध्यापक के स्थान पर काम कर चुके थे। आपका ध्येय था कि पढाने का क्रम ऐसा अपनाना चाहिये जिससे छात्र उस विषय को कुछ दिन के बाद अपने आप अधिकांशतः समझने



श्रीमान् पं० रामचन्द्रजी शास्त्री, मेरठ
(पृष्ठ १५२)



श्री गोपालसिंहजी स्वामी, व्यायाम मास्टर
(पृष्ठ ११७)



लगे। आपका अध्यापनक्रम इसी रूप का था। आपने मध्यमा के दूसरे खंड से छात्रों को पढ़ाना आरंभ कर व्याकरण, साहित्य तथा वेदान्त के आचार्य तक अध्यापन करवाया। आपका ही अध्यापनकाल सबसे अधिक रहा। आपने सोलह वर्ष तक विद्यालय के छात्रों के अनवरत ज्ञान-सम्पन्न करने में अपनी शक्ति का उपयोग किया। विद्यालय का नियत समय तो ११ से ४ तक का है पर आप प्रातः, मध्यान्ह तथा सायं भी छात्रों को पढ़ाते रहते थे।

आपको मानो पढ़ाने का ही व्यसन था। कठिन से कठिन ग्रन्थ—जोकि शास्त्री आचार्य की परीक्षाओं में हैं, आप इस तरह पढ़ाया करते थे जिससे छात्रों को विषय की दुरूहता प्रतीत नहीं होती थी। आपके अध्यापनकाल में ही छात्रों की योग्यता का प्रकाश फैला। आपके पास जितने छात्रोंने अध्ययन किया वे सभी अपने अपने विषयके अच्छे योग्य तथा जानकार हैं। आपके शिक्षण-काल में ही अनेकों छात्र आचार्य तथा शास्त्री परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए।

आप संस्थाके प्रधानाध्यापक थे। पर स्वभाव से अत्यन्त सरल होने के कारण विद्यालयके सभी अध्यापकों के साथ आपका व्यवहार समानता का था। कभी भी किसी अध्यापकसे आपका किंचित् भी कथनोपकथन का या मनोमालिन्य का मौका नहीं आया। आप पढ़ाने के बारे में भी अत्यंत उदार विचार रखते थे। समय पड़ने पर आप प्रारंभ की कक्षाओं का भी अध्यापन कराने में रंच भी विचार नहीं करते थे। आपने प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य सभी कक्षाओं को पढ़ाया था। आप अधिक समय तक विद्यालय में ही रहते थे, जब कि आपका रहने का स्थान अन्यत्र था। आप नित्यकृत्य के सिवाय और सारा समय विद्यालय में ही लगाया करते थे। आपकी संस्कृत में गद्य पद्य उभयात्मक रचनायें उच्च कोटि की होती थीं। संस्कृत-भाषण में आपकी गति अति परिमार्जित थी। भाषण की शैली आपकी परम मनोरम, युक्तियुक्त तथा तर्कसम्पन्न थी। आप धार्मिक विचार में सनातन धर्म के दृढ़ अनुयायी थे। आपके इस बारे में पहिले शास्त्रार्थ भी हो चुके थे। आपका रहन-सहन तथा आचार आदर्श था। भोजन प्रायः अपने हाथ से ही बनाया करते थे। नल के जल का उपयोग नहीं करते थे। यात्रा में आपका भोजनादि कार्य प्रायः वन्द ही रहता था। विना अपना दैनिक नित्यकर्म किये आप अन्नपान का परित्याग रखते थे।

आपके धार्मिक विचार स्वतन्त्र और सुदृढ थे। पर उन विचारों के कारण सामान्य व्यावहारिक जीवन मे किसी प्रकार की बाधा नहीं आती थी। आपने विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद को अलकृत कर जो हितसाधन इस सस्थाका किया तदर्थ सस्था आपकी चिरकृतज्ञ रहेगी। आपका असामयिक स्वर्गारोहण ही सस्था से वियोग का कारण हुआ। आपके निधन से सस्था की महती क्षति हुई है। उसके निवारण का कोई साधन नहीं है।

स्वामी बालकरामजी व्याकरणाचार्य व आयुर्वेदाचार्य का सबध भी सस्था के साथ बहुत पुराना है। आप दादूपन्थी सम्प्रदाय में प्रसिद्ध पडित श्री निश्चलदासजी महाराज के स्थान से सम्बन्धित हैं। आपका गुरुद्वारा देहली में है। स्वामी विचारदास जी का स्थान प्रसिद्ध स्थानों मे से है। वहाँ पर इस समय आपके गुरुभाई महन्त रामदास जी विचारदास जी महाराज के उत्तराधिकारी के रूप में हैं। आपने सन् २४ में सस्था मे पदार्पण किया था, तब से अब तक आप सस्था की सेवा मे सलग्न हैं। आप केवल वैयाकरण ही नहीं हैं किंतु दर्शन, वेदान्त व आयुर्वेद के भी ज्ञाता हैं। आपने प्रथमा से लेकर आचार्यपर्यन्त छात्रों का अध्यापनकार्य किया है। स्वामी सुरजनदास जी के प्रधानाध्यापकपद परित्याग के पश्चात् आजकल आप ही विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। आपने आरभ से बहुत लम्बे समय तक अवैतनिक रूप मे ही कार्य किया था। इधर कुछ वर्षों से पारिश्रमिक लेते हैं, वह भी अपनी योग्यता को देखते हुए बहुत न्यून है। पर सस्था की स्थिति के विचार से आप अब भी अल्प पारिश्रमिक लेकर सस्था की सेवा में सलग्न हैं।

आपने अध्यापन का ही कार्य नहीं किया है अपितु प्रबन्ध-कार्य में भी करीब बीस वर्ष तक मुझे बहुत सहायता पहुँचाई है। आपने साधुसमाज तथा जनहित की भावना से ही इस कार्य को अपनारक्खा है। अन्यथा आप अपना चिकित्साकार्य करके भी स्वतन्त्र उपार्जन कर सकते हैं। साधु होने के नाते आपकी साधुता तो है ही, किन्तु सादगीपन, सरलता तथा अपने काम से काम रखना भी आपकी प्रकृति ही है। आपने इतने दीर्घ समय तक अपने ज्ञान, श्रम तथा विचारों का सस्था के हित मे उपयोग कर सस्था की जो सहायता व सेवा की है तदर्थ सस्था के शुभेच्छु आपके अत्यन्त आभारी हैं।

आशा है आप आगे भी इसी तरह संस्था को अपने साधु संयोग से सहायता पहुँचाने का कार्य बराबर जारी रखेंगे।

संस्था के शिक्षकवर्ग में पण्डित दयाराम जी शास्त्री साहित्याचार्य का भी विशेष स्थान है। आप करनाल जिला, संगरोली के निवासी हैं। जयपुर राज्य में शेखावाटी प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् विद्याभूषण माननीय स्वर्गीय पण्डित श्री रामधारी जी शास्त्री के आप भ्रातृज हैं। आपने उन्हीं से शिक्षा पाई थी। आप व्याकरण के शास्त्री तथा साहित्य के आचार्य हैं। विद्यालय में आने से पहिले आप हसामपुर में अध्यापन का कार्य करते थे। सन् २८ में आपने विद्यालय में अध्यापकपद का भार ग्रहण किया था। बाईस वर्ष हो गये हैं आप उसी प्रेम, श्रद्धा तथा उत्साह से अध्यापनकार्य में संलग्न हैं।

इतने लम्बे समय में कई बार ऐसे भी अवसर आए कि आप आर्थिक लाभ की दृष्टि से स्थानान्तर में जा सकते थे, पर आपने संस्था को अपनी ही संस्था समझ लिया है। आप निर्बाध रूप से व सुस्थिर गति से अपने काम का संचालन करते हैं। व्याकरण, साहित्य दोनों विषयों की शिक्षा बहुत उत्तम रूप से प्रदान करते हैं। आपकी पद्यरचना भी प्रशंसनीय होती है। आप प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् हैं। विद्यालय आप जैसे अध्यापकों के बल पर ही अपनी इस प्रगति को प्राप्त हुआ है। आपका शिक्षाक्रम पण्डितप्रवर श्री रामचन्द्रजी महाराज की शैली पर है। संस्था आप जैसे विद्वान् के सहयोग से लाभान्वित है। जिस तरह आपने अब तक संस्था की शिक्षा में तत्परता से हाथ बंटाया है, भविष्य में भी आप उसी तरह संस्था के शिक्षासम्बन्धी कार्यों में अपने सहयोग से सहायता पहुँचाते रहेंगे, ऐसी आशा है।

स्वामी सुरजनदास जी व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, सांख्ययोग आचार्य, एम. ए. संस्था के अन्यतम शिक्षक व योग्यतम स्नातक हैं। उनका परिचय इसी वर्ग में देना आवश्यक है। क्योंकि आपने भी संस्था में अध्यापन का कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण ढंग से किया है। आप अभिमान करने लायक विद्यालय के प्रथम स्नातक हैं जिनने ज्ञानार्जन में अद्भुत क्षमता व्यक्त की है। प्रथमा से आचार्य पर्यन्त सभी विषयों में तथा मैट्रिक से एम. ए. तक की अंग्रेजी की परीक्षाओं में

आप प्रथम श्रेणी मे ही उत्तीर्ण हुए हैं। आपने एम ए मे राजपूताना यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम रह कर Chancellor's स्वर्णपदक प्राप्त किया है, एव साहित्याचार्य में सर्वप्रथम आकर महाराणा उदयपुर स्वर्णपदक प्राप्त किया।

आपने महामना, राज्यपण्डित, विद्वन्मूर्धन्य, महामहोपदेशक पडित श्री मधुसूदनजी ओझा के सानिध्य मे रह वैदिक साहित्यका भी अच्छा अध्ययन किया है। सस्कृत साहित्य की विद्वता का अनुमान तो आपने जिन परीक्षाओं को पास किया है उसीसे हो जाता है। इतना ज्ञान प्राप्त करके भी स्वभावमें इतनी सरलता तथा निष्कपटता है कि सहसा मिलनेवाला व्यक्ति इनके ज्ञानभण्डारकी इस स्थिति को इनके बाहरी रूपसे अनुमानमें भी नहीं ला सकता। इनने मध्यमोत्तीर्ण होनेके साथ ही अध्यापन के कार्य में भाग लेना प्रारभ कर दिया था। सस्था के शिक्षक-मूर्धन्य पडित रामचन्द्रजी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् आपही सस्था के अध्यक्षपदका भार वहन करते थे। आपने अपने कार्य को जिस उत्तरदायित्वपूर्ण भावना से निर्वाहित किया वह विद्यालय के सभी प्रेमी सम्यक्तया जानते हैं।

आरभ से अब तक आपका यह क्रम अबाध गति से सचालित है। आप भी अपने शिक्षागुरु पडित रामचन्द्रजी की शैली से ही अध्यापनकार्य करते हैं। न केवल शिक्षा के कार्य मे ही भागीदार हैं अपितु सस्था के कार्यसचालन का भार भी अधिकाशत आपके ही कन्धों पर है। कार्यकारिणी के मत्री बहुत समय से आप ही हैं। सस्था के कार्यों की देख रेख मे भी आप पर्याप्त भाग लेते हैं। आपने राजकीय सेवा मे प्रवेश करने पर प्रमुख अध्यापक का स्थान नियमानुसार रिक्त कर दिया। अब आप किसी नियत पद पर नहीं हैं तो भी विद्यालय के सभी कार्यों में आपका सहयोग यथावत् प्राप्त है। आपके लिए विद्यालय की ओर से कृतज्ञता प्रकाशित न भी की जाय तो भी विद्यालय अपने ही क्षेत्र से इस स्थिति तक सफलता प्राप्त करने के आपके प्रयास पर गर्वानुभव तो करता ही है। इस तरह के योग्य व्यक्तियों का विद्यालय को कितना सहयोग अपेक्षित है इसको हम सभी अच्छी तरह समझते हैं। आशा है आपका सहयोग विद्यालय की समुन्नति मे सर्वदा सहायक रहेगा।

अध्यापन के कार्य मे मैं भी सम्मिलित हूँ। स्वामी केशवदासजी शास्त्री, स्वामी बलरामजी न्यायाचार्य, प० कल्याणदत्तजी शर्मा शास्त्री, आचार्य आदि ने

भी अध्यापनकार्य किया है तथा कुछ अब भी कर रहे हैं। पर ये प्रबन्धसम्बन्धी कार्य भी करते हैं। अतः उनका परिचय कार्यकर्ताओं में दिया जायगा।

एक संगीत शिक्षक भी तीन वर्ष से विद्यालय में सहयोग दे रहे हैं जिनका नाम कालूरामजी शर्मा है। आप जयपुर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ तथा सितार के आचार्य स्व० श्रीकिशन महाराज के शिष्य हैं। प्रारम्भिक स्थिति के छात्रों के लिए आपकी उपादेयता है। अध्यापनकार्य में कुछ और भी व्यक्तियों का सहयोग मिला है उन सब के प्रति हमारी कृतज्ञता है।

— कार्यकर्ता —

विद्यालय के प्रारम्भ करने के समय सर्वप्रथम एक प्रबन्धक की आवश्यकता थी, जिससे छात्रावास का कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न हो सके। डीडवाना के महन्त श्री चैनसुखदासजी ने नरेना के मेले से ही विद्यालय की स्थापनासम्बन्धी चर्चा में पर्याप्त भाग लिया था। उन्हीं से प्रार्थना की गई और उनने प्रार्थना अविलम्ब स्वीकार करली। वे अधिक शिक्षा पाये हुए नहीं थे फिर भी व्यावहारिक कार्यों में निपुण थे। सबसे अधिक महत्त्व की बात थी– उनका इस कार्य में अनुराग। साधुसम्प्रदाय में शिक्षा का प्रचार बढ़े, यह उनकी उत्कट इच्छा थी। यह कार्य इसी ध्येय की पूर्ति का साधन है अतः उनका अनुराग इस कार्य में स्वाभाविक था।

ये साधुस्वभाव, सादगीपसन्द तथा श्रमशील व्यक्ति थे। आलस्य उनमें नाम का भी नहीं था। काम की बात उनके सामने आनी चाहिये फिर उनमें विलम्ब का काम नहीं था। कैसे भी श्रमसाध्य कार्य के लिये तुरन्त प्रवृत्त हो जाते थे। विद्यालय के लिये जो स्थान स्वर्गीय स्वामी केशवदासजी ने प्रदान किया था वह बहुत समय से उपयोग में न आने के कारण बहुत अनवस्थित था। आपने अपने ही हाथों से उसकी सफाई का काम प्रारम्भ कर दिया और उसको उपयोगी बनाकर ही विश्राम लिया।

शिक्षा से भिन्न छात्रों की देखरेख तथा छात्रों के भोजनाच्छादनादि का सभी कार्य आप सम्पादन किया करते थे। आपने साधुओं में विद्यालय के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने के लिये भी पर्याप्त प्रयास किया। शिक्षा से कितना लाभ

है इस महत्त्व को भी आप मिलनेवाले साधुओं को बराबर समझाते रहते थे। साधुओं में शिक्षासम्बन्धी जो झिझक थी उसके परिहार के लिये भी आपने पर्याप्त प्रयत्न किया। आप विद्यालय के लिये सहायताप्राप्ति का कार्य भी अति तत्परता से किया करते थे। विभिन्न स्थानों में जा जाकर आपने विद्यालय के लिये सहायता व सहयोग प्राप्त करने की पर्याप्त पूर्ति की।

विद्यालय के छात्रावास के लिये व्यवहार में आनेवाली वस्तुसामग्री का संग्रह भी आप इसी नीति से करते थे कि जिससे विद्यालय अधिक से अधिक लाभ में रहे। आपने आधे युग तक इसी लगन से काम किया। सार्वजनिक काम में प्रवृत्त होनेवालों की समालोचना तो स्वाभाविक है। दूर रहने वाले व्यक्ति जो इनके स्वभाव, श्रम व अनुराग से परिचित नहीं थे उनने इनपर कुछ आक्षेप लगाने की चर्चा प्रारम्भ की। इनका कार्य तो बेलाग था। अज्ञ लोगों की बेसमझी की चर्चा ने इनका मन खट्टा कर दिया, और इनने इच्छा न होते हुए भी विद्यालय की सेवा का कार्य छोड देने का निश्चय करलिया। इनके कार्यकाल में मैं भी इनके सहयोगी का काम करने लग गया था। मैंने समझाया भी बहुत, पर फतेहपुर वाले मकान के बेचे जाने के प्रश्न पर कुछ व्यक्तियों ने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया कि आपकी कोमल भावना को उससे गहरा आघात पहुंचा, जिसमे ये सम्प्रदाय के सार्वजनिक काम में अधिक भाग लेने से विरक्त होगये।

आपने विद्यालय के काम की जड तो मजबूत कर ही दी थी फिर भी संस्था को आपके निकट सम्पर्क से वंचित होना पडा। सभी जानते हैं कि किसी भी कार्य में जो बाधाएं आरंभ में आती हैं वे पीछे नहीं रहतीं। आपने संस्था के आरंभिक कठिन समय में अपना जैसा तत्परतामय सहयोग प्रदान किया तदर्थ संस्था पर आपकी कृपा का जो अत्यन्त ऋणभार है उससे मुक्त होना शक्य नहीं है। आपने कार्यपरित्याग के पश्चात् भी संस्था के कामों में समय पडने पर बराबर सहयोग प्रदान किया है तथा आगे भी करते रहेंगे, ऐसी आशा है।

संस्था के प्रारंभिक काल में महन्त चैनसुखजी के साथ साथ ही स्वामी श्री कृपारामजी भिवानी निवासी ने भी प्रबन्धसम्बन्धी कार्यों में भाग बटाया।

आप उस समय जयपुर में पूज्य स्वर्गीय स्वामीजी महाराज के पास महाराजा संस्कृत कालेज के आयुर्वेदविभाग की शास्त्री कक्षा में अध्ययन करते थे । आप उत्साही तथा दृढ़ विचार के महानुभाव हैं । जिस काम की ओर आपकी प्रवृत्ति हो जाती है उस काम के लिये आपका प्रयास फिर कभी शिथिल नहीं होता। आप दादूपन्थी समाज में इस समय गणनीय व्यक्तियों में हैं । भिवानी में आप वैद्यकका व्यवसाय करते हैं । नगर में आपकी प्रतिष्ठा समादरणीय है । दादूपन्थी समाज के सभी सामाजिक कार्यों में आप सहर्ष तन, मन धन से योगदान दिया करते हैं ।

विद्यालय के आरंभकाल में भी आपने अपने अध्ययनकाल की परवाह न करते हुए संस्था की सेवा में पूरा-२ योग दिया । तीन वर्ष तक आप प्रबन्ध-सम्बन्धी तथा देख रेख के कार्यों में पूरे उत्साह से भाग लेते रहे । भिवानी में अपने गुरुजी के अत्यन्त अस्वस्थ होने के कारण आपको भिवानी जाना पड़ा । दैवगति से गुरुजी का स्वर्गारोहण हो जाने के कारण फिर आपको भिवानी ही रुक जाना पड़ा । विवशतावश संस्था से आपका सीधा सम्बन्ध न रह सका, पर संस्था के हितसाधन में आप उसी तरह अब भी सहयोग देते रहते हैं । संस्था का जो भी कार्य हो, बिना ननु नचके उसमें सोत्साह सहयोग देने को सन्नद्ध रहते हैं। आप दूर होते हुए भी संस्था के समीप ही हैं ।

उपर्युक्त दोनों महानुभावों की अनुपस्थिति के पश्चात् जयपुरनिवासी रघुनाथदासजी ने विद्यालय के प्रबन्धसम्बन्धी कामों में योग देना आरम्भ किया । आप परिपक्व आयु तथा विचार के व्यक्ति हैं । व्यावहारिक कामों में आप पूरे दक्ष हैं । व्यवहारसम्बन्धी सभी काम आप आसानी से कर सकते हैं। आपने सामान्य शिक्षा भी पाई है । आपने विद्यालय में ही निवास कर अपने से साध्य कामों में उचित भाग लिया । दश बारह वर्ष तक आपने अपनी निःशुल्क सेवा से संस्था की सहायता की । आपके सहयोग से मुख्य प्रबन्धक के काम में बहुत मदद मिलती रहती थी । बाहरी तथा शहर के सभी काम आप द्वारा सम्पन्न हो जाते थे । विद्यालय के नवीन स्थान में आजाने के बाद शारीरिक शक्ति की न्यूनता के कारण आपने कार्य से अवकाश ग्रहण कर लिया । जितने समय आपने कार्य किया वह समादरणीय है ।

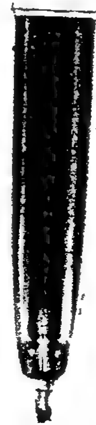
जमात उदयपुर (शेखावाटी) के स्वामी रामभजनजी ने भी अपना सहयोग संस्था को कुछ समय तक प्रदान किया था। संस्था का वह शैशवकाल था। रामभजनजी ने अपने समय में अपनी शक्ति का उपयोग, जितना भी संस्था के हित में कर सकते थे, किया। उनकी विचारधाराए देशसेवा की ओर तीव्र गति से आकर्षित हो रही थीं। शिक्षा का क्षेत्र भी देशसेवा के ही कामों में आता है इसीसे वे इस ओर अग्रसर हुए थे। वे छात्रों में अपनी चर्चाओं द्वारा तथा कथनोपकथनसे यह भावना प्रविष्ट करना चाहते थे कि वे शिक्षित होकर अपने देश का भी उचित ध्यान रक्खेंगे। छात्रावस्था में अपने आचरण को विशुद्ध रख छात्र अपने अध्ययनकार्य में दृढता से लगे रहें यही आकांक्षा छात्रों में जागृत की जाय, यह उनका विशेष लक्ष्य था। वे अपने लक्ष्य तथा विचार के अनुसार संस्था की सेवा में संलग्न थे। देशमें स्वतन्त्रताप्राप्ति का आन्दोलन विवर्द्धित हो रहा था, उसका प्रभाव उनके भावुक हृदय पर भी पडे विना नहीं रहा। देश के करोडों गरीबों का कष्ट शासन की उपेक्षा से जिस असह्य परिस्थिति को पहुँचता जा रहा था वह स्थिति उन्हें बहुत ही खटकती थी। उनकी देशसेवा की बलवती भावना ने उन्हें विद्यालय छोडने की विशेष प्रेरणा दी। आगे उनने संस्था की सेवा से देशसेवा को अधिक महत्त्वप्रद मान उसी क्षेत्र में अपने को लगा देने का निश्चय किया।

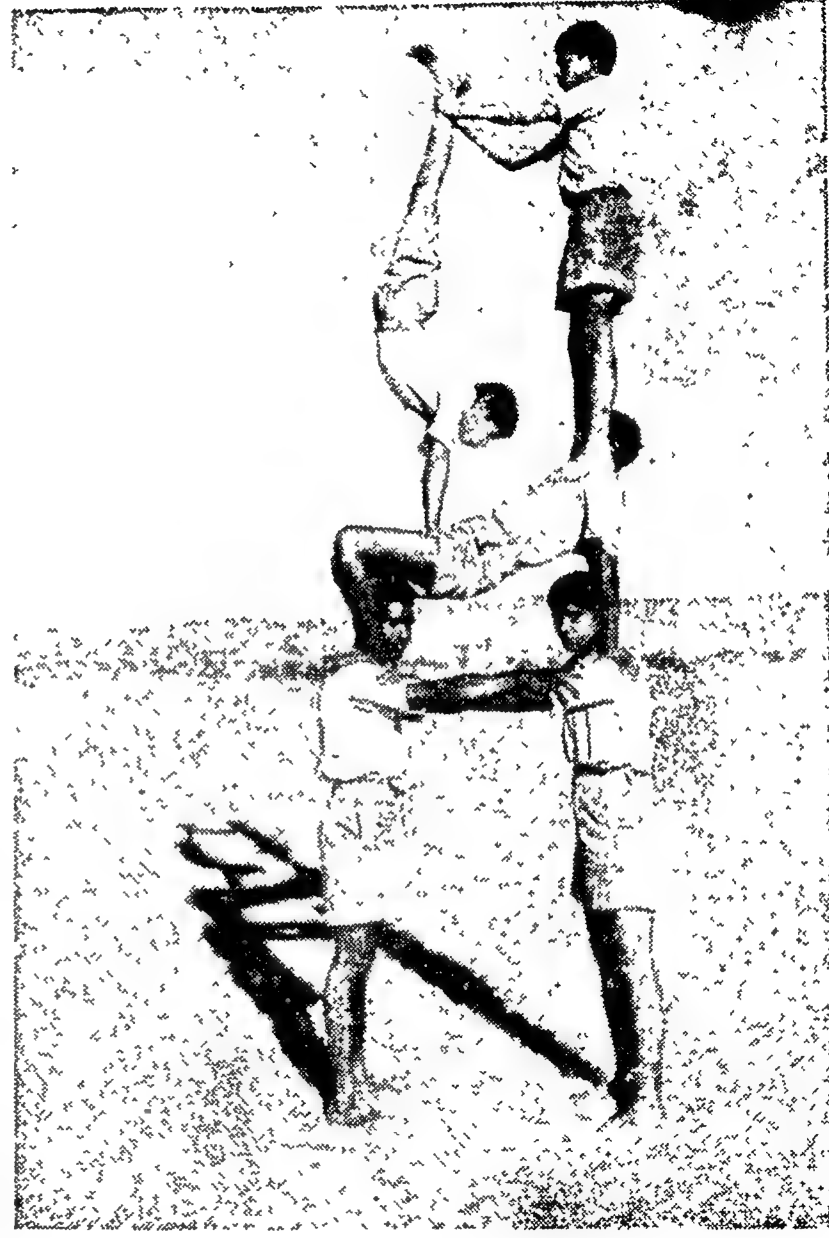
संस्था उनकी सेवा से वंचित हुई पर जितने दिन उन्होंने संस्था को अपना सहयोग दिया वह असाधारण था। उसमें कुछ विशेषता थी और उससे संस्था को भी विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई।

रतनगढ निवासी पण्डित चेतनानन्दजी की प्रेरणा से ब्रह्मचारीजी का आगमन विद्यालय में हुआ। आप पञ्जाब के निवासी थे। इण्टर तक आपने अंग्रेजी का अध्ययन किया था। आपकी विचारधारा कुछ निवृत्ति की ओर विशेष होने से आप घर का परित्याग कर इस खोज में थे कि स्व-विचारानुसार लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का कोई रास्ता मिले। विद्यालय शिक्षासंस्था है। पठनपाठन से भिन्न वहाँ और प्रवृत्तिमय कार्य न होने से वे शायद विद्यालय में आये। उनने भी रामभजनजी के समकाल में ही विद्यालय के प्रबन्धसंबंधी कामों में अपना सहयोग प्रदान किया। शिक्षित होने के नाते आप कुछ अध्यापन



पैरों पर बोल्ट (मोरचाल)





डबल बोल्ट नं० २

कार्य भी कराते थे, तथा प्रबन्धसम्बन्धी कामों में भी भाग बंटाते थे। किन्तु आपकी आकांक्षा निवृत्तिप्रधान मार्ग की तरफ अग्रसर होने की थी। विद्यालय उस लक्ष्य की पूर्ति का प्रमुख साधन नहीं था। इसीसे आप इसी काम में विशेष अवरुद्ध अपने को न कर सके। दो वर्ष तक आपने इस संस्था को अपने सहयोग से उचित सहायता पहुँचाई। अन्त में आपने अपनी विचारधारा के अनुसार अपनी लक्ष्यसिद्धि के लिये आगे बढ़ने का निश्चय कर विद्यालय का परित्याग कर दिया। आप अब गंगोत्तरी तथा उत्तर काशी में ही अधिकतः निवास करते हैं और साधन में लगे हुए हैं। आपका दो वर्ष का सहयोग चिरस्मरणीय रहेगा।

स्वामी हरदयालजी जमात निवाई के दादूपन्थी महात्मा नार्मल पास थे तथा मास्टरी का कार्य करते थे। आपकी विशेष इच्छा हुई कि संस्कृत का अध्ययन किया जाय। विद्यालय संस्कृत अध्ययन का कार्यक्षेत्र था ही, अतः आप एतदर्थ विद्यालय में आये। आयु के कारण केवल अध्ययनार्थ विद्यालय में आपका प्रवेश शक्य न होने से आपने शिक्षा तथा प्रबन्ध के कामों में भाग बंटाते हुए शिक्षा पाने का निश्चय किया। आप प्रबन्धसम्बन्धी कामों में सहयोग देते और संस्कृत का अध्ययन भी करते। आप बुद्धिमान् एवं नार्मल तक शिक्षा पाये हुए थे ही, अतः एक वर्ष में ही संस्कृत की प्रथमा परीक्षा पास करली। प्रथमा के पश्चात् आगे आपका संस्कृत का अध्ययन नहीं चला। अंग्रेजी के अध्ययन का आरंभ हुआ। आपने करीब पांच वर्ष तक प्रबन्धसम्बन्धी कामों में संस्था को सहयोग दिया। अंग्रेजी की विशेष शिक्षा के विचार से आपने अन्यत्र जाने का निश्चय किया। पांच वर्ष तक आपने जो सहयोग प्रदान किया वह कम महत्त्वशाली नहीं था।

विद्यालय जब नवीन स्थान मोतीडूंगरी में आया तब सहायक प्रबन्धकों की और भी आवश्यकता हुई। विद्यालय का स्थान नगर से दूर पड़ गया था तथा देख रेख सम्बन्धी काम भी स्थान की विशालता से बढ़ गया था। स्वामी केशवदासजी वेदान्तशास्त्री से, जो स्वामी सुरजनदासजी आदि के साथी थे, तथा शास्त्री तक अध्ययन कर चुके थे, प्रबन्ध तथा शिक्षा उभय कामों में सहयोग लिया गया। स्वयं संस्था में पन्द्रह वर्ष का समय व्यतीत करने से संस्था की कार्य-

प्रणाली से वे पूर्णतया परिचित थे ही। उनने उभय कामों में भाग लेना शुरू किया। वे अध्यापन का कार्य भी करते थे तथा प्रबन्धसम्बन्धी काम भी। देख रेख, आयव्यय तथा इतर विद्यालय व छात्रावाससम्बन्धी सभी कामों में वे अपनी बुद्धि तथा श्रम का उपयोग करने लगे।

उनने अपने शिक्षणकालमें अंग्रेजीकी मिडिल परीक्षा पासकी थी अत अंग्रेजी की ज्ञानवृद्धि का भी कुछ प्रयास करते रहे। धीरे धीरे उनने संस्था का सभी काम संभाल लिया। उनने पूरी लगन तथा सावधानी से कार्य का संचालन किया। आधे युग तक उनने अपने तन, मन और श्रम से संस्था का हितसाधन किया।

संस्था को आपकी सेवा से जो लाभ प्राप्त हुआ उसका विशेष महत्त्व है कि उसी संस्था के स्नातक के नाते आपने एक विशेष आदर्श उपस्थित किया। यदि इसी तरह संस्था के योग्यतम स्नातक संस्था को अपना सहयोग प्रदान करते रहें तो संस्था को प्रबन्धसम्बन्धी कार्य की कभी विशेष चिन्ता नहीं करनी पडे।

स्वामी बलरामजी शास्त्री न्यायाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, मैट्रिक जो कि इसी विद्यालय के स्नातक हैं करीब ६ वर्ष से संस्था में अध्यापन तथा प्रबन्ध के कामों में सहयोग दे रहे हैं। आरंभ से शास्त्रीतक आपने विद्यालय में अध्ययन किया। न्याय के पठनार्थ आपको बनारस भेजा गया। बनारस में अध्ययन कर न्यायाचार्य की पदवी प्रथम श्रेणी में प्राप्त की।

आप विद्वान् तथा अच्छे लेखक हैं। रचना भी गद्य पद्य में अच्छी करते हैं। आपने अध्ययनके साथ ही अच्छी व्युत्पत्ति प्राप्त की है। आप विद्यालय के पूरे समयमें अध्यापन कार्य करते हैं तथा शेष समयमें प्रबन्धसम्बधी काम भी। केशवदासजी के कार्यपरित्याग के बाद आप ही विद्यालय के छात्रावास का कार्य संचालन कर रहे हैं।

कार्यकर्त्ताओं की गणना में मेरा अपना नाम भी सम्मिलित है। अपना परिचय आप लिखना पहिले के समय में तो रुचिकर नहीं माना जाता था, पर आज समय बदल गया है। अनेकों ने स्वयं ही अपनी जीवनियां लिखी हैं। देखा जाय तो अपना जीवन या अपना परिचय स्वयं व्यक्ति जितना अच्छी तरह

जानता है उतना और वैसा दूसरा कैसे जान सकता है? दूसरे के परिचय में या दूसरे द्वारा लिखी जीवनी में वास्तविकता के साथ साथ कल्पना का मिश्रण भी रहता ही है। तब अपने आपही परिचय लिखा जाय तो अधिक अच्छा है। इसी विचार से मैं ही मेरा परिचय संक्षेप में दे रहा हूं:—

मैं बीकानेरवास्तव्य स्वामी जानकीदासजी महाराज निरंजनी महात्माका शिष्य हूं। नाम है मंगलदास। मैं संवत् १६७१ में जयपुर में आयुर्वेदाध्ययन के लिये आया था। उपाध्याय पास कर शास्त्री में पूज्य स्वर्गीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज से राजकीय संस्कृत कालेज के आयुर्वेदविभाग में अध्ययन करता था। गांधीजी के पहिले सत्याग्रह के समय परीक्षाओं के बहिष्कार के निश्चय से शास्त्री परीक्षा में नहीं बैठा। अध्ययन आचार्य तक के ग्रन्थों का स्वामीजी महाराज से कालेज में ही किया। संवत् ७६ में नरेना के बड़े मेले पर स्वामीजी महाराज के नरेना पधारने तथा विद्यालय की स्थापना का प्रश्न उपस्थित करने के कार्य में मैं भी भागीदार था।

संवत् १६७७ में विद्यालय की स्थापना होगई। संवत् ७६ में धन्वतरि औषधालय की स्थापना हुई थी। मैंने उसके प्रारम्भिक कामों में भी भाग लिया था। विद्यालय की स्थापना के पश्चात् विद्यालय में प्रबन्धसम्बन्धी कामों में सहयोग देने लगा। प्रारम्भ में मेरा संकल्प विद्यालयमें लम्बे समयतक काम करने का नहीं था। यही सोचा गया था कि दो तीन वर्ष में विद्यालय की व्यवस्था का ढंग बैठ जायगा, तब अपना सम्बन्ध हटा लिया जायगा। पर दैवगति और ही थी और तीन वर्ष की कल्पना तीस वर्ष तक चली गई। मैं आरम्भ से यानी संवत् ७७ के ज्येष्ठ से संवत् २००७ के ज्येष्ठ तक तीस वर्ष से संस्था में अपने को लगाये रहा। विद्यालय के आरम्भ के समय मेरी अवस्था नई थी, नई अवस्था की तेजी भी थी, काम का विशेष अनुभव नहीं था, एवं नया नया काम था। काम भी साधारण नहीं था। विद्यालय तथा छात्रावास दोनों का साथ ही संचालन करना था। छात्रावास के कारण कार्य की गुरुता विशेष थी। विद्यालय में आनेवाले छात्रों का चरित्रनिर्माण छात्रावास के संचालकों पर ही निर्भर था। हमारी योग्यता, निष्ठा, सचाई, सदाचार तथा तत्परता ही छात्रों का सही

मार्गप्रदर्शन कर सकती थी। इन सब गुणों के विचार से अपना नाप तोल करने पर कहा जा सकता है कि मुझ मे उपर्युक्त गुणों की मात्रा बहुत ही साधारणरूप में थी। हाँ, तत्परता और सचाई तो अवश्य ही थी और साथ ही थी संस्था की समुन्नति की सची भावना।

मैंने अपनी बुद्धि तथा विचारों की न्यूनता के साथ ही काम किया। संभव है, संभव ही क्यों? यही कहना उपयुक्त है कि अपनी अपूर्णताओं का असर संस्था के परिणाम पर अवश्य ही हुआ। यदि उपर्युक्त गुणों से परिपूर्ण होता तो संस्था के छात्रों में उन गुणों का विकास पर्याप्त मात्रा में होता। अपनी कमजोरी या अपनी न्यूनतायें छात्रों के जीवन में भी समाहित हुई होगी, इसका श्रेय या दोष मुझे ही और मैं ही उसका जिम्मेदार हूं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि इरादतन मैंने संस्था के काम में जान बूझकर गफलत या उपेक्षा की हो, ऐसी बात नहीं है। जहाँ तक अपनी समझ, सूझ, बुद्धि तथा विचारों ने साथ दिया वहाँ तक संस्था के हित मे ही अपना उपयोग किया। छात्रावास की देखभाल में भी यथाशक्य हितावह भावना की प्रमुखता रक्खी गई। अपनी समझ के अनुसार तथा प्रकृतिवश अच्छी समझकर की गई कुछ बातें किन्हीं किन्हीं छात्रों के लिये अनुपादेय भी सिद्ध हुई हों तो आश्चर्य नहीं। संस्था को मेरे सहयोग से लाभ तथा हानि दोनों ही हुए हैं। उनमें से लाभ तथा हानि का तारतम्य करना सहजसाध्य नहीं है फिर भी विवेकशील व्यक्ति नीरक्षीरन्याय से इसका निर्णय कर सकते हैं। मैंने संस्था में काम किया, इससे संस्था को लाभ पहुँचा या नहीं, पर मुझे तो असीम लाभ पहुँचा है। मैंने इन तीस वर्षों में अनेक तरह की शिक्षा प्राप्त की हैं। जीवनके संघर्षमय होने से इसके परिशोध का पर्याप्त प्रयास किया गया है। सामूहिक जीवन मे व्यक्ति को अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की कई आदतें बदलनी पड़ती हैं। अन्यथा वह उसमें अपने को खपा सकनेमें सफल नहीं होता। मुझे भी अध्यापकों अन्य कार्यकर्ताओं तथा विविध विचार के छात्रों का सहवास करना पड़ा। मैं समझता हू तथा मानता हूँ कि यदि मैं किसी अन्य क्षेत्र मे लगता तो सम्भव है, मेरी मनोवृत्तियाँ तथा मेरा व्यावहारिक जीवन इस रूप मे नहीं ढल पाता। अत मैं संस्था का तथा संस्था के संस्थापक पूज्य स्वर्गीय श्री स्वामीजी महाराज का व संस्था के अनन्य सहायक पूज्य स्वामी सेवारामजी

महाराज का अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि उनकी अनुकम्पा तथा सहायता से मैं इस संस्था में इतने लम्बे समय तक अपना उपयोग करता रहा तथा अपने जीवन का कुछ संशोधन कर सका। मैं अभी संस्था में ही रह रहा हूं, पर संस्था के उत्तरदायित्व से मुक्त हूं। मेरी अन्तिम भावना यही है कि संस्था समुन्नति की ओर अग्रसर हो तथा संस्था के सहायक व संस्था के हितेच्छु, संस्था को, जैसा कि अब तक अपनी सहायता से सिंचित करते रहे हैं, आगे भी अपनी इस धारा को अविच्छिन्न रूप से चलाते रहें। तथा छात्रवर्ग अधिक से अधिक संस्था द्वारा लाभान्वित हों। मेरे कार्यकाल में मेरे सहयोगियों तथा छात्रों को मेरे द्वारा किसी तरह का कष्ट पहुंचा हो उसका मैं अपराधी भी हूं, अतः उनसे क्षमाप्रार्थी भी हूं। आशा है वे मुझे अवश्य क्षमा करेंगे।

११–उपसंहार—

संस्था के परिचय में आरम्भ से स्थाननिर्माण तक के अधिकरणों का पर्याप्त संक्षेप में विवेचन किया गया है। विशेषोत्सव, संस्था के सहायक, संस्था के अध्यापक व कार्यकर्त्ता, इन प्रकरणों का विस्तार, संभव है, कुछ सज्जनों को अरुचिकर भी प्रतीत हो। क्योंकि सहायकों के विवेचन में सबका निरूपण तो हुआ ही नहीं है, और बहुतों का नामनिर्देश तक भी नहीं हुआ है। सहायता में भाग लेनेवाले सभी सहायक सहायक ही हैं और उनकी संख्या सैंकड़ों में सीमित न होकर सहस्र से भी आगे बढ़ गई है। उनमें से कुछ का परिचय देना कहाँ तक संगत है? अध्यापकों और कार्यकर्त्ताओं में भी सभीका परिचय देने की आवश्यकता है या नहीं, इत्यादि हो सकते हैं। और इसमें कुछ तथ्य भी है। पर इन प्रकरणों का विवरण एक ही भावना से किया गया है और वह है कौटुम्बिक भावना। विद्यालय की स्थिति, स्थापना व पोषण जिनके आधार से व सहयोग से हुआ या होरहा है वे सभी विद्यालय के कुटुम्बी हैं। विशेष सहायकों, अध्यापकों तथा कार्यकर्ताओं का विद्यालय के साथ ही सम्बन्ध है अतः विद्यालय के परिचय में व संस्था की स्थिति के दिग्दर्शन में इन सबका उचित स्थान व्यक्त करना मैं आवश्यक मानता हूं और इसी से यह विवरण देना उचित समझा है। जो भी व्यक्ति अर्थ, श्रम, ज्ञान, बुद्धि और विचार संस्था के हित में

उपयोग करता है वह सस्था का ही अग है। अग का निरूपण ही अगी की वास्तविकता का द्योतक होता है। इसीसे आशक्नीय जानते हुए भी उपर्युक्त विवरण को छोडना सगत नहीं समझा।

सार्वजनिक सस्था के जीवन का तीस वर्ष तक एक रूप से अग्रसर होते रहना साधारण बात नहीं है। सस्थाये सैकडो वर्षों तक कार्य अवश्य करती हैं। पर उनकी सख्या का विचार करें तो वे-अगुलियों पर गिनने लायक भी कठिनाई से दृष्टिगोचर होंगी। सार्वजनिक सस्थाये कई विभागों में विभक्त की जा सकती हैं। राजकीय सस्थाये, सार्वजनिक सस्थायें, व्यक्तिगत सार्वजनिक सस्थाये तथा सामूहिक सहयोगजन्य सार्वजनिक सस्थाये। पहिली दो श्रेणी की सस्थाओं का जीवन सुरक्षित होता है क्योंकि राज्य तथा व्यक्ति दोनों ही सस्था की स्थापना से पहिले उसके स्थैर्य के प्रश्न पर भी समुचित विचार कर लेते हैं तथा जहाँ तक बनता है उसकी व्ययसाध्य परिस्थिति को आरभ मे ही दृढ करके पश्चात् उसको मूर्तरूप प्रदान करते हैं।

सामूहिक सहयोगजन्य सस्था का रूप उपर्युक्त सस्थाओं से भिन्न होता है। सामूहिक सस्थाओं के सस्थापक सस्था की स्थापना को ही प्रमुखता देते हैं, उसके स्थैर्य की ओर जितना ध्यान देना चाहिये उतना ध्यान या तो वे दे नहीं पाते या देते हैं तो तदनुसार पहिले से व्यवस्था बैठना शक्य नहीं होता। इसलिये उनका यही विचार प्रमुख रहता है कि समुदाय के हित का कार्य है अत कार्यारम्भ तो कर ही देना चाहिये, पश्चात इसकी दृढताके लिये स्वय ही समूह के व्यक्ति प्रयत्नशील हो जायेगे। स्थापना के पश्चात् ऐसी स्थिति आ भी जाती है तथा नहीं भी आती, अत सामूहिक सहयोग के आश्रित चलने वाली सस्थायें विरली ही दीर्घायुष्य प्राप्त किया करती हैं।

फिर जिस सामूहिक वर्ग मे अधिक व्यक्ति तटस्थवृत्ति वाले हों वहाँ तो सस्था का सचालन प्राय सकटपूर्ण ही रहता है। हमारी यह सस्था इसी श्रेणि की सस्थाओं मे से है। सस्था की स्थापना का उद्देश्य था सस्कृतशिक्षा तथा ज्ञान की प्राप्ति सस्था द्वारा साधुवर्ग तथा अन्य व्यक्ति प्राप्त कर सकें। साधुवर्ग शिक्षा के महत्त्व की ओर बहुत कम आकृष्ट है। बाहर के साधुवर्ग मे तो फिर भी

चेतना है। राजस्थान का साधुवर्ग इस बारे में और भी अधिक तन्द्रित था और अब भी है। इस संस्था के आरंभ से पहिले भी दो तीन बार ऐसा प्रयास कुम्भ के अवसरों पर तथा नरेना में किया गया था, पर साधुओं की तटस्थ भावना के कारण उस में सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस बार भी वह स्थिति तो सामने थी ही, पर संस्थापकों तथा उनके कुछ सहयोगियों के दृढ़ मनोवृत्ति वाले होने के कारण संस्था ने मूर्तरूप प्राप्त कर लिया। संस्था की स्थापना होते ही उसके विविध व्यय सामने आये और उनकी पूर्ति के लिये विशेष यत्न की आवश्यकता हुई।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि संस्था का आरंभ अत्यल्प आर्थिक स्थिति में ही कर दिया गया था। उसकी व्ययपूर्ति के लिये सर्वदा प्रयासकी आवश्यकता रहती थी। साधुवर्ग की उपेक्षा पर्याप्त सहायताप्राप्ति में बाधक थी। गृहस्थवर्ग में सहायताप्राप्ति का विशेष प्रयास किया नहीं जा रहा था। फिर कालानुबन्ध से और भी समय समय पर ऐसे अनेकों प्रश्न उपस्थित होते रहते थे जिन में व्यक्तितः भाग लेना अनिवार्य था और उसका परिणाम संस्था के विपरीत पड़ता था। अध्यापक व छात्र भी पर्याप्त संख्या में थे। व्यक्तिगत भावनाओं के कारण वहाँ भी आगे पीछे विविध समस्याएं उठती रहती थीं। छात्रों के प्रवेश, उनकी सहायता, कार्यकर्त्ताओं की विचारधारा, अध्यापकों का व्यक्तित्व, इनको लेकर भी कभी कभी कई प्रश्न उपस्थित होते रहते थे। इन सब परिस्थितियों में से निकलते रहना तथा अग्रसर होते रहना असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य कार्य अवश्य था।

तीस वर्ष पहिले की मानवविचारधारा तथा धीरे धीरे काल के परिवर्तन से होने वाला अन्तर भी कुछ कम विचारणीय प्रश्न नहीं था। जिस तरह मनुष्यों का नैतिक मापदण्ड उतरा, देश में स्वतन्त्रता के प्रयास को लेकर विषमस्थिति, द्वितीय महायुद्ध तथा युद्धजनित अनवस्था के परिणाम से जो विषमताएं सामने आईं वे भी अलंघ्य नहीं तो दुर्लंघ्य अवश्य थीं और हैं। निष्कर्ष यह है कि संस्था ने इन सब स्थितियों में अपना अस्तित्व कायम रक्खा यह अति प्रशंसनीय नहीं तो सराहनीय तो है ही। तात्कालिक तथा दीर्घकालिक

स्थितियों का सामना करते हुए अपने को सुस्थिर रख लेना अच्छा ही कहा जा सकता है।

संस्था ने इन सब परिवर्तित आघातों का सामना किया है। निश्चित आर्थिक अवस्था के बिना अपना व्यय निर्वाहित किया है। उपेक्षित समुदाय में अपना स्थान बनाया है। बिना किसी विशेष दिखावे के तथा प्रोपेगण्डों के अपनी स्थिति का निर्माण किया है। सैंकड़ों की संख्या में छात्रों को ज्ञान-सम्पादन कराने के कार्य की पूर्ति की है। पचासों योग्य नागरिक निर्माण किये हैं। अनेकों संस्कृत साहित्य के जानकार तथा अनेकों विज्ञ विद्वान् बनाये हैं। अपने लक्ष्य में अब भी उसी रूप में संलग्न है। आर्थिक विचार से संस्था की कठिनाई आज भी वैसी ही है जैसी पहिले थी। कन्ट्रोल यानी नियंत्रणजन्य स्थिति तथा दुर्लभ जीवन सामग्रीकी दुर्लभतासे वर्तमान समय संस्था के लिये अत्यधिक कठिनाई का है। सामान्य कार्यनिर्वाह के लिये ही आज कल तो आय से अतिरिक्त बहुत बड़ी राशि की सहायता की आवश्यकता रहती है। जीवनयापन के लिये जिन साधनों की परमावश्यकता है वे भी आज कल उचित मात्रा में प्राप्य नहीं हैं। पिछले चार वर्ष पर्याप्त बाधाओं के साथ समाप्त हुए हैं। आगे की बाधाओं का अभी कुछ निश्चय नहीं है कि किस रूप में सामने आयें। विश्व जिस संकटमय काल से निकल रहा है, न मालूम, उसके झटके कितने और किस तरह के आए। उन झटकों में कितने जीवनदीप सुस्थिर रह सकेंगे यह सब भविष्य के गर्भ में है।

संस्था के लिये भी भविष्य का निश्चय कौन कहे। अल्प साधन, अल्प-सहायक व अबल शरीर पर यदि सबल रोग का आक्रमण हो तो उसकी निवृत्ति तो विशेषत दैवाधीन ही मानी जाती है। परिस्थितियां जब संसार को बदल देने का कार्य करती हैं तो एक संस्था की तो बात ही क्या है?

प्रकृति का सामान्य नियम है—वस्तु का उत्पादन, उपयोग और विलय। प्रत्येक कार्य उत्पन्न होता है, अपने साध्यलक्ष्य की पूर्ति का प्रयास करता है और समय पाकर समाप्ति की गोद में प्रसुप्त होता है। तीस वर्ष पहिले जिन बातों को आधार मानकर संस्था की स्थापना का विचार किया गया था आज उन में से



श्री दादू महाविद्यालय का वर्तमान अध्यापक मंडल

अनेकों प्रकृतिमें विलीन हो गई हैं। फिर भी संस्था का ध्येय शिक्षा है और शिक्षाकी आवश्यकता आज भी उतनी ही है जितनी कि उस समय थी। शिक्षाका माध्यम संस्कृत है। देश की स्वतंत्रता तथा हिन्दी को राष्ट्र भाषा की मान्यता देने के पश्चात् संस्कृतशिक्षा की आवश्यकता उस समय से आज अधिक है, यह कहा जाय तो भी असंगत नहीं। हमने बहुत समय तक व्यास, शंकर, कणाद, कपिल, गौतम, पतंजलि और पाणिनि आदि को विस्मृत रक्खा; हमने भवभूति, माघ, बाण, कालिदास, भारवि, कल्हण, भर्तृहरि, भरत आदि को देखने का प्रयास ही नहीं किया; रामायण, महाभारत, गीता को समझनेकी अपेक्षा उनकी उपेक्षा की। अब भी क्या अन्तरराष्ट्रीय विवाद तथा विज्ञान की आड़में हम अपनी संस्कृतिको भुलावे में ही रखना चाहते हैं?

यह कैसे हो सकता है कि हम एक ओर देशसे यह आशा करें कि उसका प्रत्येक व्यक्ति देशके लिये सब कुछ करने को उद्यत हो। दूसरी ओर हम यह भी चाहते रहें कि हम हमारी संस्कृति नामसे किसी चीजका विचार न करें। एक तरफ हमें यह समझाया जाय कि भारत अब एकाकी भारत के रूप में नहीं है, उसका शेष संसार से सम्बन्ध है। उसके निवासियों में अब अपनी संस्कृति के प्रति संकुचितता व दकियानूसीपन नहीं होना चाहिये और दूसरी तरफ उन्हीं भारतीयों में त्याग, तपस्या व बलिदान की भावना की आशा की जाय!

देश में स्फूर्ति तथा त्याग तभी उत्पन्न होगा जब उसमें अपनी संस्कृति का संस्कार दृढ़ होगा। भारतीय संस्कृति का वास्तविक ज्ञान आज की प्रचलित शिक्षा से संभव नहीं है। यह परीक्षण पर्याप्त समय तक हो चुका है। इससे हमारा देश अत्यधिक घाटे में रहा है। अब भी हम उसी शिक्षापद्धति को अपनाये चले जा रहे हैं जो मैकाले के कथनानुसार मानसिक गुलामी की उत्पादिका है।

शिक्षा में परिवर्तन अनिवार्य है, और परिवर्तन में संस्कृत का स्थान परमावश्यक है। अतः संस्था की उपादेयता में कोई अन्तर आने वाला नहीं। हाँ, विषयविशेष का अन्तर करना हो तो वह कोई कठिन कार्य नहीं। सामग्रीसाकल्य के पश्चात् पदार्थ को रूप आप अपनी इच्छानुसार दे सकते हैं, इस तरह सोचें तो संस्था की स्थापनाके समय और आज संस्था की उपादेयता का महत्त्व वैसा का वैसा ही है।

सस्था की कुछ अपनी विशेपताएँ हैं। सस्कृत की शिक्षणसस्था होते हुए भी छात्रों को देश के सामान्य ज्ञान से अपरिचित नहीं रहने दिया जाता। शिक्षा के साथ साथ श्रम का महत्त्व भी जीवन में उतना ही है यह बात विचारों से नहीं प्रत्युत कार्यसे दृढ कराई जाती है। भोजन बनानेके कामसे भिन्न अन्य सभी काम सस्थामें रहनेवाले छात्रों तथा अध्यापकों को अपने आप ही करने पडते हैं। सफाई, जल, वृक्ष, पशुरक्षा आदि सभी काम छात्र ही स्वय सम्पन्न किया करते हैं। सस्था में जैसा जितना काम हो रहा है उसी रूप में आप कभी भी आकर अवलोकन कर सकते हैं। छात्रोंमें अनावश्यक प्रवृत्तियाँ घर न करने पावें, इसका यथाशक्य पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाता है। छात्र में विनय तथा शालीनता का अश अधिक से अधिक स्थान पाए इसकी भी पूरी पूरी चेष्टा की जाती है। सस्था मे अनावश्यक व्यय को कोई स्थान नहीं है। काम में कभी किसी तरह की उपेक्षा के अनुबन्ध न होने का पूरा पूरा बचाव किया जाता है। सस्था ने अल्पव्यय मे अधिक काम करने की सतत चेष्टा की है और उसमें उसे सफलता भी मिली है। इस तरह यह सस्था इस नगर मे अनेकों भावी नागरिकों का निर्माण करती हुई अपनी ध्येयसिद्धि में सलग्न है। सस्था का यही सामान्य परिचय है। तीस वर्ष के कार्यकाल मे क्या कार्य किया गया? क्या आय व्यय हुआ? यह सब आगे के परिशिष्टोंमें आपको यथावत् देखने को मिलेगा।

अन्तमें हम उस सर्वाधार की परम कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं जिसकी अनुकम्पा से सस्थाने अपने सहायकों, समर्थकों, अध्यापकों, कार्य-कर्त्ताओं तथा छात्रों के समुचित सहयोग से अपना इतना लम्बा समय निर्विघ्न समाप्त कर अपनी सार्थकता प्रदर्शित की। ॐ शाति —

सवत् २००७
मार्गशीर्ष शु० ९ रविवार

मगलदास स्वामी
श्री दादू महाविद्यालय, मोती डूगरी, जयपुर

परमपूज्य परमहंस स्वर्गीय श्री सेवारामजी महाराज

विद्यालय का परिचयात्मक विवरण जब लिखा गया था उस समय किस को पता था कि संस्थाके एकमात्र विशेष आधारस्तम्भ श्रद्धेय पूज्य बाबाजी महाराज श्री सेवारामजी का इतना शीघ्र ही देवलोकगमन हो जायगा। मनुष्य अपने अहंकार से भ्रांत होकर अपनी कल्पना के किले खड़ा करता रहता है और नियति मानव की इस लीला को देख मन ही मन हँसा करती है। संस्थाके आरंभ से लेकर अब तक जिनके द्वारा संस्था की बराबर सहायता होती रही है वे अब कथाशेषता को प्राप्त हो गये हैं। उनका संक्षिप्त परिचय देना यहाँ असंगत नहीं होगा।

आपका जन्म संवत् १९२५ विक्रम में सूल्यास के पास लालास नामक ग्राममें हुआ था। जन्मके कुछ काल बाद ही आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। संरक्षक के अभाव से क्लांत हो माताने संवत् १९३० में पाँच वर्ष की आयु में आपको जमात उदयपुर निवासी बाबाजी मनीरामजी के अखाड़े के सन्त स्वामी बुधरामजी को चढा दिया—तब से अब तक उनासी (७९) वर्ष आपकी आयु के साधु समाज में ही व्यतीत हुए।

उस समय दादूपंथी सम्प्रदाय के नागा साधुओंकी सात जमातें जयपुर राज्यके आश्रित थीं। आप जमात उदयपुर में ही उपर्युक्त स्वामीजी के पास दीक्षित हुए। उस समय की प्रणाली के अनुसार आपने ग्यारह बारह वर्ष की आयुमें स्वामीजी महाराज श्री दादूजी की वाणी का अध्ययन स्वामी गीधारामजी के दादा गुरु चन्दगीदासजी से किया। दादूजी की वाणी व श्री सुंदरदासजी के सवैये पढ़ लेना ही उस समय पर्याप्त समझा जाता था। जमातों में प्रधान कार्य था शस्त्र विद्या के अभ्यास का। आपने खाँडा, पट्टा, सेल, बन्दूक आदि का भी अभ्यास किया तथा गोटड़े गाँव में कुछ समय तक खेती का कार्य भी किया। गोटड़े से फिर आप ओझटू ग्राम जो चिड़ावा के पास है, चले गए और वहीं मकान बनाकर तथा खेती कर रहने लगे। समय २ पर आपने उस समयके योग्यतम महात्माओं के सान्निध्य में रह कर साधुता का महत्त्व समझा। आपकी मनोवृत्ति बाल्यकाल से ही वैराग्यमयी थी। किसी वस्तु की लालसा करना आपके स्व-

भावके विरुद्ध था। कम बोलना, गभीर मुद्रामें रहना, अनुचित बात को सहन न करना ये आपके जन्मजात गुण थे। आपने परमहस परमभजनीक महात्मा शेपरामजी, सिद्धपुरुप स्वामी शिवभजनजी, महात्मा तुहीरामजी आदि अनेक सत पुरुषों का समागम किया था। परिणामत सम्वत् १९६२ मे आपने जमात व डेरा का परित्याग कर वस्तुत साधुवृत्ति मे ही रहने का निश्चय कर लिया।

तब से सम्वत् २००६ तक सैंतालीस वर्ष आपके एकान्तत साधुजीवन में ही व्यतीत हुए। जमात छोडने के पश्चात् आपने कुछ समय तक ऋषिकेशमें झाडी में निवास किया। उस समय ऋषिकेश में कई अच्छे २ महात्मा निवास कर रहे थे। आपने वहाँ रह कर वेदात शास्त्र का सात्विक ज्ञान सम्पादन किया। भाषा ग्रन्थों के उत्तम ज्ञाता, सीकर निवासी पूज्य स्वामी रामकरणजी महाराज से आपने विचारसागर व वृत्ति प्रभाकर का अध्ययन किया। इसके बाद ये दोनों ग्रन्थ, वाणी तथा वैराग्य शतक ही आपके मनन करने के ग्रन्थ थे। इनका आपने खूब मनन किया और इनके सिद्धांत पक्ष को आत्मसात् किया। वैराग्य-वृत्ति आपकी स्वाभाविक थी। वेदांत के इन प्रक्रियाओं को समझ लेने पर आपका जीवन एक सच्चे त्यागी साधु के रूप में ढल गया।

आप एक अलफी, एक चादर, एक पात्र तथा दो पुस्तकें इतना ही परिग्रह रखते थे। १९६२ के पश्चात् आप प्राय भ्रमण ही करते रहते थे। स्थायी रूप से किसी स्थान मे नहीं ठहरते थे। भूख तथा क्लेश से पीडित प्राणियों की सेवा व सहायता यह आपके व्यावहारिक जीवन का ध्येय था। आपने समय समय पर पडने वाले दुष्कालों मे मनुष्यों तथा पशुओं की सहायता के लिए परम प्रयास किया। कोई भी दीन दुखी, आपके सामने आ जाने पर, कुछ न कुछ सहायता पाये बिना नहीं रहता था। आपने स्वय विशेष शास्त्रीय विषयों का अध्ययन न करने पर भी शिक्षा की इच्छा रखने वाले छात्रों को सहायता दे शिक्षा के लिए सदा प्रेरित करने का प्रयास किया। आपकी इसी भावना ने उक्त सस्था के लिये इतनी सहायता की पूर्ति करवाई।

आपका पूरा जीवन त्याग व तप का मूर्तिमान् स्वरूप था। स्वास्थ्य भी आपका इकहत्तर वर्ष की आयु तक परम उत्तम था। स्वर्गीय परम मान्य स्वामी

परमपूज्य परमहंस स्व० श्री सेवारामजी महाराज

श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के देहावसान के बारह दिन बाद रात्रिको सहसा आपकी कमरमें वेदना होकर दोनों पैरों की क्रियाशक्ति में सहसा न्यूनता हो गई तबसे इस व्याधिने अन्त तक आपका परित्याग नहीं किया। तेरह वर्षका यह अन्तिम समय आपका व्याधिपीड़ित था फिर भी आप अपनी सभी क्रियाएं सम्यक्-तया स्वयं ही सम्पन्न किया करते थे, समय पड़ने पर दो तीन मील साहस कर चल भी लेते थे। व्याधिग्रस्त होते हुए भी व्याधि का कोई प्रभाव आपके मानस क्षेत्र पर नहीं था। आपका सम्पूर्ण जीवन परम सादगी का था। खान-पान भी अत्यन्त सादा भिक्षावृत्ति पर आधारित था। आपकी धारणा अत्यंत दृढ़ थी। जो संकल्प आप कर लेते थे उसकी पूर्ति अनिवार्य थी। दृढ़ता, स्थिरता, सिद्धान्त-निश्चय, साधुता, सचाई, त्याग, वैराग्य तथा चरित्र-शुद्धि आपके विशिष्ट गुण थे। बुद्धि तथा मेधा-शक्ति भी आपकी परम प्रबल थी। अति कठिन विषय को समझते आपको देर नहीं लगती थी। अधिक क्या कहा जाय इस समय आप जैसे शरीर बहुत ही कम दृष्टि में आते हैं। आपके निश्चयके अनुसार विना किसी प्रकार के रोगज कष्ट उठाये संवत् २००६ की ज्येष्ठ शुक्ला १२ को आप कलकत्ता में सत्संगी पुरुषों से बातचीत करते २ ही ब्रह्मलीन हो गए। आपने अपना जो स्थान रिक्त किया है अब उसकी पूर्ति अशक्य है। आपका अभाव सहस्रों प्राणियों को खटक रहा है। जो एक बार भी आप से मिला हुआ है वह आपके अभाव की अनुभूति किये विना नहीं रह सकता। आप जैसी पवित्र आत्माओं का आगमन जनकल्याण के लिए ही हुआ करता है। आपने अपने इस कर्तव्य की तथा साधुता के लक्ष्य की सम्यक् पूर्ति की।

❁ हरिः ओ३म् ❁

मंगलदास स्वामी



व्यायामाचार्य श्री गोपालजी स्वामी

इस महाविद्यालय की व्यायामविषयक प्रवृत्ति की प्रगति मे जिस व्यक्ति का प्रमुख हाथ है वे हैं व्यायामाचार्य श्री गोपाल स्वामी। आप पजाब प्रात के अन्तर्गत लुधियाना जिला के निवासी हैं। आपने बाल्यावस्था में ही साधुसमाज मे दीक्षा ग्रहण की। कुछ वयस्क होने के बाद से ही आपकी यह दृढ धारणा बन गई कि समाज व राष्ट्र की उन्नति व आत्मप्राप्ति भी बलप्राप्ति के बिना नहीं हो सकती। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्य, तस्माद् बलमुपास्स्व, शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्" इत्यादि वचनों ने आपके हृदय में दृढ स्थान बना लिया था। तभी से आपने यह निश्चय कर लिया कि देशवासियों को सशक्त बनाने के लिए सर्वत्र अनिवार्य रूप से व्यायाम प्रचार की आवश्यकता है। तभी से आपने अपने जीवनका यही लक्ष्य बनाकर बडौदानिवासी व्यायामाचार्य माननीय श्री माणिकरावजी के पास जाकर विभिन्न व्यायामपद्धतियों की पूर्णतया शिक्षा प्राप्त की।

शिक्षा प्राप्ति के बाद अपनी इस लक्ष्यपूर्ति के लिये नि शुल्क रूपसे भारत के विभिन्न प्रान्तों में इसका प्रचार करना आरम्भ किया। सर्वप्रथम आपने रतनगढ पहुँच कर इसका श्रीगणेश किया। वहीं से दादू विद्यालय, रतनगढ के सस्थापक व सचालक श्री चेतनाचन्दजी के द्वारा १९९८ में आपका इस विद्यालय में पदार्पण हुआ। आपने यहा विद्यार्थियों को भारतीय व्यायामपद्धति की मुख्य धनुविद्या, मल्लविद्या, गदायुद्ध, लाठी, भाला, तलवार, छुरी, पट्टा, बनेठी, अग्निचक्र, डम्बल्स, लेजम स्तूपनिर्माण आदि विविध विद्याओं की वर्षों तक शिक्षा दी। आपके शिष्यों द्वारा समय समय पर प्रदर्शित व्यायाम से मुग्ध होकर भारत के अनेक प्रातों की सस्थाओं ने आपका सादर आह्वान किया। आपने भी अपने ध्येय की पूर्ति एव देशसेवा के निमित्त समय-समय पर यहा से जाकर वनस्थली विद्यापीठ, शक्ति आश्रम देहरादून, गुरुकुल कागडी हरिद्वार, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि सस्थाओं एव रतनगढ, साभर, झूँझनूँ, फतेहपुर, सगरिया आदि विभिन्न नगरों मे नि शुल्क व्यायाम प्रचार किया। आपके सुयोग्य शिष्य आज भी भारत के विभिन्न नगरों मे अनेक व्यायामशालाओं का सचालन कर आपकी ध्येयपूर्ति में सलग्न हैं।

वर्तमान मे करीबन पाच वर्षों से वनस्थली विद्यापीठ के सस्थापक एव राजस्थान के भूतपूर्व प्रधान मत्री श्री हीरालालजी शास्त्री के विशेष अनुरोध पर वहा की पचमुखी शिक्षायोजना के अन्तर्गत व्यायाम शिक्षा का सचालन करने के लिये व्यायामप्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं। वहाँ कार्य करते हुए भी इस विद्यालय को पहिले की तरह आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त है, और पूर्ण आशा है कि भविष्य में भी आपकी कृपा इस विद्यालय पर इसी प्रकार बनी रहेगी। विद्यालय इसके लिए आपका अत्यत ऋणी है और श्रद्धापर्वक कृतज्ञता प्रकाशित करता है।

त्यागमूर्ति श्रीमान् स्वामी मंगलदासजी महाराज

विद्यालय का तथा विद्यालय के अध्यापकों व कार्यकर्ताओं का सामान्य परिचय अनुपद में ही दिया जा चुका है; किन्तु यह परिचय तब तक सर्वथा अपूर्ण है जब तक कि इस विद्यालय के प्राणभूत व इसके प्रत्येक अणु में जीवन-रूप से अनुस्यूत महापुरुष का परिचय नहीं दे दिया जाता। यद्यपि वास्तविक दृष्टि में विद्यालय का परिचय ही उनका परिचय है, क्योंकि विद्यालय का उनके बिना एक प्रकार से अस्तित्व ही नहीं है, तथापि व्यावहारिक दृष्टि में उनका पृथक् परिचय न देना विद्यालय के परिचय में एक बड़ी न्यूनता तथा उस महा-पुरुष के प्रति कृतघ्नता होगी। अतः संक्षेप में यहां उनका परिचय दिया जा रहा है। यहां उनके समग्र जीवन पर प्रकाश न डाल कर विद्यालय के साथ उनका क्या, कितना और कैसा सम्बन्ध है, इसी बात का प्रधानतया संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है।

इस महाविद्यालय के जीवन का वास्तविक दृष्टि से अध्ययन करने वालों को भलीभाँति मालूम है कि इसके चार प्रधान स्तम्भ हैं:—१—स्वर्गीय पूज्यपाद आयुर्वेदमार्तण्ड स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज, २—स्वर्गीय पूज्यपाद परमहंस बाबाजी श्री सेवारामजी महाराज, ३—प्रातःस्मरणीय विद्याभूषण विद्वद्वरेण्य पं० श्री रामचन्द्रजी महाराज तथा ४—स्वनामधन्य गुरुवर्य त्यागमूर्ति श्री मंगल-दासजी महाराज। पूज्यपाद स्वर्गीय श्री लक्ष्मीरामजी महाराज ने इसकी स्थापना की व सब प्रकार से यावज्जीवन इसका संरक्षण किया। स्वर्गीय श्री सेवारामजी महाराज ने आर्थिक दृष्टि से इसको दृढ़ किया व इसका पालन पोषण किया। स्वर्गीय प्रातःस्मरणीय श्री रामचन्द्रजी महाराज ने इसमें ज्ञानसंचार किया और स्वामी श्री मंगलदासजी महाराज ने इसमें प्राणसंचार किया। यद्यपि इन स्तम्भों में एक के भी अभाव में इस महाविद्यालय रूपी महान् प्रासाद का निर्माण होना सर्वथा असंभव था। और न अपने अपने कार्यको सम्पन्न करने के विचार से किसी की भी कम उपयोगिता है फिर भी प्राणसंचार करने वाले की अन्यों की अपेक्षा प्रधानता स्वतः सिद्ध है।

स्वामी श्री मगलदासजी महाराज का इस सस्था के साथ सम्बन्ध इसके निर्माण की विचारधारा से लेकर अब तक निरतर अविच्छिन्न रूपमे रहा है। उनने इसके निर्माण के लिये विचारात्मक रूपरेखा बनाई, उन विचारों को सक्रिय मूर्त रूप दिया और अब तक उसमें निरन्तर प्राणसचार करते हुए उसका सचालन कर रहे हैं।

स्वर्गीय प्रात स्मरणीय स्वनामधन्य पूज्य स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के मन में बहुत दिनों से यह तीव्र इच्छा थी कि साधु समाज में किसी प्रकार शिक्षा का प्रसार किया जाय। क्योंकि कुछ समय पूर्व जो साधुसमाज लोक मे सम्मानित था और जो त्याग, तपस्या, भजन, सदाचार, आदि गुणों से जनता में अपना विशिष्ट स्थान रखता था आज दिनो दिन गिरता जा रहा है। साथही उसमें उपर्युक्त गुणों का प्राय समयप्रभाव के कारण अभाव होता जारहा है। अब यदि उनको ससार में समादर के साथ अपना जीवन यापन करना है तो शिक्षाके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। साथ ही साधुता की रक्षा के लिये भी शिक्षा और प्रधानतया सस्कृतसाहित्य तथा वेदान्तदर्शनादि विषयों की शिक्षा अत्यावश्यक है। इस विचार को उनने किसी समय अपनी साधु-शिष्य-मडली के समक्ष व्यक्त किया जिसमें हमारे चरितनायक भी विद्यमान थे। उनने इस कार्य में अत्यन्त उत्साह प्रकट किया। क्योंकि उनकी भी यह प्रबल धारणा व इच्छा थी कि साधुसमाज मे साधुता की रक्षा के लिये, जनसमाज के प्रति अपने कर्तव्य को समझने एव पूर्ण करने के लिए तथा सम्मानास्पद जीवन व्यतीत करने के वास्ते शिक्षा की परम आवश्यकता है।

हिन्दू समाज में और विशेषत सनातनधर्मावलम्बी सस्कृतप्रधान-क्षेत्रों मे समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये उस समय सस्कृतशिक्षा का द्वार खुला रखना परम्परागत रूढियों के कारण शक्य नहीं था अत प्रत्येक के लिये सस्कृत-शिक्षा सुलभ न थी। साधुसमाज के विद्यार्थियों के प्रति भी सस्कृताचार्यों व धर्माचार्यों की यही मनोवृत्ति थी। वे उन्हें सस्कृत पढाना धर्मविरुद्ध समझते थे।

सवत् १९७६ में फाल्गुन मास में बडे मेले के अवसर पर पूज्य वैद्यजी महाराज ने अपनी उपर्युक्त इच्छा को समाज के तात्कालिक प्रतिष्ठित व्यक्तियों



संस्था के प्राण त्यागमूर्ति श्री मंगलदासजी महाराज



के सम्मुख उपस्थित किया। समाज ने भी इस बात का सहर्ष अनुमोदन किया और इस तरह साधुओं की शिक्षा के लिये एक विद्यालय निर्माण करने के विचार ने कुछ प्रगति की। किन्तु केवल साधुओं की स्वीकृति प्राप्त कर लेने से व प्रस्ताव-मात्र पास कर लेने से ही तो विद्यालय का निर्माण नहीं हो जाता। उसके लिये आगे सक्रिय कदम उठाने की भी आवश्यकता थी। यह भार हमारे चरितनायक पर ही पड़ा। यह भार आप पर डाला गया हो यह बात नहीं। साधुसमाज की अशिक्षा को दूर कर उसे उच्च आसन पर आसीन करने की बलवती आन्तरिक प्रेरणा तथा पूज्यपाद वैद्यजी महाराज की एतद्विषयक हार्दिक भावना ने आपको इसकी रूपरेखा बनाने के लिये प्रेरित किया। इसलिये और व्यक्ति तो विद्यालय-स्थापना के प्रस्ताव को पास कर अपने अपने घर जाकर शांति से बैठ गये व विद्यालय की बात को भूल गये पर आपने वैसा नहीं किया। आपने मेले से लौटते ही अपने परम मित्र श्री कृपारामजी व मनमोहनजी के साथ मिल कर विद्यालय के निर्माण की रूपरेखा तैयार कर डाली और उसे पूज्य वैद्यजी महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उस पर उनकी स्वीकृति प्राप्त होने पर तदनुसार विद्यालय की स्थापना के लिये कार्य भी प्रारंभ कर दिया।

मेले के अवसर पर यह विचार भी किया गया था कि विद्यालय की स्थापना के पूर्व एक लाख रुपया एकत्रित कर लिया जाय जिससे उसके संचालन में किसी प्रकार की आर्थिक बाधा उपस्थित न हो सके। क्योंकि यहाँ केवल विद्यालय ही स्थापित न करना था अपितु एक आदर्श छात्रावास भी। छात्रावास स्थापित करने में भी दो प्रधान कारण थे। पहला यह था कि बिना छात्रावास के साधु विद्यार्थियों को शिक्षा देना असम्भव सा था, और दूसरा यह था कि जो आदर्श व गुण शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी में आने चाहियें वे निरन्तर आचार्य के सहवास के बिना आ नहीं सकते। विद्यार्थी के निर्माण के लिये केवल उसे पुस्तकें पढ़ा देना पर्याप्त नहीं होता, किन्तु रात दिन उसके कार्यों पर तथा चर्या पर गुरु का निरीक्षण व नियंत्रण भी रहना आवश्यक है। इसीसे गुरु के उदात्त व परिमार्जित आदर्श की छाप शिष्य पर पड़ सकती है और वह समाज के लिए उपयोगी, आदर्श स्नातक व नागरिक बन सकता है। यह बात प्राचीन समय की ऋषिकुलप्रथा व गुरुकुलप्रथा पर आधारित छात्रावासस्थापना द्वारा ही हो

सकती है और इसीसे शिक्षा की सार्थकता भी है। अत छात्रावास का सस्थापन भी आवश्यक समझा गया। हमारी तो यह दृढ मान्यता है कि इस विद्यालय की उन्नति का तथा इतने दीर्घ काल तक इसके चलने का श्रेय छात्रावासस्थापना को ही है। छात्रावासके लिये पर्याप्त धनराशिकी आवश्यकता थी। इसलिये पहले धन-सग्रह करने का विचार किया गया पर वह किन्हीं आकस्मिक व अप्रत्याशित विघ्नों के कारण पूर्ण न हो सका और इस तरह कार्य मे विलम्ब होने लगा। अन्त मे अत्यन्त स्वल्प धनराशि पर ही 'क्रियासिद्धि सत्त्वे भवति महता नोपकरणे' इस उक्ति को ध्यान में रख कर ज्येष्ठशुक्ला दशमी को स्वर्गीय श्री केशवदासजी के बागमें इसका श्रीगणेश कर दिया गया। उस समय इसमे लगन से कार्य करने वाले महन्त श्री चैनसुखदासजी डीडवाना तथा श्री कृपारामजी स्वामी भिवानी जैसे उत्साही कार्यकर्त्ता भी मिल गये।

किन्तु किसी सस्थाका जन्म होना व उसका श्रीगणेश कर देना इतना कठिन नहीं है और न उसके लिये क्षणिक उत्साहसे प्रेरित तात्कालिक सहायता देने वाले नि स्वार्थ व्यक्तियो का मिल जाना ही उतना दुष्कर है, जितना उस सस्थाके सचालन के लिये तथा उसमें निहित आदर्शों के लिये नि स्वार्थ भावनासे अपना जीवन अर्पित कर देने वाले व्यक्तियों का। परन्तु ऐसे व्यक्तियों के बिना सस्था का दीर्घ काल तक चलना, उसके आदर्शों व उद्देश्यो की रक्षा होना व उसमें सफलता प्राप्त करना सर्वथा असभव है। वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाय तो ऐसे नि स्वार्थ व आदर्श व्यक्तियो का जीवन ही सस्था का रूप धारण करता है। जैसे तेल ही जल कर प्रकाश बनाता है और आस पास की सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने जीवनदानसे प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ऐसे व्यक्ति के जीवनसमर्पण से ही सस्थाओं का निर्माण व सचालन होता है और उनके उस जीवनरूपी स्नेहसे ही उसमे पैदा होनेवाले स्नातकज्योतियोका भी निर्माण होता है।

इस सस्था मे भी ऐसे व्यक्ति का अभाव था। दूसरा कोई व्यक्ति इस तरह का दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अत पूज्य श्री वैद्यजी महाराज की प्रेरणा से व साधुसमाज के उत्थान की बलवती इच्छा से प्रेरित होकर हमारे चरितनायक ने यह भार अपने सबल कन्धो पर कुछ समयके लिए लेने का सकल्प किया। तभीसे इस विद्यालयके साथ आपके सम्बन्धका प्रारभ हुआ था जो आज तक अविच्छिन्न

भाव से विद्यमान है। न मालूम, कितने कार्यकर्ता आये और कितने चले गये, कितने ही अध्यापक आये और चले गये; इसी प्रकार कितने ही विद्यार्थी आये और अध्ययन समाप्त कर योग्य बन कर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होगए परन्तु आप अभी तक उसी प्रकार कार्यनिरत हैं जैसे कि प्रारंभ में थे।

विद्यालय के साथ अपना संबंध स्थापित करते ही एक आदर्श संस्था का निर्माण करने वाले व्यक्ति के जीवन में किन किन गुणों का होना आवश्यक है जिससे उस संस्था में रहने वाले विद्यार्थियों का नैतिक स्तर उन्नत हो सके, यह तथ्य आपके ध्यान में था, और यह भी ध्यान में था कि जब तक संस्था-संचालक, स्नातकों का निर्माणकर्ता प्रधान व्यक्ति स्वयं अपने जीवन में उन गुणोंका आधान नहीं कर लेता तबतक वह केवल वाचिक उपदेश से ही आदर्श विद्यार्थियों व स्नातकों का निर्माण नहीं कर सकता; और न उनमें उच्चचरित्रका ही आधान कर सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आपने अपने जीवनक्रम को सरलता, सहिष्णुता, त्याग, तपस्या, कर्मशीलता व सच्चरित्रता आदि गुणोंसे युक्त किया। यद्यपि ये गुण आपमें प्रारंभ से ही थे, क्योंकि जो गुण मनुष्य में प्रकृतितः या बाल्यावस्था में नहीं होते उनको मनुष्य सहसा युवावस्थामें जो कि प्रायः सर्वविध अनर्थों की जननी व प्रेरयित्री है, और जो प्रकृतितः विद्यमान गुणों को भी अपने प्रभाव से स्वसत्ताकाल में तिरोहित करने वाली है—प्राप्त नहीं कर सकता। फिर भी स्वतंत्र जीवनयापन के समय व्यक्ति में, जो स्वतंत्रता, स्वच्छन्दता व मिथ्या अपवाद की असहिष्णुता आदि प्रवृत्तियाँ होती हैं उनका भी आपने विद्यालय-जीवनमें प्रवेश करते ही सहसा परित्याग किया और उनके स्थानमें सामाजिक जीवनके उपयोगी आदर्श गुणों का जिनमें त्याग, सहिष्णुता व सादगी का स्थान सर्वोपरि है—अपनाना प्रारंभ कर दिया। यहीं से आपका वास्तविक त्याग शुरू हुआ और वह त्याग यहाँ तक बढ़ा कि आपने लोकहितार्थ अपनी महत्वाकांक्षाओं, अपने भविष्य, अपने सुख, अपनी कीर्ति, अपने पद व अपने जीवन का भी समर्पण कर दिया।

सर्वप्रथम विद्यालय में प्रवेश करते ही आपको अपना लौकिक सुख, स्वच्छन्दता व स्वतन्त्रता का तो बलिदान करना ही पड़ा, किन्तु अपनी शिक्षा का भी परित्याग करना पड़ा जिसको प्रत्येक मनुष्य किसी भी स्थिति में छोड़ना

पसन्द नहीं करता। आप उस समय शास्त्री परीक्षा के पाठ्यविषय का अध्ययन कर चुके थे और शास्त्री परीक्षा में बैठने वाले थे, पर उस वर्ष आप महात्मा गाँधी के परीक्षाबहिष्कार आन्दोलन के कारण परीक्षा मे नहीं बैठ सके और बाद में इस विद्यालयके कारण। क्योंकि विद्यालय अभी नवीन था और उसमें इसी समय सबसे अधिक कार्य करने की आवश्यकता थी। अपनी परीक्षा का कार्य करते हुये इस नवजात विद्यालय के स्वरूप का उचित निर्माण करना असभव था। इन दो कार्यों में एक ही कार्य पूरा हो सकता था दोनों नहीं। इनमें किसको प्राथमिकता दी जाय यही विवेकी पुरुष के विवेक की कसौटी थी। यदि कोई साधारण पुरुष होता तो यही सोचता कि पहले परीक्षा पास करली जाय, बादमें यह कार्य भी सम्पन्न कर लिया जायगा। किन्तु ऐसा करने से इस विद्यालय की कितनी हानि होती, और उस प्रारम्भिक काल की हानि का असर आगे जाकर कितना होता इसका अनुमान नवीन सस्था का निर्माण करने वाला पुरुष ही लगा सकता है प्रत्येक नहीं। आप इसके महत्त्व को समझते थे। क्योंकि आपकी बुद्धिमें इसके भावी स्वरूप के निर्माण की रूपरेखा थी। अत आपने समाजहित के लिए अपनी महत्त्वाकाक्षा का बलिदान कर विद्यालय के कार्य को प्राथमिकता दी और यह आदर्श स्थापित किया कि समाजहित के सम्मुख अपने हितों का बलिदान करना ही उचित है यदि वस्तुत मनुष्य के हृदय में समाजहित की भावना है तो।

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि इस सस्थाके निर्माण करने वालोंका उद्देश्य साधुसमाज मे केवल शिक्षा का प्रचार करना और शिक्षित क्लर्क पैदा करना नहीं था, किन्तु भारतीय सस्कृति तथा तन्मूल सस्कृत भाषा और विशेषत साधुसस्कृति और दर्शन शास्त्रोंके सरक्षक स्नातकों का निर्माण करना था। इस बातके लिये इस पृथक् विद्यालय की तथा इसके साथ छात्रावास की स्थापना की गई थी। हमारे चरितनायक ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यार्थियों की दिनचर्या, वेशभूषा, रहन-सहन, सदाचार तथा छात्रावासके नियम इसी तरह के रक्खे थे जिससे मूल उद्देश्य की समयानुसार सामान्यत पूर्ति हो सके।

सादा रहन सहन, आश्रम जैसा वातावरण, सफेद सीधी साधी व तड़क भड़क से रहित साधुओं जैसी वेशभूषा इसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। विद्या-

र्थियों को शहर के दूषित वातावरण से व सिनेमा आदिसे भी दूर रक्खा जाता है। धार्मिक शिक्षा उनके लिये अनिवार्य रक्खी गई है। प्रातः सायं ईश्वरोपासना व पूजा पाठ आदि का अनिवार्य नियम है। प्रातः ४ बजे से रात्रि के ६ बजे तक का उनका कार्यक्रम नियत व व्यवस्थित है।

केवल नियम बना देना एक सरल बात है किन्तु उसका पालन करवाना अत्यन्त कठिन हो जाता है जब तक कि प्रबन्धक अथवा अध्यक्ष स्वयं उसका निरीक्षण नहीं करता। हमारे चरितनायक ने इस कार्य में अभूतपूर्व कर्तव्यनिष्ठा व तत्परता का परिचय दिया है। विद्यार्थियों का प्रातःकाल ४ बजे से लेकर रात्रि तक का कार्यक्रम उन्होंने अपनी देख रेखमें रक्खा है। विद्यार्थियों का कौनसा ऐसा कार्य होता है जो उनको विदित न हो। पाठकों को यह पढ़कर व सुनकर आश्चर्य होता होगा कि एक व्यक्ति किस तरह एकाकी इतना कार्य कर सकता है, किन्तु वे इस बातका विश्वास करें कि उपर्युक्त तथ्य तथ्य है और सर्वथा अतिशयोक्ति व उत्प्रेक्षा अलंकार की परिधि से बहिर्भूत तथा असंस्पृष्ट है। जिनने पहिले विद्यालय का निरीक्षण किया है वे महानुभाव इस बात के साक्षी हैं। उनमें से एक दो के विचार पाठकों को 'विद्यालय - विषयक सम्मति' प्रकरण में पढ़ने को मिलेंगे। इस कार्य के लिये मनुष्य को कितना आत्मसंयम करना व व्यवस्थित रहना पड़ता है यह किसी से छिपा हुआ नहीं है।

आपने इस कार्य के लिये सहायक व्यक्तियों का भी उपयोग किया है जिनके नाम विद्यालय-प्रकरण में कार्यकर्ताओं के परिचय में आये हैं, किन्तु उनकी स्थिति अति स्वल्पकाल तक रही है और उससे कार्य में विशेष प्रगति नहीं हुई अपितु बार बार सहायकों के परिवर्तन व उनके अपरिपक्व विचारोंके कारण समय समय पर कार्य में कुछ हानि भी पहुँची है।

आधुनिक समय की भौतिकता व नास्तिकता-प्रधान विचारधारा से, वैदेशिक शिक्षा व संस्कृति से जन्य चाकचिक्यमयी कृत्रिम सभ्यता के प्रभाव से विद्यार्थियों को बचाने के लिए आपने सदा सांस्कृतिक व धार्मिक शिक्षा को किसी न किसी रूपमें अक्षुण्ण रक्खा है।

भारतीय संस्कृति व धार्मिकता का पूर्ण ध्यान रखते हुए भी आपने प्राचीनता के अंध पक्षपाती व्यक्तियों की तरह विद्यार्थियों को आधुनिक उपयोगी

तत्त्वों से व राष्ट्रीयता से शून्य नहीं रक्खा है। आप स्वय राष्ट्रीय व्यक्ति हैं। आपने चम्पारन जिले मे गान्धीजी द्वारा सर्वत प्रथम सञ्चालित विहार के दुर्भिक्षनिवारण आन्दोलनमे भाग लिया है। आप गान्धीजी के तथा खादीके पूर्ण भक्त व राष्ट्रीयता के पक्के पुजारी हैं। आपने विद्यार्थियो में इस भावना का पूर्ण समावेश किया है और विद्यार्थियों के वेष में भी बहुत समय तक शुद्ध खादी का उपयोग करवाया है। राष्ट्रीय विचारधारा के साहित्य का अध्ययन पर्याप्त मात्रा में किया है, और उस साहित्य का विद्यालय के पुस्तकालय मे भी समावेश किया है। इस कार्य से एक बार विद्यालय को अंग्रेजी साम्राज्यवाद के समय हानि भी उठानी पडी, पर आप उसको राष्ट्र का कार्य मान कर उससे कभी विचलित न हुए। हाँ, विद्यालय को हानि से बचाने के लिये प्रत्यक्ष तौर पर निषिद्ध साहित्य का पुस्तकालय से निष्कासन कर दिया।

आपने ऊँच, नीच, धनी, गरीब, जाति पाति आदि की भावना को सदा हेय समझा है। स्वय उससे कार्यरूप में दूर रहे हैं, और विद्यार्थियों व विद्यालय में इस भावना का बिल्कुल भी प्रवेश नहीं होने दिया है। विद्यालय मे सभी विद्यार्थियों का एक सा रहन सहन, एक सी वेष-भूषा, एकसा आहार-विहार और एकसा व्यवहार रक्खा जाता है, चाहे वह विद्यार्थी लखपति, महन्त व सन्त का हो अथवा किसी कौपीनमात्रावशेष निर्धन व्यक्ति का।

मनुष्य का निर्माण ज्ञान और क्रिया दोनों से हुआ है। उसके पोषण के लिये भी दोनो तत्त्वों की आवश्यकता है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा' इत्यादि श्रुतियाँ 'उभाभ्यामेव पक्षाभ्या यथा खे पक्षिणो गति । तथैव ज्ञान-कर्मभ्यां ' इत्यादि स्मृतियाँ ज्ञान के साथ साथ कर्म की अवश्योपादेयता बतला रही हैं। दोनो के विकास के बिना मनुष्य का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। अत कर्मठताके विकास के लिए आश्रम का सभी कार्य विद्यार्थियो द्वारा स्वय अपने हाथोंसे पूरा करनेका नियम भी रक्खा गया। आश्रमके सभी कार्य भोजन बनाना, जल भरना, लकडी चीरना, वृक्ष सींचना गोसेवा करना, सफाई करना आदि—विद्यार्थियो को ही करने पडते हैं। परीक्षा के अवसर पर समय की बचत के लिए भोजन बनाने के लिए अन्य व्यक्ति रख लिये जाते हैं। किन्तु इसके साथ ही इस बात का भी दिग्दर्शन कराना अत्यावश्यक है कि विद्यार्थियो में स्वत

स्वकार्यसंपादनभावना को प्रोत्साहित करने के लिए आप विद्यार्थियों से भी अधिक मात्रा में आश्रम का कार्य स्वयं करते हैं। आप अपना कार्य तो छोटे से लेकर बड़े तक स्वयं अपने हाथसे करते ही हैं परन्तु आश्रम के प्रत्येक कार्य में भी पूर्ण भाग लेते हैं। आश्रम का ऐसा कौनसा कार्य होगा जिसमें कि आपका सक्रिय सहयोग न हो। समय समय पर आप भोजन बनाते हैं, दूध दुहते हैं, बिलौना करते हैं, गोसेवा करते हैं, वृक्षसिंचन करते हैं और सफाई आदि का कार्य भी करते हैं। अन्नादि तथा बाजार का अन्य सामान खरीदने का कार्य आप स्वयं करते रहे हैं। ऐसे आदर्श कर्तव्यशील पुरुष का प्रभाव कर्मचारियों व विद्यार्थियों पर भी किसी न किसी अंशमें पड़े बिना कैसे रह सकता है? यही कारण है कि विद्यालय का आलसी से आलसी स्नातक व विद्यार्थी भी अन्य आधुनिक विद्यार्थियों की अपेक्षा क्रियाशील होता ही है, एवं वह अपने जीवनसंबंधी प्रत्येक सामान्य कार्य अपने हाथ से करने में समर्थ होता है।

विद्यार्थियों पर आपका अपार स्नेह है। आपने अति घोर अपराध करने वाले विद्यार्थियों को भी न कभी विद्यालय से निकाला और न अपने मन में उनके प्रति क्षण भर भी अहितबुद्धि या दुर्भावना पैदा होने दी। जो विद्यार्थी अज्ञान से मुग्ध बन कर आपकी निन्दा या अवहेलना करते हैं उनके प्रति भी आपकी हितभावना ही रहती है और आपत्ति आने पर उन विद्यार्थियों की भी सदा निर्विकार रूप से सहायता करते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक विद्यार्थी समक्ष आने पर आपको अति श्रद्धा व पूज्य दृष्टिसे ही देखता है चाहे उसकी दूसरे व्यक्तियों के प्रति कैसी भी भावना क्यों न हो?

अध्यापकों के प्रति भी आपका संबंध अत्यन्त अनुकरणीय व मधुर रहा है। और संस्थाओं में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि प्रबन्धक व अध्यापकों में अनबन हो जाती है और उसी के फलस्वरूप अध्यापकों को उस संस्था से त्याग-पत्र देना पड़ता है। कठिनता से ही कहीं ऐसा होगा कि चिरकाल तक किसी प्रबन्धक व अध्यापकवर्ग का समन्वयात्मक सामञ्जस्य रह सका हो। किन्तु केवल आपके कारण यह संस्था इस प्रचलित रूढि का सर्वथा अपवाद रही है। इस संस्था में प्रारम्भ से अब तक बीसियों अध्यापक आकर जा चुके हैं किन्तु एक भी अध्यापक ने संस्था का परित्याग इस

कारणसे नहीं किया कि उसका प्रबन्धकके साथ ऐकमत्य नहीं था, अथवा प्रबन्धक का उसके प्रति दुर्व्यवहार था।

आपका प्रत्येक अध्यापक के साथ इतना समन्वय रहा है कि वह आपको अपना परम हितैषी, मित्र तथा आदरणीय मानता रहा है। आपने किसी अध्यापक के मनमें इस भावना को पैदा ही नहीं होने दिया कि वह आपके आधीन है। आपने अध्यापक को अध्यापक की दृष्टि से देखा है। इसी भावना से उसे सर्वदा आदरणीय समझा है और वेतनक्रीत कार्यकर्तामात्र कभी नहीं, जैसा कि प्राय संस्थाओं के प्रबन्धक व अन्य सरकारी संस्थाओं के अधिकारी समझा करते हैं। आपने अध्यापकों के कार्य में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। प्रधानाध्यापक के तथा अन्य अध्यापकों के पूछने पर एव आवश्यकता पडने पर अध्यापन के विषय में संस्था के हित के उपयोगी अपने विचार अवश्य व्यक्त कर दिये हैं, किन्तु अपने विचारों को, अपनी अध्यापनसरणिको या अन्य किसी बात को अध्यापकों से अधिकारपूर्वक मनवाने का कभी प्रयत्न नहीं किया। कार्य ठीक होना चाहिये, विद्यार्थियों की अध्ययनके साथ व्युत्पत्ति बढनी चाहिए यही आपका लक्ष्य रहा है। इसके लिए चाहे किसी भी अध्यापनशैली को अपनाया जाय इसमें आपका किसी प्रकारका आग्रह आज तक नहीं रहा है। आपने अध्यापकों पर सर्वदा विश्वास किया है। उनके कार्य का उत्तरदायित्व उन्हीं पर छोडा है। इस सद्भावना व विश्वासपूर्ण नीति के कारण अध्यापकवर्ग भी इतना प्रभावित हुआ है कि उसने विश्वास और निष्ठा के साथ अपना कार्य पूरा किया है और कभी संस्था को या आपको धोखा नहीं दिया।

आपकी अध्यापकों के प्रति इस नीति और अकृत्रिम सत्य व्यवहार का अध्यापकों पर इतना प्रभाव पडा कि इस महाविद्यालय के ज्ञानस्तम्भ और सब से अधिक ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध व धर्मवृद्ध गुरुवर्य स्वर्गीय प० रामचन्द्रजी महाराज भी आपको एक आदर्श, सरल व निष्कपट देवपुरुष मानने लगे। बहुत बार उनने स्पष्ट शब्दोंमें इस बातको कहा भी था। वे आपके व्यवहारसे अतिसतुष्ट थे। वे इस बात को कहा करते थे कि स्वामी मंगलदासजी न हों तो मेरे जैसे व्यक्ति का इतने दिनों तक इस संस्था में निर्वाह होना अति कठिन था। उनकी यह बात चाटूक्ति व अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं थी। वे स्वल्पकाल में ही कितनी ही सरकारी, अर्धसरकारी

व गैरसरकारी संस्थाओं का इसी विरोध के कारण स्वाभिमान-रक्षार्थ परित्याग कर चुके थे। यहीं आकर आपके व्यवहार के कारण वे गोलोकवासपर्यन्त रह सके। यहां आने के बाद उनने बनारस से आये हुए सम्माननीय प्रधानाध्यापक पद तक को ठुकरा दिया। उसका एकमात्र कारण हमारे चरितनायक का सभ्य व आदरणीय व्यवहार तथा उनके व्यक्तित्व का आकर्षण ही था।

कार्यकर्त्ताओं के प्रति भी आपका व्यवहार बहुत ही अच्छा रहा है। प्रारम्भ से लेकर आज तक कितने ही सहायक कार्यकर्त्ता छात्रावास में कार्य कर चुके हैं किन्तु किसी को भी आपके व्यवहार से आज तक असन्तोष नहीं हुआ। आप कार्यकर्त्ताओं को अपना घर का-सा व्यक्ति मानते रहे हैं। उन पर भी आपने किसी प्रकार का अविश्वास नहीं किया। उनके प्रति आपका व्यवहार अत्यन्त भद्र व सुन्दर रहा। सहायक कार्यकर्त्ता होने पर भी उनको यही प्रतीत होता था कि वे यहाँ के सर्वेसर्वा उच्च अधिकारी हैं। आपने उनके भी काम में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। कोई त्रुटि भी होती तो बड़ी ही शांति से उन्हें समझा देते और उस बात को अन्य व्यक्ति के सामने प्रकट भी नहीं होने देते थे। कार्यकर्त्ताओं में ऐसे भी कार्यकर्त्ता हैं जिनने छात्रावास व विद्यालय के अन्य व्यक्तियों से रुष्ट होकर विद्यालय छोड़ा है फिर भी उनमें से एक को भी आपके प्रति आज भी किसी प्रकार की शिकायत नहीं है।

यही दशा कर्मचारीवर्ग के साथ रही है। आपने कर्मचारियों से कार्य लिया है किन्तु कभी भी उन्हें यह अनुभव नहीं होने दिया कि हम इनके वैतनिक कर्मचारी हैं। आपने स्वयं उनके कार्य में हाथ बँटाया है, उन्हें सहायता दी है, और अब भी देते रहते हैं। रोगी होने पर उनके लिये निःशुल्क पथ्य औषध व परिचर्या की व्यवस्था भी करते हैं इसतरह उनके साथ आप घरेलू व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हैं। ऐसा उदार व भद्र व्यवहार कर्मचारीवर्ग के साथ आपका रहा है। यही कारण है कि प्रत्येक कर्मचारी आपसे सदा सन्तुष्ट रहता है और समय पड़ने पर आपके आदेश का कभी भी उल्लंघन नहीं करता।

उपर्युक्त रीति से आपने इस महाविद्यालय व छात्रावास रूपी यन्त्र के घटक प्रत्येक अंग में अपने सौजन्य व औदार्यपूर्ण व्यवहारकुशलता तथा

अपने परिमार्जित विवेक से एक अद्भुत प्रेरणा व चेतना का सञ्चार किया है, तथा उन घटकों को मिला कर निरन्तर कार्यसिद्धि के लिये उन्हें प्रेरित किया है। समय समय पर सद्विमर्शरूपी व आशारूपी तैल भी उन पुर्जों मे दिया है जिससे वे निरन्तर अपना कार्य कर सकें।

इस तरह आप इस महाविद्यालय के अजातशत्रु व्यक्ति रहे हैं। इसमे किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है। इसका यह सर्वथा अभिप्राय नहीं है कि आप से कोई भी किंचित् मतभेद न रखता हो। क्योंकि अजातशत्रु के भी सर्वथा शत्रुओं का अभाव न था। विद्यालय के अध्यापकों तथा छात्रावास में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं मे परस्पर एकरूपता स्थापित करना तथा उनमें किसी तरह का सघर्ष न होने देना भी आपके ही कुशल नेतृत्व का परिणाम है। अन्यथा इस सस्था मे विद्यालय व छात्रावास के एक स्थान में होने से और परस्पर कार्यों के सम्बद्ध होने से सघर्ष का बहुत अवसर था और यह अवसर उग्ररूप धारण कर सस्था को नष्ट करने में भी समर्थ हो सकता था।

जिस तरह आपने विद्यालय व छात्रावास के कार्यकर्त्ताओं मे एकरूपता व समन्वय स्थापित करते हुये अपनी बुद्धिकौशल से इस विद्यालय को उन्नति की तरफ अग्रसर करने का सफल प्रयास किया, उसी तरह इस महाविद्यालय के दूसरे पहलू अर्थ के नियन्त्रण के द्वारा भी आपने विद्यालय को अग्रेसर किया। विद्यालय में अर्थ की न्यूनता प्रारम्भ से थी। अत्यल्प धनराशि के सहारे ही इसे प्रारम्भ कर दिया था। स्वर्गीय पूज्यपाद बाबाजी श्री सेवारामजी महाराज ने अपनी प्रेरणा से महाविद्यालयरूपी रथ के इस पहिये की पर्याप्त रक्षा की तथापि इस रथ का वह पहिया प्रारम्भ से पर्याप्त कमजोर था। अन्य कार्य सब उसी पर निर्भर था, अत इस पर सावधानी व सतर्कता से नियन्त्रण रखने वाले एव उससे समयानुसार विवेकपूर्वक काम लेने वाले कुशल अर्थशास्त्री की आवश्यकता थी। इस कार्य को भी हमारे चरितनायक ने ही सभाला। आपने उस अर्थ का इस कुशलता से व मितव्ययिता से उपयोग किया कि कार्य यथावत् चलता रहा और उसमें किसी प्रकार की न्यूनता अर्थ के कारण न आ सकी। कुशलता से धनराशि की रक्षा करते हुये सस्था के लिए एक स्थायी जायदाद भी खरीद दी जिससे भविष्य में सामान्यरूप से इसके चलाने में आर्थिक बाधा न आ सके।

द्वितीय महायुद्धकाल में व उसके बाद वस्तुओं की महार्घता ने अतीव विकराल रूप धारण किया। इसी अवसर पर जो विशेष सहायता संस्थाको मिलती थी वह भी मिलनी बन्द हो गयी। पन्द्रह वर्ष के इस भयंकर महार्घता के समय में इस विद्यालय को उसी रूप में चला देना आपका ही काम था। इन राशन व कन्ट्रोल आदि भयंकर ग्राहों से परिपूर्ण अर्थकृच्छ्रतारूपी समुद्र से विद्यालयरूपी नौका को पार करने का श्रेय आप जैसे सुयोग्य कैवर्तक को ही है। इस समय कोष-व्यवस्था को आपने सीधे अपने नियन्त्रण में रक्खा और समय पर अन्न वस्त्र आदि के क्रय की व्यवस्था द्वारा तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों से प्राप्त विशेष-सहायता द्वारा उस सूत्र को इस कुशलता से संचालित किया कि सुगमता से धीरे धीरे पूरे पंद्रह वर्ष का कठिन समय निकल गया। अभी भी वही हालत है और ध्यान से देखा जाय तो उससे भी विषम है। क्योंकि अब इस विद्यालय का आर्थिक स्तम्भ भी कालचक्र के प्रभाव से टूट चुका है। अतः ऐसे समय में इस विद्यालय का परित्राण आपकी कुशल अर्थशास्त्रिता व मितव्ययिता तथा दानी सज्जनों की उदार-हृदयता पर ही निर्भर है।

उपर्युक्त रीतिसे आपने विद्यालय की स्थापना, छात्रावासस्थापना, उनकी प्रबन्धव्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था द्वारा ही इस विद्यालय का निर्माण नहीं किया किन्तु ज्ञानप्रदानद्वारा भी इसका निर्माण किया। विद्यालय में प्रारंभ से आप हिन्दी व संस्कृत की शिक्षा विद्यार्थियों को देते रहे हैं और जब विद्यार्थी कुछ शिक्षित होकर विभिन्न विषयों में आगे की श्रेणियों में पढ़ने योग्य हुए तब से निरंतर आयुर्वेद विषय का अध्यापन कार्य आप ही कर रहे हैं। विद्यालय से जितने भी विद्यार्थियोंने आयुर्वेदविषयक शिक्षा प्राप्त की है वह आपसे ही की है। आपने आयुर्वेद विषय का गहन अध्ययन आचार्यपर्यन्त आयुर्वेदमार्तण्ड स्वर्गीय श्री लक्ष्मीरामजी महाराज से किया है और उसका पर्याप्त मनन किया है। आप से पढ़ने वाले विद्यार्थियों को आपके चिरकाल से अर्जित अनुभूत ज्ञान का लाभ हुआ है। आपकी अध्यापनशैली अतीव सरल, सुबोध व हृदयग्राहिणी है। जिससे विद्यार्थी पढ़ने के बाद कठिन से कठिन विषय को सरलता से ग्रहण कर लेता है।

इस तरह संरक्षकता, प्रबन्धकता, अर्थव्यवस्था तथा ज्ञानप्रदानद्वारा आपने इस विद्यालय के आधारभूत चारों स्तम्भों का पोषण किया है और वर्तमान

में भी कर रहे हैं। यही कारण है कि तीन स्तम्भों के कालकवलित हो जाने पर भी यह विद्यालय अपना कार्य अभी सामान्यतया पूरा कर रहा है। इतना सब कार्य करते हुये भी आपने आज तक विद्यालय से एक पैसा भी नहीं लिया। यहाँ तक कि अपना भोजनाच्छादन तथा यात्रादि जन्य सभी प्रकार का व्ययभार आप स्वयं सहन करते हैं। इतना त्याग इस समय में शायद ही कहीं दृष्टिगोचर हो।

आप अत्यन्त मितव्ययी हैं। प्रत्येक कार्य में आप की मितव्ययिता देखी जा सकती है। आप शरीरनिर्वाहार्थ आवश्यक भोजनाच्छादनादिमें भी कमसे कम व्यय करते हैं। सादा भोजन, सादी वेषभूषा इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। यही कारण है कि आप बहुत कम खर्चे में अपना काम चलाते हैं और उसमें से भी कुछ भाग बचाकर दीन हीन जनों की सहायतामें, अवसर आने पर, देते रहते हैं।

कुटुम्ब, घर, धन, शरीर आदि का मोह छोड देने के बाद भी यह देखा जाता है कि एक वस्तु का परित्याग प्राय बडे बडे त्यागियों से भी नहीं हुआ करता। उस वस्तु की इच्छा उनको भी बनी रहती है और वह वस्तु है यश अर्थात नाम। बडे बडे त्यागी भी इस यशोलिप्सा के बन्धनको तोडनेमें असमर्थ रहते हैं। वे इसके लिए नाना उपाय करते हैं पर हमारे चरितनायक ने इस बलवती यशोलिप्साका भी त्याग कर दिया है। वे सदा यश व प्रशंसासे कोसों दूर रहते हैं और आप इससे बचने के लिये सतत प्रयत्नशील रहते हैं। बहुतसे ऐसे कार्य हैं जिनको आपने संपन्न किया है किंतु नाम दूसरेका है। श्री दादूमहाविद्यालय का मन्त्रित्व, श्री दादूदयालुमहासभा का बहुत सा कार्य, अनेक सामाजिक ट्रस्टों का कार्य, राजस्थान आयुर्वैदिक सम्मेलनका बहुतसा कार्य तथा सम्मेलन पत्रिकाका सम्पादन कार्य आदि कितने ही ऐसे कार्य हैं जिनका सम्पादन आपके द्वारा हो रहा है। किंतु उनके पदाधिकारियों में कभी आप अपना नाम तक नहीं देते। इसी तरह कितनी ही बार राजपूताना आयुर्वेदिक सम्मेलन के सभापतित्वपद के लिये आपका निर्विरोध चुनाव हो चुका है किन्तु आपने उसे कभी स्वीकार नहीं किया। क्योंकि आप निःस्वार्थ भावना से जनसेवा अपना ध्येय समझते हैं, यशोभागी बनना नहीं।

इसके अतिरिक्त संक्षेप में एक दो बातों का उल्लेख कर देना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। इस महाविद्यालय के संस्थापन व संचालन में प्रमुख भाग लेकर साधु समाज का जो उपकार आपने किया है वह तो किसी से तिरोहित है ही नहीं।

किन्तु अन्य तरीकों से भी दादूसम्प्रदाय की उन्नति के लिए जो सेवायें आपने की हैं वे भी कम महत्त्वशालिनी नहीं हैं। श्री दादूदयालु महासभा का पुनरुज्जीवन, श्री दादूचतुःशताब्दी का सफल व स्तुत्य आयोजन, नरेना में श्रीदादूद्वारा में श्री दादूजी महाराज के मंदिर का संस्करण, हरिद्वार, बनारस, आमेर आदि स्थानों में मन्दिरों व मठों की सुव्यवस्था एवं सामाजिकस्थानसंरक्षण आदि अन्य बहुत से ऐसे कार्य हैं जिनमें आपका पूर्ण हाथ रहा है। इन कार्यों को आपके सुपरिपक्व व परिमार्जित मस्तिष्क की उपज बतलाया जाय तो किसी प्रकार की अत्युक्ति न होगी।

इतना ही नहीं इन सब कार्यों को करते हुए आपने जो सब से महान् और स्थायी सेवा दादूसमाज की की है व कर रहे हैं वह है शताब्दियों से दादूसमाज के प्राचीन महात्माओं व कवियों द्वारा निर्मित साहित्य का सङ्कलन तथा प्रकाशन। आपने बड़े परिश्रम से इस सम्पूर्ण सन्तसाहित्य का सङ्कलन किया है, उसे सुव्यवस्थित किया है और अब शनैः शनैः यथाशक्य उसका संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं।

यह साहित्य प्रकाशित होने पर हिन्दी साहित्य व राष्ट्र के लिए एक अभूतपूर्व देन प्रमाणित होगी और इससे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। श्री बखनाजी की वाणी, श्री गरीबदासजी की वाणी, एवं पञ्चामृत आदि कतिपय पुस्तकों का अभी तक आप संपादन व प्रकाशन कर भी चुके हैं।

किंतु इस दिशा में आपका जो सबसे नवीनतम प्रकाशन है वह श्री दादूवाणी है। इसका संपादन आपने बड़े परिश्रम से किया है। और जनसाधारण के बोध के लिए इस पर एक सुन्दर, कठिन शब्दों, पदों व साखियों के अर्थ को स्पष्ट करने वाली टिप्पणी भी की है।

वर्तमान में आप इस महाविद्यालय के संचालन व आयुर्वेदाध्यापन के साथ साथ आयुर्वेदक्षेत्र व सन्तसाहित्यके क्षेत्रमें भी पर्याप्त कार्य कर रहे हैं। राजस्थान में इस समय आयुर्वेद की जागर्ति व प्रचार करने वाले व्यक्तियों में आपका प्रमुख स्थान है।

श्री दादू महाविद्यालय की कुछ प्रशंसनीय

सम्मतियां

जयपुर स्टेट के ताजीमी सरदार, भूतपूर्व शिक्षासचिव

ठा० श्री नरेन्द्रसिंहजी, जोबनेर

मैने महाराज लक्ष्मीरामजी स्वामी के साथ जयपुरीय श्रीदादू-महाविद्यालय और उससे सम्बन्धित छात्रावास आदि का अनुशीलन किया। मुझे वस्तुतः बड़ी प्रसन्नता हुई। संस्कृत विद्या के पुनरुद्धार को कितनी आवश्यकता है यह अविदित नहीं है। इस पाठशाला से संस्कृत विद्या का व मुख्यतया श्रीदादूपन्थी संसार का बड़ा उपकार होगा। जहां तक मैं जानता हूँ इस समाज की यह प्रथम पाठशाला ही है जो इतने बृहत् पैमाने से कार्य्य कर रही है। जयपुर नगर को व ढूंढ़ाहर को गौरव है कि महाराज दादूजी का यह प्रान्त लीलाक्षेत्र रहा, व वस्तुतः व्यक्तिगत रूप से मेरा भी इस समाज से बहुत सम्बन्ध रहा है। नरेना हमारी राजधानी थी, व भैराणां भी हमारे अन्तर्गत था जो दोनों स्थान इस समाज के सर्वोपरि तीर्थ समझे जाते हैं। मेरे पुरुषा राजा भोजराजजी का इस पंथ से चोलीदावण का सम्बन्ध रहा है। इस समाज का यह भागीरथ प्रयत्न देखकर मेरा अत्यन्त हर्ष राजकीय व शिक्षा की दृष्टि के अतिरिक्त नैसर्गिक सम्बन्ध भी रखता है।

इस समाज ने जयपुरेश के पुण्य को ही नहीं बढ़ाया है पर व्यापार व्यवसाय के साथ युद्धक्षेत्र में भी कम खून नहीं बहाया है। शिक्षा की कुछ कमी थी। पर आशा है इस वृक्ष से मीठे फल निकल कर और भी ज्यादा ठोस काम करने को अग्रसर होंगे।

महाराज स्वनामधन्य रतिरामजी की गादी भी धन्यवादार्ह है जिन्होंने ऐसा सुन्दर स्थान इस संस्था के हाथ में रखा। इस पंथ को गौरव है कि महाराज स्वामी लक्ष्मीरामजी इस नाव के कर्णधार

है जिनके प्रयास से यह संस्था चल निकली है। स्वामी मङ्गलदासजी को भी कम श्रेय नहीं है जो साधुका खास कर्तव्य पूर्ण करते हुये सात्विक, अथक और स्वार्थरहित सेवा कर रहे हैं। काषायवस्त्र धारण किये हुये साधु समाज पर भारत की बडी आशा अवलम्बित है और इस योग्य विद्वान् ऐसी संस्था से बन सकेंगे।

आशा करता हूँ अब के इसे और भी समुन्नत देखूंगा।

जोबनेर
१८-६-३०

नरेन्द्रसिंह खंगारोत

जयपुर स्टेट के ताजीमी सरदार
श्रीदेवीसिंहजी, चौमूं

आज मैंने श्रीस्वामी लक्ष्मीरामजी के साथ श्रीदादूमहाविद्यालय का निरीक्षण किया। जो कुछ मैंने यहा देखा उससे मेरे चित्त को आनन्द हुआ। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य दादूपन्थी साधुओं को ऐसी शिक्षा देने का है, जिससे वह इस पन्थ के संस्थापक महात्मा श्रीदादूदयाल के सच्चे अनुयायी कहलाने के योग्य बनकर जीवन को सार्थक बना सके और अपने आदर्श चरित्रों द्वारा जनता मे गौरव के पात्र बनें। उद्देश्य अति प्रशसनीय है और इसकी सफलता के लिये उद्योग भी उत्साह से हो रहा है। मुझे पूर्ण आशा है कि यदि इसी उत्साह के साथ कार्य होता रहा तो वह

समय अधिक दूर नहीं है जब कि इसका प्रकाश दूर दूर फैलकर दादूपन्थियों को गुरु की शिक्षा के असली तत्व समझा कर अपने अपने जीवन को आदर्श रीति से व्यतीत करने पर आरूढ़ कर देगा। परन्तु इस संस्था की आर्थिक स्थिति पर दृष्टि डालने से मुझे अत्यन्त खेद होता। । मैं जानता हूँ कि श्रीस्वामी दादूदयाल ने जो अमूल्य उपदेश किये हैं उनमें से परापेक्षी न होना एक मुख्य उपदेश है। ऐसे साधुओं की संस्था ऐसी दयनीय रहे यह आश्चर्य की बात है।

श्रीमद्दादूमतावलम्बी सभी साधुओं का प्रधान कर्तव्य है कि जिस संस्था द्वारा उनके मत का तथा लोक का इतना हित होने की सम्भावना है उसको स्वतन्त्ररूप से चलने योग्य बनाने और हमेशा बनाये रखने का अपनी शक्तिभर यत्न करें। और भी महानुभावों को जिनको श्रीमद्दादूदयाल के उत्तम विचारों से प्रेम है, चाहिये कि इस संस्था की यथासम्भव सहायता करें।

देवीसिंह चौमूं
ता० १६-६-३०

भूतपूर्व प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस,
रजिस्ट्रार गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज परीक्षा, बनारस के
डा० श्री मङ्गलदेवजी शास्त्री, एम. ए. डी. फिल.

Accompanied by Shri Swami Jayaram Das Bhishagacharya I was glad to visit Shri Dadu Mahavidyalya, Jaipur. on the 30 th. December 1946.

The institution, recognised as it is up to the Acharya Examination of the Government Sanskrit College, Benares, is easily one of the best Sanskrit Vidyalayas in the Jaipur State. There are at present, I was told, 82 students including 10 boarders, on the roll of the Vidyalaya, and 7 teachers on the staff. It is situated in a locality which on account of its quietness and healthy surroundings is best suited for an educational institution of this kind. I had an occasion to see the physical exercises of the students which is special feature of this institution and speaks highly for the teacher in-charge of games and sports. The students are given some training in music also. Such extra-curricular activities are necessary for creating a healthy moral tone in educational institutions.

I was glad to see that the Vidyalaya was paying equal attention to the development of both mind and physique of its students. I specially congratulate Shri Swami Mangal Dasji and Shri Swami Surjan Dasji on the successful working of the institution which deserves every encouragement in its creditable efforts to spread Sanskrit learning both among Sadhus and others.

M. D. Shastri
M.A., D. Phil.
Principal
Government Sanskrit College,
Benares

श्री माधवकृष्ण जी शर्मा

इंसपैक्टर संस्कृत पाठशाला राजस्थान, जयपुर

It gave me very great pleasure to visit Shri Dadu Maha Vidyalaya today. This institution which is housed in an attractive building in ideal surroundings and which has a highly qualified and sincere band of teachers and a well equipped Library—the like of which is not usually seen in other Sanskrit Institutions in Rajasthan--has a great future before it.

K. Madhava Krishna Sarma
17. 9. 51

भारतीय संस्कृति के प्रतीक, हिन्दी भाषा के प्राण, कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति

श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन

श्रीदादूमहाविद्यालय में आज मुझे आने का सुअवसर मिला। यहां शिक्षण का कार्य होता है। मेरे लिये विशेष आकर्षण की वस्तु दादूदयालजी की बानी तथा उनके शिष्यों की बानी है। अन्य सन्तों की कुछ बानियां भी हस्तलिखित रूप में यहाँ हैं जिनका

उपयोग तुलनात्मक अध्ययन में हो सकता है। मेरे हृदय में यहाँ आकर यह भावना उठी कि यह संस्था इन वाणियों को फिर लिखा कर उनके प्रकाशन की योजना करे। मैंने यहा आकर सुख का अनुभव किया।

ता० ८-११-४० पुरुषोत्तमदास टण्डन



राजस्थान ऋषिकुल भिवानी के संस्थापक पण्डितप्रवर

श्री सीतारामजी शास्त्री

आज मिति ज्येष्ठ कृष्णा ११ बुध संवत् १९८८ वि० को प्रात काल के ८ बजे श्रीदादूमहाविद्यालय का अवलोकन किया। मेरे अवलोकन के समय ४५ छात्र थे। सब छात्र प्राय दादूपन्थ के अनुयायी है। सब लडके विधिवत बैठे हुये और सुशील प्रतीत होते हैं। इस पाठशाला में हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी तीन भाषायें पढ़ायी जाती है। संस्कृत में काशी की प्रथमा, मध्यमा आदि तथा जयपुर की यूनिवर्सिटी की सब कक्षाओं की शिक्षा देने का प्रबन्ध है। प्रतिवर्ष लडके विविध परीक्षाओं में बैठते है और सफलता के साथ उत्तीर्ण होते है। साथ ही आयुर्वेद की परीक्षाएं भी दिलाई जाती है। मैंने उच्च कक्षा के (जो शास्त्री तथा मध्यमा कक्षा के थे) छात्रों की साधारणरूप से परीक्षा ली। लडके सुबोध पाये। उनमें एक छात्र बहुत थोडी वय का यहाँ है जो व्या० सिद्धान्तकौमुदीका कारक पढता है मुझे बहुत अच्छा प्रतीत हुआ। यहा के अध्यापक सभी अच्छे और प्रयत्नशील है। श्री प० रामचन्द्रजी शास्त्री यहा संस्कृत के एक बहुत अच्छे विद्वान्

और उत्साही हैं। श्री स्वामी मङ्गलदासजी के प्रबन्ध में यह कार्य अच्छा हो रहा है। श्रीमान् स्वामीजी लक्ष्मीरामजी इसके सभापति हैं। आपके ही अध्यवसाय का यह पवित्र फल है, जो श्रीदादूजी महाराज के सम्प्रदायी लोगों का एक सौभाग्य का कारण है। इस संस्था से उक्त सम्प्रदाय बहुत ही उपकृत होगा यह संभावना है। इस सम्प्रदाय के लोगों को चाहिये कि वे इस संस्था की तन मन धन से सेवा करें। स्थान बहुत उत्तम है। व्यायाम भी कराने का अच्छा प्रबन्ध किया हुआ है।

ता० १३ ५-३१ सीताराम मिश्र

काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के अध्यापक

श्री बदरीनाथजी शुक्ल

अद्य वेदान्तप्रभृत्यनेकशास्त्रसंविद्विशारदेन श्रीमता पं०सुरजनदासमहोदयेन जयपुरराजनगराश्रयो दादूमहाविद्यालयो दर्शितः। शान्ते स्थले स्थितं विद्यालयमेतमवलोक्य परमां प्रीतिसंहतिमन्वभूवम्। समानवेषभाषाशालिनामन्तेवासिनामभिव्यक्तिकर्मीभवद्भावसाम्यं तत्रस्याध्यापकानां सौजन्यनियतवैदुष्यं कार्यकर्तॄणामपरेषां व्यवहारप्रावीण्यं सारल्यं च समवलोकयतो मे मनो नितरां सन्तोषमासादयत्। कक्षासु छात्राणामुपवेशनाध्ययनयोः प्रकारः समागन्तुकानां सत्कारव्यापारश्चात्यन्तं मनोरम आसीत्। सुयोग्यैरध्यापकवर्गैः प्रेम्णा परिश्रमेण च परिपाठ्यमानानां छात्राणां विनयानुगता योग्यता प्रस्फुटं प्राकाशत। व्यायामशाला, आरोग्यशाला, छात्रावासः, अध्यापकनिवासः, नित्यकृत्यस्थलं, पुस्तकालयश्च सर्वमेतद् दृशोः

पन्थानमुपसर्पन्मन परिचयितुं प्रभवति प्रेक्षावताम्। आगामिवर्षे भविष्यन्ती विद्यालयस्य रजतजयन्ती सकुशलं स्वाभलाभ प्राप्नु-मन्ये विद्यालयमेनमपरेणाप्यधिकतरेण गौरवेण योजयेदिति, सर्वथा विद्यालयीयव्यवस्थासौष्ठवदर्शीकृतमना, एतस्योत्तरोत्तरम-भ्युन्य भगवतो भवानीपते प्रतिपल प्रार्थयामीति शम्।

बद्रीनाथशुक्ल

मार्ग कृ १०, २००० सं०

—— ~ ——

श्रीविष्णुदयालजी

असिस्टेन्ट आडिट आफिसर यू पी और आडिट आफिसर जयपुर

आज मैंने श्रीयुत स्वामी बालानन्दजी आचार्य और श्रीयुत स्वामी मगलदासजी के साथ श्री दादूमहाविद्यालय जयपुर को देखा। चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। छात्रों के रहने का स्थान, व्यायामशाला, पाठशाला, पुस्तकालय, भोजनालय, गोशाला, पाठशाला का आयुर्वेद विभाग आदि . प्रबन्ध अति उत्तम और सराहनीय है। बहुत सन्तोष मिला।

2 2 1939

विष्णुदयाल

Vishnu Dayal

Asst Audit officer U P (Retired)

Audit officer Jaipur (Retired)

श्रीहीरालालजी शास्त्री

संस्थापक श्री वनस्थली विद्यापीठ, भूतपूर्व प्रधान सचिव
राजस्थान, जयपुर.

मैं श्री दादू महाविद्यालय को एक विशिष्ट और अत्यन्त उपयोगी संस्था मानता आया हूँ। इस संस्था की स्थापना हमारे यहां की एक बड़ी विभूति स्वामी लक्ष्मीरामजी महाराज की मूल प्रेरणा से हुयी थी। इसे स्वर्गीय स्वामी सेवादासजी महाराज जैसे सरल सेवा-प्रेमी साधु के प्रयत्नों से विशेष आर्थिक अवलम्ब मिला। और सर्वोपरि इसे स्वामी मंगलदासजी महाराज जैसे शुद्ध भावना वाले त्यागी और कर्मठ व्यवस्थापक मिले। और आजकल मैं देखता हूँ कि स्वामी सुरजनदासजी जैसे चहुंमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति की सेवा का लाभ भी इसे मिला हुआ है। इस संस्था का शहर से कुछ दूर अपना स्थान है और इसे अपना एक स्वच्छ, स्वस्थ और स्वतंत्र वातावरण बनाने में सफलता मिली है। परीक्षाफल जैसी बाह्य कसौटियों से भी संस्था का काम प्रशंसनीय ठहरता है। साधु बालकों की शिक्षा के लिये यह संस्था चालू की गई थी, पर अब तो इसका द्वार दूसरे बालकों के लिए भी खुला हुआ है। संस्था का काम किफायत से कम खर्चे में चलाया जाता है। विद्यार्थियों से भोजनादि के लिये जो शुल्क लिया जाता है वह आजकल की मंहगाई को देखते हुये कम है जिसके फलस्वरूप संस्था पर आर्थिक घाटे का भार बढ़ जाता है। संस्था को राज-कीय सहायता के अलावा अपने सुरक्षित कोष से होने वाली आमदनी का भी सहारा है। बाकी घाटे की पूर्त्ति चन्दे से हुई है और होती रहनी चाहिये, क्योंकि अन्ततो गत्वा वह घाटा बहुत

ज्यादा नहीं है। ऐसी संस्था में विद्यार्थियों की संख्या का कम होना सर्वथा स्वाभाविक है। क्योंकि श्रीदादू महाविद्यालय का काम जमाने के प्रवाह के अनुकूल नहीं है, बल्कि इस प्रवाह के विरुद्ध एक प्रकार की बगावत है और मेरी राय में यही इस महाविद्यालय की विशेषता है। हमारे राष्ट्र में संस्कृत के पठन पाठन को सरकारों की ओर से विशेष रूप से प्रोत्साहन मिलने की आवश्यकता है। उस प्रोत्साहन के अभाव में इस मार्ग पर चलने वालों को ज्यादा मुश्किलों का सामना करना पड़ा है और यही स्थिति रही तो आगे भी करना पड़ेगा। इसी से कार्यकर्ताओं की दृढ़ता की परीक्षा होती रहती है। इन सब दृष्टियों से मैं श्रीदादू महाविद्यालय का और उसके कार्यकर्ताओं का प्रशंसक रहा हूं। पिछले पच्चीस सालों में इतनी सुन्दर रीति से सेवा करने के बाद रजतजयन्ती मनाने का जो अवसर आया है उस अवसर पर मैं महाविद्यालय को हार्दिक बधाई देता हूं और इस संस्था की भविष्य की सफलता के लिये शुभ कामना करता हूं। ऐसी संस्था की मुझ से कुछ भी वास्तविक सेवा हो सकेगी तो उससे मैं अपने आपको कृतकृत्य समझूंगा।

वनस्थली — हीरालाल शास्त्री
६-९-५१

जयपुर हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज

श्रीमान् मूलचन्दजी तिवारी

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीदादू महाविद्यालय की रजत जयन्ती मनाने का आयोजन होरहा है।

स्वर्गवासी पूज्य स्वामी लक्ष्मीरामजी से सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण मैं जयपुर में श्रीदादू महाविद्यालय तथा उसके कार्यकर्ताओं से अपरिचित न था। इस संस्था का जन्म पूज्य स्वामीजी के परिश्रम से ही हुआ था, और उनने अपने सहज-वात्सल्य से समय-२ पर आर्थिक सहायता देकर उसका पोषण किया। भाग्यवशात् श्रीयुत स्वामीजी ने उसके संचालन का भार श्री स्वामी मंगलदासजी को सौंपा, जिनके त्याग, कार्यकुशलता तथा अथक परिश्रम के कारण यह संस्था शिशुत्व से अपने लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ती हुई अब प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हुई है। पूज्य स्व० स्वामीजी की सहायता से ही संस्था के लिये एक सुन्दर भवन मोतीडूंगरी के निकट स्वास्थ्यप्रद स्थान पर बनाया गया। उस भवन के उद्घाटन के समय जो आशाएं की गईं थी वे अब पूरी होती जारही हैं।

उक्त भवन में विद्यालय के आने के पश्चात् प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल मुझे उसके छात्रावास की चहल पहल देखने का अवसर मिलता था और उसमें प्राचीनकाल के आश्रम का आभास दिखाई देता था। छात्रगण आश्रम सम्बन्धी सब काम अपने हाथ से ही निस्संकोच करते थे और उन सब के रहन सहन का स्तर समान होने से उन में ऊंच नीच का विचार न रह कर भ्रातृभाव रहता था।

आश्रम के कुलपति श्री स्वामी मंगलदासजी के सरल जीवन तथा उच्च विचार की छाप छात्रों पर पड़कर उनके चरित्रगठन की आधारशिला का काम करती है। आश्रम में छात्रों का केवल मनोविकास ही करने का प्रयत्न नहीं किया जाता किन्तु उनकी

धाननिहितानि श्रेयोविधानदक्षाणि । न केवलानि व्याकरणप्रमुखा-
ण्यङ्गानि नतरां परमार्थमार्गमौक्तिकमिव साहित्यं ततमां नितान्तशान्त-
वेदान्तप्रधानानि दर्शनानि ज्ञानपथप्रदर्शनार्थं तेऽपितु ध्यानवन्द्या लोक-
यात्रामाचरणप्रवहाँ समर्हां वैशिष्ट्या गाङ्गा समविधाना । किन्तु
नितरां मनांस्यावर्जयति विद्याव्रतामन्तर्गाणीनां यदत्र व्यायामशाट-
कमपि प्राप्य कनीन्यश्च रचना चक्राणां समुत्तोलनं, तदन्त प्रवेशेन
कूर्दनं वारिरोहणं पतनं, रज्जूनामुपर्युपरि तिष्ठन्तीनां सहसा लङ्घ-
नश्चेत्यादिशिक्षणात् शार्ङ्गं सम्यग् निर्णेयतामुपगतम्। अस्मिन्
शान्तिस्तपोवनादिव सगृहीता, क्रान्ति भूमेरिव समुद्भूता, अतिथि-
सत्कृति शालिन्य इव समुपात्ता परितो निभाल्यते । एतस्मिन् गुण-
ग्रहणेषु पक्षपातः चारित्र्यचारिमसुसौष्ठवं परिश्रान्तिपरिशीलनेषु
कौशलं सर्वत्र समुज्जृम्भते । वानस्पत्य कृपिश्चात्राऽनवरतं शास्य-
माना जागरयति कर्मठत्व सम्यधीतपु । कलाभिः सह विद्याधिगम
स्वातन्त्र्यमुपजनयति जीविकार्जनेषु, भूतीरेवात्मसात्क्रियमाणा व्यपा-
सरति, दीप कमपि प्रकाशयति तमस्तोमेषु प्रसृमरेषु नानाविधोन्-
मेषु ।

अस्य सम्प्रदायस्य निदान प्राचीनतायाः आदर्शभूताः
प्रतीक 'श्रीमङ्गलदास' स्वामिमहाराज स्वर्वचननिचयैरुपश्लोक्य-
ताम् । अवत्यानामन्तेवसता गुणगरिम्णा ग्रामान्यमामादयन्तौ विद्या-
वैशारद्यमनेकधाराभिरुद्वेलयन्तौ मत्समीपेऽपि स्वर्गतामापारितव-
न्तावध्ययनकर्मणः 'श्रीसुरजनदास' श्री हनुमान शास्त्रिणौ भव-
न्तीं भविष्यन्तीञ्च कामप्यार्हन्तीसोपानपरम्परा जनयन्तौ सभाव्य-
कौशलस्वार्पणे केषां श्लाघनीयतामञ्चत । एवमादीननुकरणीया-
नस्य महाविद्यालयस्याऽगणनीयानालोक्य गुणगणान् नितरां प्रसी-
दन् रजतजयन्तीमहोत्सवमेदुरतामेतदीयां मुहुर्मुहुरभिनन्दति कामयते

च स्वर्णजयन्तीसमुत्सवं न चिरादेव महतो महता सम्भारेण सम्पाद्यमानं शतशोमुखीक्ष सर्वविधां समृद्धिमिदमीयामिति—

बनारस　　　　　　　　महादेव पाण्डेयः।

का० शु० २ सं० २००७

इण्डो सुमेरियन विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के मुख्य अध्यक्ष

डा० श्री प्राणनाथजी (डी. एस. सी. (लंदन) पी. एच. डी (वियना)

यह सुनकर मुझको बहुत प्रसन्नता हुई कि आप श्री दादू महाविद्यालय की रजत-जयन्ती मनाने जारहे हैं। इसके लिये मेरी ओर से आपको बहुत बहुत बधाई।

श्री दादू महाविद्यालय देखने का मुझको अवसर कुछ वर्षों पूर्व मिला था जबकि मैं संस्कृत-पाठ्य-प्रणाली-विषयक-अनुसंधान-समिति का सभ्य होकर जयपुर गया था। विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के व्याख्यान सुनने से मुझको यह प्रतीत हुआ कि महाविद्यालय के लोग बड़े लगन तथा प्रेम से संस्था का काम कर रहे हैं, तथा उनमें स्वार्थ-त्याग का भाव है जिसकी इस समय सभी संस्थाओं में आवश्यकता है।

दूसरी बात जिसने मुझको बहुत आकर्षित किया वह विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का सादा विशुद्ध जीवन था। पढ़ाई भी उच्चकोटि की होने से महाविद्यालय का स्थान संस्कृत के अन्य उच्चकोटि के महाविद्यालयों के समान मिला। मैं चाहता हूँ कि

श्रीदादू महाविद्यालय की दिन पर दिन उन्नति हो और इसको भारतीय-प्रजातन्त्र-राज्य द्वारा पूर्णरूप से सुविधा मिले। आशा है कि मेरी मन कामना सफल होगी। पुनः अनेक धन्यवाद।

बनारस

१० नवम्बर १९५० डा० प्राणनाथ

— ९ —

गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस (उत्तर प्रदेश) के रजिस्ट्रार

पं० श्री कुबेरनाथ जी शुक्ल व्याकरणाचार्य

श्री दादू महाविद्यालय मोतीडूंगरी, जयपुर, राजस्थान की एक प्राचीन तथा प्रतिष्ठित संस्था है। यह व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, सांख्ययोग तथा दर्शन विषयों में आचार्य परीक्षा तक के लिये स्वीकृत है और यहां के छात्रों का परीक्षाफल सन्तोषजनक होता है। यह महाविद्यालय अपने प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ विद्यालयों में से है। इसने सुरभारती की जो सेवायें की हैं वे चिरस्मरणीय रहेंगी। आशा है अधिकारीगण इस संस्था को अधिकाधिक उन्नतिशील बनाने में सदा प्रयत्नशील रहेंगे।

मैं हृदय से विद्यालय की सर्वाङ्गीण उन्नति चाहता हूं।

बनारस कुबेरनाथ शुक्ल एम० ए०

११-११-५०

काशिक राजकीय महाविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष साहित्याचार्य
साहित्यवारिधि महामहोपाध्याय
श्री नारायणजी शास्त्री खिस्ते



जयपुरस्थं "श्रीदादूमहाविद्यालय" मह चिराज्जानामि। कतिपयवर्षेभ्यः पूर्वं यदाऽहं जयपुरमगमम्, तदा निरीक्षितेयं संस्था मया, तदाप्रभृत्येवास्याः संस्थाया विषये महानादरो मम हृदये जागर्ति। अहं कामये, यदियं संस्था-इतोऽप्यधिकमुन्नतिपथं गाहमाना परमोन्नतिशिखरमारोहत्विति।

दादूविद्यालयः सोऽयं सरस्वत्या अनुग्रहात्।
जयन्तीं बत सौवर्णीं हैरिकी चापि गाहताम्॥

बनारस — शुभाशंसकः
१२-११-५० — नारायण शास्त्री खिस्ते



रानीचन्द्रावती श्यामामहाविद्यालय, काशी के प्रधानाध्यापक
पं० श्री उग्रानन्दजी झा न्यायव्याकरणाचार्य



अद्यत्वे जयपुरनगरीयश्रीदादूमहाविद्यालयः परामुन्नतिं छात्राणां प्रापयन् नैकस्मै कस्मैचित् विपश्चिद्वराय स्पृहणीयतां नासादयति, यतश्च शिष्याः प्रतिवत्सरं काव्यसाहित्यसमालोचकाः, दर्शनगूढभावावगाहकाश्च निस्सरन्तो दरीदृश्यन्ते। किम्बहुना, एतस्य गुणान् समाजोपकृतिं च श्रावं श्रावं नितान्तं मे स्वान्तं प्रसीदति,

इ चास्य योऽस्मात् स्थान्त हर्षातिशयमनुभवन्, इदानीं तत्र परतरपर-
तमोद्दयोगापेक्षितसामग्रीसमाजसद्भावात् सर्वविद्यापरिवर्धनपराय
णेभ्य श्रद्धानुरूपदायिकवाचनिकमानसिकार्थिकसाहाय्यसम्पादनेन
सर्वथा स्पृहणीयत्वेनाऽऽकलनीय इति वयं सम्भावयामह इति

बनारस — भट्टाईलुपाह्व

ता० १३-११-५० — पद्मप्रसाद न्यायाचार्य

श्री टीकमाणी संस्कृत महाविद्यालय के प्रधान
श्री ताराचरणजी शर्मा भट्टाचार्य

जगत्या ज्ञानमन्तरेण नैकस्यापि पुरुषार्थस्य सिद्धिः । ज्ञानवि-
ज्ञानयोश्चाभिजननी विद्या, तस्याः संवर्धनाभिकृते ये तु बद्ध-
परिकरास्ते न केवलं साधुवादार्हा अपितु सर्वथा माननीयाश्च ।

परमानन्दसन्दोहान्दोलितान्तःकरणा यदभिज्ञानीमुच्चैरुद्घोष-
यामो यत्सदा भारतवसुन्धराया गीर्वाणभाषारत्नपुञ्जीनिरन्यतमो-
ऽयं जयपुरराजधानीविराजितः श्रीमान् दादू महाविद्यालयः सुबहो
कालादनेकानामितां तत्र प्रतिष्ठानामवरशिक्षणमारभ्य साङ्गोपाङ्गानां
व्याकरणादिशास्त्राणाम् अध्ययनाध्यापनयोः विधाता वरीवर्ति । अन-
न्याः स्नातकाश्चात्र तत्तत्क्षेत्रेषु लब्धप्रतिष्ठाः समुत्पन्ना भारतवर्षस्य वि-
विधान् भागान् समलङ्कुर्वन्ति । तद्विद्यालयव्यवस्था पुनरपि समीचीना
परमोत्साहवता व्यवस्थापकानां सतर्कतामुत्र पाठनञ्च प्रशस्यमित्यादि
समालोक्य नितरां प्रमुदितान्तःकरणा रजतजयन्ती महाविद्यालयस्य कृते

भगवन्तमसकृद्देतदेवाभ्यर्थ्य विरमामो यद्—

पूरयन् रोदसीरन्ध्रमनवद्ययशोंऽशुभिः ।

श्रीमान् दादूमहाविद्यालयोऽयंभुवि राजतामिति । शम् ।

वाराणसी

कार्त्तिक शुक्ला चतुर्थी		श्री ताराचरणशर्मभट्टाचार्यः

२००७

———

काशीस्थराजकीय संस्कृतमहाविद्यालय के प्राध्यापक

पण्डितप्रकाण्ड श्रीरघुनाथजी शर्मा, व्याकरणाचार्य

—❀✲❀—

महतः प्रमोदस्य खल्वयमवसरो यदस्मिन्नेषमो वर्षे चिराभिलषितो जयपुरीयश्रीदादूमहाविद्यालयस्य रजतजयन्तीमहोत्सवः सोत्साहं प्रवर्तितोऽनुभूयते। अस्य महाविद्यालयस्य प्रतिष्ठा नगद्वयनन्देन्दु (१६७७) मिते वैक्रमेऽब्दे सम्पन्ना । क्रमेण च प्रौढिंगतेऽस्मिन् विद्यामन्दिरेऽद्यत्वे व्याकरणसाहित्यवेदान्तसर्वदर्शनसांख्ययोगायुर्वेदशास्त्राणि हैन्दवी भाषा, आङ्गलभाषा चेत्यष्टौ विषयाः समध्याप्यन्ते । अष्टौ चाध्यापकाः सन्ति । अयञ्च विद्यालयो विश्वविदितैर्भिषग्वरेण्यैः श्रीस्वामिलक्ष्मीराममहाभागैः प्रतिष्ठापितः, परमहंसश्रीस्वामिसेवादासमहोदयैर्महता साहाय्येन पालितः, अपरिग्रहाग्रहिलैरायुर्वेदविद्यापारङ्गमैः स्वामिश्रीमङ्गलदासमहाशयैः पोषितो बुधाग्रेसरैर्विद्याभूषणपदमलंकुर्वद्भिः श्रीरामचन्द्रशास्त्रिभिश्च परमुत्कर्षमवापितो राजपुत्रायने (राजस्थानप्रान्ते) सर्वान् महाविद्यालयानतिशेते । अस्मिन् महाविद्या-

लये व्यायामशिक्षा, सदाचारशिक्षा, वृत्त्यर्थं स्वावलम्बनशिक्षा चादर्शमुपस्थापयन्ति अन्येषां कृते ।

अस्य च विद्यासदाचारवित्ता विविधविद्योपाधिविभूषिता श्री स्वामिसुरजनदास-श्रीबलराम-श्रीमदात्माराम-श्रीमङ्गलदास-श्री-हनुमच्छास्त्रिप्रभृतयः स्नातका स्थालीपुलाकन्यायेन परश्शतानां छात्राणां स्नातकानाञ्च प्रकर्षं वेदयन्ति । किम्बहुना, अस्य महाविद्यालयस्य श्रीविश्वेशकृपया मुहुर्मुहुर्हीरकजयन्तीमहोत्सवोऽभि सम्पद्यतामित्याशासानो विरमति

२००६ वै० श्री रामनवम्यां गुरौ
वाराणस्याम्

भुल्लयवरो
रघुनाथशर्मा

संस्कृत महाविद्यालय हिन्दूविश्वविद्यालय काशी के भूतपूर्व अध्यक्ष

पं० श्री कालीप्रसादजी मिश्र

चिरात्काश्या इव प्रख्यातसंस्कृतविद्यामाहात्म्याया जयपुरराजधान्या दादूमहाविद्यालयस्य रजतजयन्तीमहोत्सवो भवितेति श्रवणमात्रेण सुरगवीसेवागृहीतव्रतानां मनोवृत्तयः परमानन्दसन्दोहमय्यो विहसन्ति । अहो, धन्या वन्दनीयचरितास्समाहितमतयश्च ते महात्मानो ये सूक्ष्मेक्षिकया विभाव्य विज्ञानं भारतीयसभ्यतायाः अवष्टम्भनं धर्मज्ञानराशेः, स्थानं चतुर्दशविद्यानां, जीवनञ्चास्माकं यशोनिकरस्य, भाजनञ्च महोज्ज्वलगुणरत्ननिधानां, सवितारञ्च निविडाज्ञानतमोनिचयस्य, कल्पलताञ्च चतुर्वर्गकामधमवरस्य, निमित्तञ्च निखिललोकमान्यमानतायाः, सेवापरा बभूवुरस्याः सकलभाषासेवितपादपद्मायाः संस्कृतभाषाया अपि जानन्ति तत्रभवन्तो भाषेयं न केवलाद्धाश्यम-गत्याद्यापात्वमलभताऽऽपितु निखिलज्ञानराशेर्भासकत्वाच्चेत्यपि

विद्वांस आमनन्ति, अपि च स्मरणात्पानादवगाहनाच्च सकललोकपावनत्वमां सुरधुनीम्भगीरथ इव महर्षयः सुरगवीमेनां सुरलोकान्महतीभिःक्लेशपरम्पराभिस्समानीतवन्त इत्यपि लोका ब्रुवन्ति वैदेशिक्यो दैशिक्यश्च समस्ता अपि भाषाः स्वीयपरिपोषणपरिवर्धनयोश्च कृते मातरमिव वत्सका अद्यापि अवलोकमाना दृश्यन्ते अतश्चैवं गुणगणविशिष्टाया भारतीयाया. संस्कृतेर्जीवात्भूताय। भाषाया अस्याः समये महात्मानो यदि सेवापरा नाभविष्यंस्तदा चास्मदीयाचारविचारपरम्पराः कथमरक्षिष्यन्निति विचार्य अध्येतृवर्गेभ्योऽध्यापकेभ्यः संस्थापकेभ्यश्च साधुवादान् वितरन् भगवन्तं विश्वनाथं भृशमिदम्

सद्विद्यां वटवो यशश्च गुरवो वृत्याऽनुवन्स्विष्टया ।
लक्ष्मीं साह्यकराः प्रशस्तविभवैः कीर्तिञ्च संस्थापकाः ॥
श्रीमानेष चिरं चिरं विजयतां श्रीदादुविद्यालय ।
यस्मादात्मसमीहितञ्च लभते विद्यार्थिवर्गश्चिरात् ।

का० शु० ३ रवौ० २००७ — प्रार्थयते कालीप्रसादमिश्रः

जयपुरराजकीयधर्मसभा के अध्यक्ष

विद्यासागर पं० श्रीकन्हैयालालजी शर्मा दाधीच आचार्य

प्राचीनभारतसंस्कृतेः सरक्षणार्थं १९७७ विक्रमाब्दे परममाननीयायुर्वेदमार्तण्डस्वामि–श्रीलक्ष्मीराममहोदयैः संस्थापितोऽयं दादूमहाविद्यालयः संस्कृतस्य समुन्नतिं कुर्वन्नास्ते। अत्र अक्षराभ्यासमारभ्य आचार्यपर्यन्तं शिक्षायाः प्रबन्धः सम्यक् वर्तते। अस्मिन् विद्यालये व्याकरण–साहित्य–दर्शनायुर्वेदादिविषयेषु आचार्यपर्यन्तं

परिश्रमपूर्वक छात्रा पठन्ति तथा अध्ययनेन साक भारतीयविशुद्ध-व्यायाममपि अभ्यस्यन्ति। अत्र आश्रमपद्धत्यनुसारेण दादूच्छात्राणामस्यापि व्यवस्था सम्यगास्ते। तत्रत्याश्छात्रास्तत्तत्कर्मणि सोत्साह स्वावलम्बन सम्यगाश्रयन्ति। विद्यालयस्यास्य सचालक स्वामी श्रीमङ्गलदासमहोदयोऽतीवपरिश्रमी विद्यालयप्रबन्धकुशलो विद्वान् वर्तते। अस्य समुन्नति हृदयतोऽभिलषामि।

२३-१२-५२ रा० प० कन्हैयालालशर्मा दाधीमथ

जयपुरम् आचार्य विद्यासागर।

गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज जयपुर के प्रिंसिपल, डाइरेक्टर राजस्थान आयुर्वेदिक डिपार्टमेंट

प० श्री नन्दकिशोरजी शर्मा भिषगाचार्य

त्यागतपस्यौदार्यशौर्यधैर्यवैदुष्याध्यात्मविद्यानिधानभूतेऽस्मिन् दादूसम्प्रदाये कालवशात् ह्रासिमानमापन्ने तदुद्धाराय शिक्षाया अवश्योपादेयता हृदि निधाय स्वर्गीयैर्भारतप्रसिद्धैरायुर्वेदमार्तण्ड-प्राणाचार्याद्यनेकविधविरुदविभूषितैर्धन्वन्तरिरूपै श्रीस्वामिलक्ष्मीराम महाभागैर्महता परिश्रमेण दादूसामाजिकाना सघटन विधाय दादूमहाविद्यालस्य स्थापना निर्मलेनान्त करणेन शिशुपरिव्राजकाना-माध्यात्मिकशिक्षादानेन भाविजीवने जगदुपकारिसाधुजननिर्माणे-च्छया प्राचीनशान्ततपोवनाश्रम दर्शरूपेण कृता।

गच्छता कालेन विद्यालयस्य नवीनभवनप्रवेशोत्सवादनन्तरमेव तेषा परमपदप्राप्ति सञ्जाता। सन्तोषस्य विषयोऽय यत् श्रीस्वामि-

महाभागाः स्वजीवनकाल एवात्मारोपितविद्यालयकल्पतरुमिमं पुष्पितं फलितञ्चावलोक्य नितरां परितृप्तिमीयुः ।

प्रसङ्गेऽस्मिन् कथनमेतदधिकं सङ्गतं भविष्यति यत् यदि विद्यालयस्यास्य सञ्चालका एकस्य त्यागिनो महात्मनः सहयोगन्नैव प्राप्स्यन् तर्हि अस्य वर्तमानस्वरूपं दृष्टिगोचरन्नाभविष्यत् । ते हि सहयोगिनस्त्यागभावनायाः सौशील्यस्य सच्चरित्रतायाः विद्वत्तायाः कार्यपटुतायाः प्रभावोत्पादिन्या वक्तृत्वशक्तेरादर्शभूतस्य संयमस्य व्यावहारिकस्य लोकानुभवस्य किञ्च सहनशीलताद्यनेकेषां सात्विकगुणानामेकमात्राश्रयालोकविभूतिमूर्तयो नाम्ना श्रीमङ्गलदासमहोदयाः प्रथिताः । श्रद्धेया स्वामिलक्ष्मीराममहाभागा एतेषां हस्तयोरस्य सुप्रबन्धं सुदृढं मन्वाना सन्तुष्टा आसन् । केवलं महाभागेष्वेतेष्ववलम्बितोऽयमादर्शविद्यालय उत्तरोत्तरं द्वितीयाचन्द्र इव वर्धिष्णुः सम्प्रतिभारतीयगगनमण्डले पूर्णिमाचन्द्रवत् प्रकाशमयीं स्थितिमवलम्बेत । उत्तमविद्यारत्नाकरस्यास्य प्राप्यरत्नेषु श्रीस्वामिसुरजनदाससदृशा अनेके विद्वांसः साधवो गृहस्थाश्च समानरूपेण विद्यालयस्यास्य स्नातका महिमानमेतदीयं ख्यापयन्ति । विद्यालयेनानेन संस्कृतसाहित्यस्य प्रचुरा सेवा कृता ।

मन्यते—मध्यकालवत् सम्प्रति ज्ञानिनाम्, सानुभवानाम्, विरक्तभावनया भावितानां साधूनां प्राचुर्यं यद्यपि नास्ति परं व्यक्तिज्ञानस्याभिवृद्धिस्त्वेतद्विद्यालयविजृम्भितैव । साधवोऽस्मिन् काले नवीनाञ्छिष्यान् काठिन्येन प्राप्नुवन्ति इत्येषा प्रथमा बाधा दादूसम्प्रदायस्याभिवृद्धौ । परं यदि सद्गृहस्थेषु दादूवाण्या प्रचारो भवेत् किञ्च विद्यालयस्यास्य स्नातका सर्वस्मिन्नपि भारते प्रसृताः साभिनिवेशं महात्मनो दादूदयालोरुपदेशान् प्रचारयेयुर्जनतायान्ततोऽपि चिरस्थायिनी प्रतिष्ठा सेत्स्यति सम्प्रदायस्यास्य ।

एतदुद्देश्यमिमं लक्ष्यीकृत्य निरन्तरं संस्कृतसाहित्यप्रचारपरायणोऽयं विद्यालयः स्वाभीप्सितकर्मसाफल्यमनुभूयादिति चराचरगुरुं भगवन्तं विनीतः प्रार्थये ।

श्रीनवजीवनोपवनम्
शारदी पूर्णिमा सं० २००७

विदुषामाश्रवः
राजवैद्यो नन्दकिशोर शर्मा
भिषग्रत्नम् ।

जयपुर राजकीय संस्कृत परीक्षाओं के रजिस्ट्रार एवं
राजस्थान संस्कृत पाठशालाओं के इन्स्पेक्टर

श्रीमान् पं० युगलकिशोरजी एम. ए.

वैदेशिकशासनप्रभावात् कालप्रभावाच्च सकलभाषाजीवातुभूतायाः संस्कृतभाषाया ह्रासस्म्पादकेऽस्मिन् युगे प्रातः स्मरणीयाः प्राणाचार्यायुर्वेदमार्तण्डादिविविधविरुदावलिभूषिताः भिषङ्मूर्धन्या भारतप्रसिद्धवैदुष्यवैभवाः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागाः सुरसरस्वतीसेवाजुषो जन्म लेभिरे, ये हि आमरणं स्वकीयं जन्म संस्कृतसेवाया यापयामासुः । तेषामेव गुरुवर्याणां विद्यानुरागेण महता प्रयत्नेन च विद्यालयस्यास्य स्थापनं संवर्धनं क्रमिकाभ्युदयश्च सजातः । अस्मिन्नवसरे ते विद्यालयप्राणभूताः संस्थापकाश्च श्रीस्वामिपादाः संस्मरणीयाः । तेषामनुगामिन उत्तराधिकारिणश्च भिषगाचार्यश्रीजयरामदासस्वामिनोऽपि विद्यालयस्यास्य परिरक्षणे मनोनियोगेन सक्रिया जागरूकास्सन्ति तेऽपि धन्यवादभाजः ।

ये हि विद्यालयस्यास्य समुन्नतौ निजजीवनस्यैकैकं क्षणमपि कर्तव्यभावनया निःस्वार्थवृत्त्याच पूर्णपरिश्रमेण सम्प्रददुः ददति च, तेषा-

मेतेषां महामङ्गलशालिनां स्वामिश्रीमङ्गलदासमहोदयानां नामस्मरणमत्यावश्यकमेवास्ति । वीतरागाणामेतेषां विषये प्रशस्तिप्रकाशनं मन्ये सूर्याय दीपदर्शनमस्ति । एते हि महान्तस्त्यागशालिनः, विवेकिनः निःस्वार्थाश्च सन्ति, अतएव विद्यालयेऽप्यस्मिन्प्रायः सर्वे हि भवतामनुकरणशीलाः सन्तः समुन्नतिं संभजन्ते ।

आरम्भकालेऽयं विद्यालयः साधारण एवासीत् । किन्तूपयुक्तानां महामहिमशालिनांःविद्यालयसंस्थापकानां श्रीस्वामिपादानामविरलपरिश्रमेणास्य कायाकल्पः संजातः फलस्वरूपेण च अचिरादेव विद्यालयोऽयं महतीं पुष्टिं लेभे । गच्छति कालेऽस्य कलेवरः प्रवृद्धः सन् महाविद्यालयस्य (कालेजस्य) स्वरूपं प्राप । इदानीमत्र नानाविधविषयेष्वध्यापनं प्रचलति । अत्र व्याकरण-साहित्यायुर्वेद-न्याय-वेदान्तप्रभृतीनि शास्त्राणि सम्यगध्याप्यन्ते । लोकशिक्षणदीक्षितविचक्षणाः पाठका अपि सहर्षं दत्तचेतसः स्वकीयमावश्यकं कर्तव्यमिति मत्वाऽध्यापयन्ति । महाविद्यालयेऽस्मिन् सर्वे ह्यध्यापकाः पूर्णमनोयोगेन स्वीयं स्वीयं विषयं पाठयन्तः समुत्थानेऽस्य बद्धपरिकराः सन्तो भविष्यच्छुभसूचनां सूचयन्ति । छात्रसंख्याऽप्यन्येभ्यो विद्यालयेभ्योऽधिका । वार्षिकपरीक्षाफलं चास्यातीव शोभनम् । विद्यालयोऽयं राजस्थानशिक्षाविभागद्वारा स्वीकृतः – प्राप्नोति च राजकीयां द्रव्यसहायतामपि । अस्यायव्ययादिप्रबन्धोऽपि सर्वः सुदृढः शोभनश्चास्ति ।

अस्य विद्यालयस्याध्यक्षपदजुषां प्रारम्भिकाचार्याणां सुप्रसिद्धविदुषामखिलशास्त्रपारदृश्वनां गुरुवर्याणां श्रीरामचन्द्रशास्त्रिमहाभागानां संस्मरणमत्यावश्यकम् , यैरनेकान् शिष्यान् प्रशिष्यान् प्रशास्य जयपुरीयविद्वत्समाजे स्वीया महती प्रतिष्ठा प्रतिष्ठापिता । पठनपाठनादिकलानैपुण्येन शीलसारल्यसदाचारौदार्यमाधुर्यादिगुणविशेषेण चा-

न्तेव विनामावर्जितं चेतः। समर्प्यन्ते तदेते श्रद्धाञ्जलयस्तेषां गुरुवर्याणां चरणेषु।

विद्यालयीयाश्छात्रा वाराणसेयीषु जयपुरीयासु च नानाविधासु परीक्षासु प्रत्यब्दं प्रविशन्ति। तास्ताः परीक्षास्समुत्तीर्यानेकासु संस्थासु सेवां विदधति, अस्य महाविद्यालयस्य कीर्तिपताकां सर्वासु दिक्षु प्रस्फारयन्ति च। एतादृशा विद्यालया अस्मिन् समये विरला एव दृश्यन्ते।

विद्यालयेन सबद्ध एकश्छात्रावासोऽपि विद्यते, यस्मिन् छात्राणां कृते ये ये स्वास्थ्यकरा आहारविहाराः सन्ति, तेषां दर्शनेनैव दर्शकानां तृप्तिः सञ्जायते। विद्यालयस्य स्थानं छात्रावासश्च स्वस्थभूप्रदेशे वर्तते। जलवायुदृष्ट्या स्थानमिदं केषां सहृदयानां चेतांसि न मोहयति।

विद्यालयद्वारा यदेतत् भारतीयसंस्कृतेः संस्कृतवाङ्मयस्य च प्रमाणं परिरक्षणं विहितं तत्तु चिरस्मरणीयमेव, तदर्थमस्य महाविद्यालयस्य संस्थापकाः संवर्धकाः परिपोषकाश्च सर्वे एव धन्यवादभाजः।

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के व्याकरणप्रधानाध्यापक

पं० श्री केदारनाथजी ओझा

स्थानीयश्रीदादूमहाविद्यालयस्य रजतजयन्त्युत्सवः सम्पन्नः इति श्रुत्वा केषां संस्कृतप्रणयिनां न मनो मोदमेष्यति। यतो ह्ययं संस्कृतमहाविद्यालयश्चिरादनेकशास्त्रस्य वैद्यकस्य च समीचीनां शिक्षां प्रसारयन् नैकान् विदुषोऽध्यापकान् चिकित्सकांश्चासृजत्। समयञ्चापेक्ष्य व्यवहारयोग्यत्वात् हिन्दीभाषामाङ्गलभाषाञ्च संस्कृतशिक्षायां सगृह्णाति,

छात्रावासप्रबन्धेन च च्छात्रान् विनयिनो नियमिनः कर्मठांश्च कुर्वन् स्वावलम्बितामपि समर्पयति। कौतुकपरेणापि व्यायामफलेन विद्यार्थिनां क्रीडाकौशलेन शरीराणि श्रमसहानि विदधाति। गते जयपुरीयेऽखिलभारतवर्षीयसंस्कृतसाहित्यमहासम्मेलनाधिवेशनेऽल्पीयसि काले संक्षिप्तमप्याचरद्भिरदसीयान्तेवसद्भिः स्वीयेन मनोरमेण विविधव्यायामेन विदुषां चेतांसि चित्रितान्यक्रियन्तेति स्मर्यत एव बहुभिः।

मम त्वनेन सह विशेषः सम्बन्धः। अन्यत्राप्यवतिष्ठमानः काशिकपरीक्षापरिणामपत्रेषु नामावलोकनेन शब्दतो जानन्नेवासम्! परं प्रायो नवभ्यो वर्षेभ्यः प्राक् प्रसङ्गान्तरेण जयपुरे समागतो द्रष्टुमपि अगमम्। तदानीमेव प्रधानाध्यापकानां श्रीरामचन्द्रशास्त्रिणां विद्याऽभिनिवेशं शिष्यशासनञ्च साक्षादकरवम्। एवं कौपीनप्रायं स्वल्पं वस्त्रं वसानं सम्मुखं समागतमुद्दिश्य शास्त्रिमहोदयैरहमेवमुक्तः अधुनाऽयमेव महात्मा वहति विद्यालयभारम् इति। स च महात्मा संकुचितो विनयभरं स्वल्पमेव वचोऽश्रावयत्। क्षणं विस्मितोऽपि शक्तिर्लक्षेरक्षाभस्मनि वा (वस्त्र राखे यां लाख में) इत्याभाणकं स्मरन् विद्यते विद्यालये जीवनशक्तिः इति निरचैषम्। स च त्यागी महात्मा मङ्गलदास इति समयेन परिचिनोमि।

तदनन्तरञ्च वर्षाभ्यन्तर एव मयि जयपुरेऽध्यापकपदे समुपस्थिते परस्परसमागमादिना पूर्वोक्तशास्त्रिणामेवं सौहार्दमुदयिष्ट येन ममास्वस्थतादशायां समागत्यैवमुपदिष्टम् 'न भवता विपणौ पर्यटनीयम्, छात्रस्समागत्य पक्षस्य मासस्य वा सामग्रीं क्रीत्वा स्थापयिष्यति' इत्यादि। आवश्यकतायामसकृच्चाहमेवमुपयोगेन च्छात्राणां कर्मकारितामन्वभवम्।

शास्त्रिणाञ्च स्वर्यानानन्तरं तेनैव सम्बन्धेन समये समये वेदा-

नस्य न्यायस्य चाध्यापनसेवया विशालयं सत्कुर्वाण एवाप्नोति दुच्यत एव मम ममत्वमूलक प्रहर्षो मोद ।

अधुना च प्रायोऽध्यापका स्वर्गीयशास्त्रिणा शिष्या मनीषि-

श्रीरामचन्द्रविदुषाऽवसरे न्यधायि,

विद्यालता विनयिना हृदये श्रमेण।

सेवाधुना विकसिता फलिता क्रमेण,

रूप प्रकाण्डविदुषा स्वयमाबिभर्ति॥

अभिनन्दामि

तथा च

शिक्षा कालसमीहितामनुसरन् सत्संस्कृतिं पोषयन्,

गैर्वाण्या गुरुरालयो बहुविधा विद्या दधन्निर्भय ।

श्रीमन्मङ्गलमण्डित सुरजनप्रीत्यालय सद्व्यय,

श्रीदादूदययाऽऽश्रयन्सुरजतसौवर्णमेतान्महम्

इतिसमीहासनाथस्य

धनुर्मास २००७ श्रोभोपाहस्य केदारनाथस्य

महाराजा संस्कृत कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल तथा कलकत्ता यूनिवर्सिटी के संस्कृत लेक्चरार

श्री पट्टाभिरामजी शास्त्री

जयपुरस्थश्रीदादूमहाविद्यालयमहमसकृदवालोक्य तेषु तेषु शुभेष्ववसरेषु । विद्यालयोऽयं पुरातन्या शिक्षाया यत्पवित्रमुद्देश्यम्-भारतीयसंस्कृतिपरिरक्षणं नाम, तद्यथावत्सम्पादयन्नास्ते । विंशतितमेऽस्मिन शतके, नैकविधेषु कार्यालयेषु भृतक कर्म कर्तुं समर्थाना स्नातकाना समुत्पादनमेव शिक्षाया उद्देश्यमित्यनुभूय-

प्रथामिमां दूरीकर्तुं, प्राचीनार्यसंस्कृतिं परिवर्द्धयितुं, उच्चाव दर्शनानामध्ययनेनाध्यापनेन च प्रज्ञां परिष्कर्तुं महनीयगुणैः तपोमूर्तिभिः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहोदयैरन्यैश्च महात्मभिः प्रवर्तितोऽयं महाविद्यालयः । विद्यालयेऽस्मिन् प्रबन्धकर्तारोऽध्यापकाश्च सम्भूयातिकठिनास्वप्यवस्थासु क्लेशमपरिगणयन्तः सोत्साहं स्वस्वकार्येषु निरताः स्थानान्तरात्समागतान् विद्यार्थिनस्समनोयोगमध्यापयन्तः शिक्षाया उद्देश्यं यथावत्परिपालयन्तीति स्पष्टमवगम्यते । अत्रत्यविद्यार्थिनः साकं दुरूहाणां दर्शनानां साहित्यव्याकरणादेश्चाध्ययनेन तासु तासु परीक्षास्वार्हन्तीं लभमानाः, विद्यालयाध्यक्षस्याध्यापकानाञ्चानुशासन यथावत्परिपालयन्तो व्यायामे, विविधासु क्रीडासु, नैकविधासु च कलासु नैपुण्यं बिभ्रतीति विशेषतो निर्देशमर्हति । विद्यार्थिनां चारित्र्यसंरक्षणाय यथासमयं दैनिकेषु कर्मसु च प्रेरणाय सुन्दरश्छात्रावास इमं विद्यालयं सुशोभयति । विद्यालयोऽयं क्रमशः प्रथमामध्यमाशास्त्रिपरीक्षासु विद्यार्थिनः प्रेषयन्नेषमाऽब्दे उत्तरप्रदेशीयशिक्षाविभागत आचार्यपरीक्षार्थमप्याज्ञामधिगम्य विद्यार्थिनस्तदर्थमपि प्रेषयतीति महानानन्दस्य विषयः । एवमयं विद्यालयतरुः त्यागशीलैर्महात्मभिस्सुमुहूर्ते समारोपितः क्रमशोऽङ्कुरितः पल्लवितः पुष्पितः फलितश्च साम्प्रतं प्राज्यं रजतजयन्त्युत्सवमनुभवतीति नितरां सन्तुष्टान्तरङ्गोऽहं भगवन्तमाशुतोषमभ्यर्थये, यदयं विद्यालयतरुः स्वीयमनुपमं पवित्रञ्च कार्यमेवमेवं कुर्वन् स्वर्णहीरकजयन्त्युत्सवाभ्यां लोकानानन्दयत्विति

जयपुरम्   विद्यासागरः पट्टाभिरामशास्त्री
१—१—५३

———

श्री प० गिरिधरजी शर्मा महामहोपाध्याय

महामहोपाध्याय, वाचस्पति (हिन्दू यूनिवर्सिटी) साहित्य वाचस्पति (हिन्दी साहित्य सम्मेलन) व्याख्यान वाचस्पति (भारत धर्म महामडल) Director Sanskrit Studies सस्कृत शिक्षा सचालक हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी

राजस्थानप्रान्ते श्रीदादूसम्प्रदायस्य बहुल. प्रचार । समये समयेऽस्मिन संप्रदाये बहव प्रगाढपण्डिता वेदान्तादिनिष्णाता आयुर्वेदादिपारङ्गताश्च प्रादुरभूवन्, येषा कीर्तिपताकाद्यापि दोधूयते जगति, अथापि सामान्येनैतत्साम्प्रदायिकसाधुवर्गे शारीर-व्यायाम-शस्त्रचालनादिषु सुप्रसिद्धे नासीद् अधिका विद्याभि-रुचि न वा विद्याप्रचारस्य क्वापि सुनियता सस्था । एतत्सर्वमालोच्य एतत्साम्प्रदायिकेषु मूर्धन्यता गतैर्लक्ष्मीसरस्वत्योरुभयोरपि तुल्याम साधारणकृपामाजनता प्राप्तैर्भारतप्रसिद्धचिकित्सकचूडामणि-भिरायुर्वेदमार्तण्डश्रीस्वामिलक्ष्मीरामाचार्यै सर्वेषा साम्प्रदायिक-प्रमुखाना महता जयपुरस्थविदुषा च सहयोगेन त्रिशतोऽब्देभ्य प्राक् श्रीदादूविद्यालयनाम्नी सस्थैका प्रतिष्ठापिता । आरम्भा-देवास्या कार्यसचालनभार श्रीमङ्गलदासस्वामिना हस्ते निहितो ऽभूत् । प्रतिष्ठापकस्य तपोबलेन सचालकस्य च परिश्रमचातुर्याभ्या विद्यालयोऽय क्रमेण महाविद्यालयतामासाद्य परामुन्नतिमासीदत् । नगरादनतिदूरे सुविशाले क्षेत्रे भवनादिकमप्यस्य स्वतन्त्रम्, यत्राक्षराभ्यासत प्रभृति, अनेकशास्त्राचार्यपरीक्षापर्यन्त सस्कृता-ध्यापनम्, आङ्गलभाषाहिन्दीभाषयोश्चाप्यध्यापन सम्यक् प्रचलति । अासन्नशताश्च छात्रास्तत्रैवाश्रमवाससुखमनुभवन्ति । अनेकविधाना व्यायामानाम्, आधुनिककन्दुकक्रीडादीना चाप्यस्ति प्रशस्त प्रबन्ध । प्रत्यब्दमनेके छात्रा काशिकाचार्यशास्त्रिपरीक्षा

जयपुरीयपरीक्षाश्च समुत्तरन्ति । श्रीसुरजनदासस्वामिमहोदयसदृशाः शास्त्रचतुष्टय आचार्यपदभाजः, आङ्गलभाषायाम् एम. ए. पदभाजश्च विद्यालयस्यास्य प्रसादभूता अस्य यशोवितानमभितो वितन्वते । सुयोग्यानामध्यापकानां प्रबन्धेन सहात्र निवसतां साधूनामन्यच्छात्राणां च भोजनादिव्ययोऽपि विद्यालयकोशेनैव शिरसा समुह्यते । ईदृशेऽतिविषमे काले एतावान् व्ययभारः, तस्य सम्यङ् निर्वहणं च यत्सत्यमनितरसाधारणं कार्यपटुतां श्रमं च परिचालकानां प्रकटयति । श्रीदादूसंप्रदायानन्तभूता अपि बहवो ब्राह्मणादिच्छात्रा अत्र सम्यक् शिक्षामधिगच्छन्ति । श्रीलक्ष्मीराम-स्वामिनामुत्तराधिकारिणः श्री जयरामदासस्वामिनः, एतद्विद्यालयस्नातकाश्च श्रीसुरजनदासस्वामिप्रभृतयः कार्यपरिचालने महान्तं सहयोग विभ्रति । अन्येषामपि सांप्रदायिकप्रमुखानां विद्यानुरागिणां च सम्यक् सहयोगमवाप्येतोऽप्यधिकामयमासादयतून्नतिं महा-विद्यालय इत्यहं प्रार्थये जगदीश्वरमिति–

कार्तिक शु० ३ स० २००७ वि० — गिरिधरशर्मा चतुर्वेदः

श्री काशीपुर्याम् — (जयपुराभिजनः)

श्री पं० चन्द्रदत्तजी शर्मा

भूतपूर्व प्रोफेसर महाराज संस्कृतकालेज, जयपुर.

प्राचीनभारतीयसभ्यतायाः संस्कृतेश्च संरक्षणार्थम् १९७७ तमे वैक्रमेऽब्दे संस्थापितोऽसौ श्रीदादूमहाविद्यालयः संस्कृतस्य अनवरतं सेवां विधत्ते ।

अत्रत्या विद्वांसः अक्षराभ्यासमारभ्य आचार्यपर्यन्तं परिश्रम-पूर्वकमध्यापयन्ति । व्याकरणसाहित्यवेदान्तायुर्वेदादिविषयेषु आचा-

यंपर्यन्तं छात्रा पठन्ति।

विद्यालयस्यास्य छात्रा विनीताः सदाचारिणो व्युत्पन्नाश्च भान्ति। स्व० रामचन्द्रशास्त्रिणा समयेऽनेन विशेषोन्नतिर्विहिता।

अध्ययनेन साकमेव विशुद्धभारतीयव्यायाममपि समभ्यस्यन्ति विद्यार्थिनः। ब्रह्मचर्यानुकूलं छात्रावासस्य व्यवस्थाप्यत्रास्ति। यत्र छात्रास्तत्तत्कर्मणि स्वावलम्बनमाश्रयन्ति। विद्यालयस्यास्य सञ्चालकः स्वामिमङ्गलदासोऽतीव कर्मठः परिश्रमी विद्वाँश्च विद्यते। अहं हृदयेनास्योन्नतिं वाञ्छामि।

२१-१२-५२ श्रीचन्द्रदत्तशर्मा मैथिल

भूतपूर्व शिक्षा सचिव तथा राजस्थान पब्लिकसर्विस कमीशनके अध्यक्ष

श्री प० देवीशंकरजी तिवाडी, जयपुर

श्रीदादू महाविद्यालय लगभग ३३ वर्ष पूर्व भारतप्रसिद्ध आयुर्वेदमार्त्तण्ड श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी आयुर्वेदाचार्य द्वारा स्थापित किया गया था। तब से निरन्तर यह प्रगति कर रहा है, इसका मुझे हर्ष है। एक बीज के रूप मे बोया हुआ यह विद्यालय आज एक बडे वृक्ष के रूप मे फलीभूत होरहा है, यह सन्तोष का विषय है।

इस विद्यालय मे अक्षराभ्यास से आचार्य पर्यन्त शिक्षा दी जाती है। वेदान्त, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, सांख्ययोग और आयुर्वेद विषयों मे पूर्णरूपेण आचार्य तक शिक्षा दी जाती है। उपर्युक्त सब विषयों के आचार्य परीक्षोत्तीर्ण छात्र यहां से निकले है। यहा का परीक्षाफल ६० प्रतिशत से सदा ऊँचा ही रहा है।

विद्यालय का अपना छात्रावास भी है जिसका उद्देश्य है कि विद्यार्थियों को शिक्षा देने के साथ साथ स्वावलम्बी भी बनाया जाय। यह देखकर हर्ष होता है कि यहां के विद्यार्थी सब काम स्वयं अपने हाथों से करते हैं। बौद्धिक विकास के साथ साथ शारीरिक विकास के लिये यहां विशुद्ध रूप से भारतीय पद्धति द्वारा व्यायाम शिक्षा भी अनिवार्य है। छात्रावास का संचालन प्राचीन आश्रमपद्धति पर होता है।

सब प्रकार से विद्यालय के फलीभूत होने का श्रेय त्यागमूर्ति स्वामी मंगलदासजी को है जिनके संरक्षण में यह निरन्तर प्रगति कर रहा है। विभिन्न प्रकार से सहायता देकर इसे उत्थान की ओर ले जाने वालों में श्री स्वामी सेवारामजी, वैद्य जयरामदासजी, सुरजनदासजी और केशवदासजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मैं आशा करता हूं कि यह विद्यालय इसी प्रकार उन्नति करता रहेगा।

देवीशङ्कर तिवाड़ी
१६-१-५३

जयपुर के लब्धप्रतिष्ठ वैद्यवर

पं० श्री मुकुन्ददेवजी शर्मा

श्रीधन्वन्तरिभेषजालयस्य स्थापनाया एकवर्षानन्तरम् श्रीदादूपथ-सम्प्रदायपरिव्राजकैराचार्यचरणैर्ब्रह्मलीनैः सुगृहीतनामधेयैः श्री लक्ष्मीरामस्वामिमहोदयैः सप्तसप्तत्यधिकैकोनविंशतिशततमे(१६७७)

वत्सरे सिते ज्येष्ठे श्री गङ्गादशम्यां गमनिवासोद्यानासन्नवर्तिनि श्रीस्वामिरतिराममहोद्यानामुपवने श्रीदादूमहाविद्यालयाभिध एको लघुपादप आरोपितोऽभूत् । यस्य सेचनकार्यं प्रतिभावता त्यागमूर्तिना श्रीस्वामिमङ्गलदासमहानुभावेन सुतरां निर्व्यूढ स्वेच्छया । अथ च गच्छता कालेन दादूपथसम्प्रदायेन भृशं अवकाशादिप्रदानपूर्वकं यत्नेन "मोतीडूगरी" स्थाने सुपोषित सवर्धित चासीत्तत्र स पादपो भूयो बद्धमूलो व्यथायि । तत्र सुपुष्पितेन तेन सर्वा अप्याशा सौरभ-सुवासिताश्चकासिरे । तदनु च एम ए इत्युपाधिधारिश्रीस्वामि सुरजनदाससदृशा श्रीबलरामहनुमद्दासशास्त्रिप्रभृतयश्च सुस्वादुप्रसवा (फलानि) समुद्भूता येषा सुमधुरमुपदेशामृतरसं नितरां पिबन्ती जनता स्व धन्यम्मन्यमाना मोमुद्यतेतमाम् । जगदीश्वर कल्पवृक्षमिम चिर जीवितमितोऽपि सातिशयफलोत्पादक च कुर्यादिति

शुभाशासी—

वैद्यमुकुन्ददेवशर्मा मिथ्रवनम् ।

साहित्यवारिधि कविशिरोमणि, कविसार्वभौम, महाराजकालेजजयपुरस्य, जयपुरराजकीयसंस्कृतकालेजस्य च प्रधानाध्यापक जयपुरराज्यस्य संस्कृतशिक्षासंस्थाना निरीक्षकचरश्च ।

भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री साहित्याचार्यः

सपादक सस्कृतरत्नाकरस्य

भगवद्भावभूयिष्ठा भूरिभाग्यविभासिता ।
आजन्मविभवमोगाढ्या भारते भातु भारती ॥

जयपुरसुप्रतिष्ठितेन श्रीदादूमहाविद्यालयेन सह मम परिचय प्रारम्भमात्रायाऽप्यपर्यन्तमपि येन केनापि रूपेण प्रगाढ एव समभूत् ।

महाविद्यालयस्यास्य जन्मदातारः पुण्यकीर्तिश्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागा यथा किल भारतख्यातकीर्तयोऽगदङ्कारा: समभूवन् तथैव दादूसंप्रदायस्याऽप्यलंकारा आसन् । तैः सम्प्रदायेऽस्मिन् शिक्षाया यादृशी आवश्यकताऽनुभूता तदनुसारेणैव सोयं विद्यालयः समये समये यथावत्परिचालितः सफलश्चाभूदिति संतुष्येयुर्मर्मवेदिनः कोविदाः । प्रारम्भे यः शिक्षाक्रमोऽत्र प्रवर्तितोऽभूत्स इदानीं सुव्यवस्थितो दृष्टफलश्चास्तीति प्रत्यक्षं वीक्षेरन् परीक्षकाः ।

साम्प्रतमस्मिन् विद्यालये अक्षराभ्यासमारभ्य साहित्य-व्याकरण-वेदान्त-दर्शन सांख्ययोगायुर्वेदविषयाणामाचार्यपरीक्षापर्यन्तं प्रदीयते प्राच्यविभागीया शिक्षा । लोकव्यवहारानुसारम्–हिन्दीभाषायाः, तथा मैट्रिकपरीक्षापर्यन्तमाङ्गलभाषाया अपि शिक्षा परिचलति विद्यालयेऽस्मिन् । सम्प्रदायेऽस्मिन् व्यायामस्य वीरतायाश्च प्रसङ्गः प्राचीनकालादेव प्रचलित इति जानीयुरेव परिचिताः पुरुषाः, एतत्संप्रदायीयाः साधवः सैन्यपरिचालका भूत्वा पुरा जयपुरराज्यस्य संरक्षणकल्याणेऽपि भूयस्तमं भागमगृह्णन् । एतदनुसारम् 'बडौदा' पद्धतिमवलम्ब्य भारतीयव्यायामस्यापि साधीयसी शिक्षा प्रदीयते विद्यालयेऽस्मिन् ।

सर्वतः प्रशंसनीया सेयं व्यवस्था नूनं यदस्मिन् विद्यालये छात्रावासस्य प्रबन्धः प्राचीनाश्रमपद्धतेरनुसारम् । अत्र हि धनिकनिर्धननिर्विशेषं सर्वेषामपि छात्राणां भोजनाच्छादनादिव्यवस्था एकरूपा नूनम् । अत्र हि सर्वेषां निवासविनोदादिकः सरलः, वेषभूषा साधारणी, दिनचर्या चापि नियमिता । अयमपि सुप्रशस्यो विशेषो यत् छात्रावासे छात्रावासस्य सर्वाण्यपि कार्याणि स्वयं छात्रा एव निर्वाहयन्ति, न भृत्यादीनामपेक्षा । एतस्य कारणमिदमेवास्ति

यन-विद्यालयस्यास्य संस्थापनाना मुख्यमुद्देश्य भारतीयसंस्कृते, भगवत्या संस्कृतसरस्वत्याश्च सर्वत संरक्षण नाम। एतन्महाविद्यालयस्य मुख्यव्यवस्थामालोच्यैव वाराणसेयगवर्नमेन्टसंस्कृतकालेजेन राजस्थान (राजपूताना) प्रान्ते अस्यै एव संस्थायै सार्वदिकी सेय स्वीकृति संदत्ता यत् साहित्य व्याकरण-वेदान्त-दर्शन-सांख्ययोगाभिधेपु पञ्चसु विपयेपु सेय संस्था निर्विशङ्क परीक्षार्थिन प्रेषयितु शक्नुयात। विद्यालयस्य भवनम्, छात्रावास, व्यायामादे स्थलादिक च सुप्रशस्ते आरोग्यवर्द्धके च प्रदेशे समवस्थितम्। जयपुरराज्यस्य शिक्षाविभागद्वारा यदाह राज्यस्य यावन्मात्रसंस्कृतशिक्षासंस्थाना निरीक्षकोऽभूव तस्मिन् काले बहुधा निरीक्षितोय मया विद्यालय। महाविद्यालयेनानेन क्रमश प्रशसनीया समुन्नतिरधिगतेति हृदयेनाभिनन्दामि। एतस्मिन् विद्यालये कृताध्ययना एव छात्रा साम्प्रत विद्यालयस्याध्यापनादेरपि कार्य परिचालयन्तीति को वा मार्मिको न प्रसीदेत्? निर्मायभावेन सम्प्रदायसेवक श्रीमान श्रीमङ्गलदासस्वामिमहाभाग प्रारम्भमारभ्याऽद्यावधि प्राणरूपतया संस्थामिमा परिचालितवानिति धन्यवन्योऽय महाभाग। उत्तरोत्तर सेय संस्था राजस्थानप्रान्तस्याऽऽदर्शभूता भवेदिति भगवन्तमभ्यर्थये विनयेन–

दीपावली संवत् २००७ } भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री

श्रीदिगम्बर जैन संस्कृत कालेज जयपुर के अध्यक्ष

श्री चैनसुखदासजी रांवका, जयपुर

जयपुरस्थश्रीदादूमहाविद्यालस्य रजतजयन्तीमहोत्सवो भवितेति श्रुत्वा पुरुषधौरेयाणा विपश्चिदपश्चिमाना गीर्वाणवाणीविद्योति-

तान्तःकरणानामवश्यं परमोल्लासः समुज्जृम्भते । अस्मिन् महाविद्यालयेऽक्षराभ्यासतः आरभ्य न्याय-वेदान्त-साहित्य-व्याकरण-दर्शनायुर्वेदादयः सर्वेऽपि विषयाः आचार्यपरीक्षापर्यन्तं समध्याप्यन्ते । अत्रत्याश्छात्राः न केवलं तत्तत्परीक्षा एव उत्तरन्ति अपितु ग्रन्थग्रन्थि-विघटनपटवोऽपि भवन्ति-इति बहुशः परीक्षितं मया ।

अत्रत्या अध्यापनसरणिस्तु राजमार्ग इव अतीव सरला । विद्यालयेऽस्मिन् स्वास्थ्यरक्षायै प्राचीना शस्त्रशिक्षा आधुनिकी सामुदायिकी शारीरिकी शिक्षा च तद्विद्यातिनिष्णातैः प्रदीयते । साम्प्रतिकीनां कन्दुकादिक्रीडानाञ्चात्र समुचितः प्रबन्धोऽस्ति ।

विद्यालयीयं सात्त्विकं भोजनं, स्वास्थ्यप्रदं स्थानं, सर्वसौविध्योपेतं भवनं, विविधलतावृक्षादिसनाथं, सुनिर्मितं रमणीयमुद्यानकञ्च दृष्टमात्रमेव प्राचीनम् ऋषिकुलं स्मारयति । किम्बहुना अत्रत्यानां छात्राणां सदाचरणमनुशासनं सर्वातिशायिनी त्यागवृत्तिश्च निखिलविद्यालयानामादर्शरूपतामुपस्थापयति । छात्राः स्वयमेव गोसेवां पाकं कृष्यादिकञ्च सर्वमपि कार्यजातं सम्पादयन्ति ।

ये खलु अस्याः संस्थायाः संरक्षकाः संस्थापकाः प्रबन्धकाः अध्यापकाश्च सन्ति ते अवश्यं धन्यवादार्हाः । अन्ते चाहं भगवन्तमर्हन्तं भूयो भूयः प्रार्थये यदियं संस्था उत्तरोत्तरं परिवर्द्धमाना स्वर्णजयन्त्युत्सवाय प्रभवेदिति ।

ता० ३०-९-५३ चैनसुखदास रावका

नश्ली राजस्थाने शिक्षाविभागीयमहोदयाना सुप्रबन्धेन फलान्यनश्व-
मर्पयिष्यतीत्याशास्ते

अयोध्याय दार्शनिकाश्रमस्थ
स्वामिवासुदेवाचार्य

श्री उदासीन सम्प्रदाय के लब्ध प्रतिष्ठ ख्यतानामा विद्वत्प्रकाण्ड
महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गणेश्वरानन्दजी

श्री नमो ब्रह्मणे

तपोयोगानपायस्य, किन्तु विख्यातसन्तते ।
श्रीदादूसम्प्रदायस्य क आनृण्य करिष्यति ॥
कवि कविरतिक्रान्त पर योगानुभावत ।
यतयो दादूरामस्य सर्वानेवातिशेरते ॥
महाविद्यालयस्तेषा श्रोत्रियाणा महात्मनाम् ।
कीर्तिं गरीयसीं धत्ते साधुसंस्कृतशिक्षया ॥
आरभ्याक्षरविन्यासाद् यावदाचार्यदीक्षितम् ।
पदवाक्यप्रमाणानां चिकित्साया च शिक्षणम् ॥
भारत्याङ्ग्लार्थशास्त्राणा स्मृतीना निगमस्य च ।
कलाना गीतमुख्याना व्याख्यानस्य विशेषत ॥
स्नातयन्त पथिप्रज्ञा विशिष्टा शिष्टबुद्धय ।
लब्धराजपुरस्कारा केचित् परिचिता मम ॥
समीक्षे भारते शाब्दे वेदान्ते स्वर्णपत्रके ।
अलम्भूताऽप्यलम्भूतामाचार्यपदवीं वहन् ॥
एम् ए परीक्षामुत्तीर्ण प्राध्यापकपदस्थित ।
श्रीमान् सुरजनदासो निविरस्यैव मूल्यवान् ॥

निगमागमशाखासु हनूमानिव गत्वरः ।
अभिधानाभिधेयाभ्यामन्वर्थः प्रथमार्थभाक् ॥
एवमन्येऽपि विद्वांसो विद्यालयविभूतयः ।
चकास्तु कीर्तिमानेष विद्यालयसुरद्रुमः ॥
अध्यक्षाः कुलपतयः संस्थासंस्थापकाश्चान्ये ।
श्रीमन्मङ्गलदासप्रमुखा बहुमानसम्भाव्याः ॥
दादुमहाविद्यालय ! सुचिरं परिपुष्य कीर्तिमान् भूयाः ।
श्रीस्त्वयि गीस्त्वयि जुषतामनुदिनमाराध्यतां देशः ॥

श्रीवेदमन्दिर, कांकरियारोड, अहमदाबाद
ता० २७-११-५० ई०

शुभाकाङ्क्षी
स्वामी गंगेश्वरानन्दः

उदासीन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान्
स्वामी श्री सर्वानन्दजी

ओं नमो ब्रह्मणे

राजस्थानप्रान्ते जयपुरं वाराणसीसंकाशं विद्याकेन्द्रमस्ति । तत्र वीतरागाणां विजितसंसारविकाराणां कौपीनवेषाणां महात्मनां बलवता फलवता च प्रयत्नेन संस्थापितोऽयं "श्रीदादूमहाविद्यालयो" धनसम्पदा बहुमानितानप्यन्यान् विद्यालयान् प्रबन्धेनानुबन्धेन चाधरीकरोति । अस्मिन् विद्यालये छात्रेभ्यः शास्त्रेषु चारित्र्ये व्यायामे च समीचीना शिक्षा प्रदीयते । वाराणसेयपरीक्षासु जयपुर-राजकीयपरीक्षासु च लब्धोपाधयो लब्धपुरस्काराश्चानेके छात्रा आंगलभाषायामप्युच्चश्रेणिषु प्रविष्टा विशिष्टाध्यापकपदे कृतार्था अव-लोक्यन्ते । किं च 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति

तेज ' इत्युक्तिं सफलयन्तो मुनिमूर्धन्यास्त्यागमूर्तय श्रीमन्मङ्गलदास-स्वामिमहोदया येन प्रयासेन विद्यालयस्य सेवा कुर्वन्ति, स प्रशंसितुमपार्योऽपि अनन्यसाधारणो साधुसमाजे विद्वत्समाजे च सस्मृतिमर्हति। सर्व एव सम्प्रदायोऽनया विभूतिं मत्वा विद्यालयसेवाया बद्धपरिकरो रजतजयन्तीमहोत्सवेन सनाथयन अनुदिन सर्वातिशायिनीं परिपुष्टिं प्रापयतु। अमरत्वकामाऽमरभारती अमरवात्सल्येन ज्ञानशिशुमिम शतायुष पश्यतु साभिलाषेत्याशास्ते

श्रीवेदमन्दिर, काकरियारोड, अहमदाबाद
ता० २७-११-५०

शुभाशसक
स्वामी सर्वानन्द.

दिल्ली के प्रसिद्ध व्यवसायी

श्री सेठ जमुनादासजी पोद्दार

भारतीय प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धारक श्रीदादू महाविद्यालय जयपुर को निरीक्षण करने का मुझे आज सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस पुनीत संस्था के प्रत्येक विभाग को भली भांति देखकर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। संस्था के कार्यकर्ताओं के सदुद्देश्य प्रबन्धकुशलता त्याग और परिश्रमशीलता को प्रत्यक्ष देखकर मुझे निश्चय होगया है कि इस दादू महाविद्यालय द्वारा प्राचीन संस्कृत-विद्या और समस्त चिकित्साप्रणालियों के जन्मदाता आयुर्वेदविज्ञान का अवश्य ही पुनरुद्धार होगा।

विद्यालय में इस समय विद्यार्थियों की उपस्थिति १०० से ऊपर है। इनमें से ५० विद्यार्थी करीब शहर से पढने आते है और शेष ५० विद्यार्थियो से कुछ ऊपर यहीं छात्राश्रम में रह

कर पढ़ते हैं और यहीं भोजन करते हैं ।

मैंने भोजन के समय प्रातःकाल में भोजनालय को भी देखा । भोजन बहुत उत्तम, शुद्ध सात्विक और पवित्रता से बना हुआ था । यहां भोजन की सामग्री असली प्रयोग में लाई जाती है । भोजनादि के इस उत्तम प्रबन्ध को देखकर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।

इस महाविद्यालय में विशुद्ध दुग्ध की प्राप्ति के लिये अच्छी नसल की गायें और भैंसें भी रखी हुई हैं ।

यद्यपि मैं ऐसा विद्वान् व्यक्ति नहीं हूं जिससे महाविद्यालय की पाठ्यप्रणाली तथा अध्यापनसम्बन्धी विषयों और छात्रों की पढ़ाई की योग्यता के सम्बन्ध में विशेषरूप से कोई सम्मति दे सकूं तथापि साधारण अनुसन्धान और जिज्ञासु बुद्धि से यह अवश्य कह सकता हूं कि यहां की पढ़ाई सन्तोषजनक है । विद्यार्थिगण नम्र सुशील और प्रश्नोत्तर में चतुर मालूम हुए । मेरे अनेक प्रश्नों के समुचित उत्तर पाकर मैं विद्यार्थियों से अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।

विद्यालय में ज्ञानवृद्धि के लिये एक विशाल पुस्तकालय भी है, जिसमें संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त समस्त विषयों की पुस्तकों का सराहनीय संग्रह है ।

विद्यालय की उपर्युक्त उन्नति का श्रेय जहां पूज्यपाद श्री बाबाजी महाराज श्री लक्ष्मीरामजी की संरक्षकता को है वहां एक और कर्मयोगी और वास्तविक सत्यनिष्ठ साधु पुरुष हैं जिन्होंने इस महाविद्यालय को उन्नत बनाने में और श्रद्धेय स्वामीजी लक्ष्मीरामजी महाराज के उद्देश्य को सफल बनाने में अपना जीवन संस्था के अर्पण कर दिया है । वे त्यागमूर्ति और पुरुषार्थ

के मूर्तिमान् रूप पूजनीय श्री स्वामी मंगलदासजी महाराज हैं। विद्यालय के समस्त विभागों के उत्तम प्रबन्ध का एकमात्र मूल कारण ये ही स्वामीजी महाराज हैं।

जमनादास पोद्दार

भादवा सुदी ७ साल १९९५
नया कटरा, दिल्ली (बिसाऊ निवासी)

आयुर्वेदमार्त्तण्ड प्राणाचार्य भट्टारक महामहोपाध्याय राजमान्य

राजवैद्य प० श्रीउदयचन्द्रजी चाणोदगुरा

इस असार संसार में महापुरुषों के भी चरणचिह्न शेष नहीं रहते। उनके केवल कार्यचिन्हों से ही उनकी महत्ता का व्यापक प्रभाव अनुभव किया जाता है। स्वर्गीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज भी उन महाविभूतियों में से ही एक अद्भुत महापुरुष थे, जिन्होंने अपने सभी सम्बन्धित क्षेत्रों में अपने कर्मचिह्न अंकित कर दिये। श्री स्वामीजी महाराज के उन कर्मचिन्हों में से ही एक यह श्री दादूमहाविद्यालय है जो उनकी हृत्कामना का व्यक्त रूप है। श्री स्वामीजी अपने जीवन में लक्ष्यसिद्धि का केन्द्र किसे समझते थे यह यदि हमें जानने को है तो श्रीदादूमहाविद्यालय को देखने पर कुछ शेष नहीं रहता।

जब मैंने सर्वप्रथम विद्यालय के प्रागण में पहुँच कर उसकी स्थिति का सिंहावलोकन किया तो मुझे विद्यालय के नाम से सम्बन्धित श्री दादूजी महाराज के नाम की सार्थकता का प्रत्यक्ष भान होने लगा कि इस नवीन विज्ञान की चकाचौंध में भी प्राचीन

आश्रम परिपाटी से ऐसी संस्थाओं का संचालन होरहा है। इसमें यदि विद्यालय से सम्बन्धित उस महान् विभूति के नाम का ही सुझाव स्वीकार करें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि उन महाविभूतियों की व्यक्त प्रेरणा ही हम सबको सन्मति प्रदान करती है कि हम सन्मार्ग का अनुसरण करें।

विद्यालय एक आदर्श संस्था है और शिक्षा के क्षेत्र में अपना एक अनूठा महत्त्व रखती है। प्रारम्भिक शिक्षण के बाद के उत्तर-दायित्व को स्वीकार करने वाली संस्थायें तो हमें फिर भी आज प्राप्त हो सकेंगी, किन्तु विद्यार्थी के प्रारम्भिक विकास के लिये वर्ण-ज्ञान से प्रारम्भ कर एक सर्वोच्च शिक्षा प्रदान करने वाली भारत में यह केवल एक ही संस्था है ऐसा कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त संस्था से निकलने वाले स्नातक भी अपने भावी कर्मक्षेत्र में एक सफल आदर्श उपस्थित कर संसार के समक्ष अनु-करणीयता उपस्थित करते हैं। विद्यालय का शिक्षाक्रम न केवल प्राचीन परिपाटी पर ही निर्भर है अपितु नवीनतम उपयोगी शिक्षा के माध्यम को भी इसने स्वीकार किया है। इस प्रकार संस्कृत के सभी विषयों में उच्चतम शिक्षा प्रदान करती हुई भी यह संस्था आज के युग के अनुरूप हिन्दी अंग्रेजी का भी शिक्षण कराती है।

न केवल विद्यार्थि-जीवन का ही अपितु मानवजीवन का अङ्गभूत व्यायाम का भी सुप्रबन्ध विद्यालय में किया गया है। वैसे तो सम्भव है कुछ स्वतन्त्र संस्थायें छात्रों के स्वास्थ्यलाभ के लिये व्यायाम की व्यवस्था अपने यहां रखती हैं किन्तु विद्यालय में जो व्यायाम की व्यवस्था है वह न केवल स्वास्थ्यलाभ की दृष्टि से ही अपितु एक सुव्यवस्थित पद्धति के भी अनुकूल है जो सैनिक शिक्षण

रा ही एक अङ्ग स्वीकार किया जा सकता है।

विद्यालय के साथ ही छात्रों के निवास के लिये एक सुव्यवस्थित छात्रावास का भी प्रबन्ध है जहां छोटे मोटे की भावना को त्याग कर प्रत्येक छात्र मे स्नेहस्रोत प्रवाहित होता प्रतीत होता है। विद्यार्थियो की साधारण वेषभूषा एव आदर्श ऋषि-जीवन विद्यालय के प्रागण मे पहुँचते ही फिर से प्राचीन गुरुकुलों का स्मरण करा देते है। विद्यालय के विद्यार्थियो का अनुशासन स्नेहानुबन्धी है। प्रत्येक छात्र अपने कर्तव्य का महत्व समझता है।

सक्षेप मे यदि यह कहे कि यह सस्था भारतीय सस्कृति की अक्षुण्ण रक्षा करती हुई स्वतन्त्र भारत के लिये सच्चे नागरिक उत्पन्न करती है तो अतिशयोक्ति नही होगी। स्वतन्त्रता के उपासकों के साथ ही विद्यालय के कर्णधारो ने भी स्वतन्त्रता का महत्व समझ लिया था और उसकी प्राप्ति के लिये रचनात्मक कार्य प्रारम्भ कर दिया था इसका व्यक्त-रूप ही विद्यालय है।

किन्तु प्रत्येक सस्था की सफलता उसके कर्मठ कार्यकर्ताओ पर ही निर्भर होती है। विद्यालय भी इस अटल सत्य से रिक्त नहीं रहा। उसे अपने शैशवकाल मे ही एक अलौकिक त्यागमूर्ति महापुरुष की सेवाओ का सरक्षण प्राप्त होगया, जिससे विद्यालय न केवल अपने शैशवकालीन अनवस्थित गति दोष से ही बच सका अपितु पूर्ण विकासकाल यौवनावस्था मे भी सावधानतया लक्ष्यसिद्धि की ओर अग्रसर होता रहा है। उस महापुरुष को यहा हम "स्वामी मङ्गलदासजी" के रूप मे परखते हैं जो "यथा नाम तथा गुण" के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यह आज श्री स्वामी मङ्गलदासजी के ही सत्प्रयत्नो का अविनाश फल है कि विद्यालय की " रजत जयन्ती "

जैसा विशेष माङ्गलिक उत्सव मनाया जा रहा है।

इस सूक्ष्म विचारसरणि के साथ ही मेरा मानसकेन्द्र एक वार फिर विद्यालय के मध्य प्रांगण में स्थिर होकर कामना करता है कि श्री गुरुदेव इस संस्था की पूर्ण उन्नति करें और संस्था के प्रमुख संचालकों में वह अदम्य उत्साह भरदें कि वे अपनी लक्ष्य-प्राप्ति में अधिक सफल हो सकें। इसके साथ ही मैं यह भी विनम्र सम्मति देना न भूलूंगा कि सर्वसाधारण जनता को विद्यालय का पूर्ण लाभ प्राप्त करना चाहिये। और हमारी सरकारें भी यथावश्यक सभी सहायतायें ऐसी आदर्श संस्थाओं को अवश्य दें जिससे उनकी समस्याओं का समाधान हो सके।

जोधपुर   पं० उदयचन्द्र चानोद गुरां
१०-४-५१

राजस्थान आयुर्वेद विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर
कविराज प्रतापसिंहजी D. S C. (Ayur.) P. C. S.

मान्य महोदय !

आपका कृपापत्र प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष हुआ। मैं श्रीदादूजी का अन्यतम श्रद्धालु हूँ। दादूजी की सामयिक वाणी का स्वाध्याय मन और आत्मा का बड़ा परितोष करता है। दादूजी महाराज के उपदेशों के साथ सामियक शिक्षा देना इस युग के लिए परम उपयोगी है।

आपने इस महाविद्यालय की त्यागपूर्वक जनसाधारण के लिए जो व्यवस्था की है वह अनुकरणीय एव प्रशंसनीय है। हमारे इस गरीब देश में महान् अट्टालिकाएं बनाकर और अनेक

खर्चीले आधुनिक सामान सामग्री को उपस्थित कर जो शिक्षा दी जारही है वह केवल क्लर्क पैदा करती है। उनमे न सदाचार है, न शारीरिक बल है और न उच्च विचारो का ऊहापोह है। अत आपका संस्कृत साहित्य द्वारा त्यागपूर्वक विद्यार्थियो को शिक्षा देना इस समय बडे ही महत्त्व का है।

मैं आपके इस रजतजयन्ती उत्सव के समारोह को सफल बनाने के लिये ईशप्रार्थना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आपके पुरुषार्थ और प्रेम से यह समारोह सर्वथा सफल होगा।

उदयपुर — भवदीय
६-१०-५० — क० प्रतापसिंह

डूगर कालेज बीकानेर के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक तथा अध्यक्ष
विशारद विद्यार्णव विद्यामहोदधि आदि पदवी विभूषित
श्री नरोत्तमदासजी स्वामी एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी)

जयपुर का श्री दादूमहाविद्यालय राजस्थान की एक आदर्श शिक्षासस्था है। इसमे छात्र-गण प्राचीन गुरुकुलों की पद्धति से शिक्षा प्राप्त करते है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि हा पर छात्रो की शिक्षा के मानसिक, शारीरिक, नैतिक और व्यावहारिक इन चारों अगोंपर समान रूप से बल दिया जाता है। विद्यालय का वातावरण एक विशाल परिवार का सा है। इसकी समस्त व्यवस्था स्वय छात्र ही पारस्परिक सहयोग से अपने अध्यापकों और कुलपति की देख रेख मे करते हैं। सारे विद्यालय मे कोई नौकर नहीं है। अपना व्यक्तिगत कार्य प्रत्येक छात्र अपने हाथ से करता है। छात्र ही नहीं, किन्तु अध्यापक एव कुलपति भी अपना सारा

काम स्वयं करते हैं। वे अपने कमरों में स्वयं झाडू लगाते हैं, अपना पानी स्वयं भरते हैं, अपने कपड़े स्वयं धोते हैं, तथा अपनी जूठी थाली को भी स्वयं मांजते हैं।

विद्यालय नगर के बाहर एक स्वास्थ्यपूर्ण स्थान में स्थित है। संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी और अंग्रेजी की शिक्षा भी दी जाती है। वाचनालय, पुस्तकालय व्यायामशाला, खेल के स्थान, खेल का सामान आदि सभी आवश्यक साधनों से यह सु-संपन्न है। पानी निकालने की मोटर और बिजली आदि की आधुनिक सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। एक छोटा सा छापाखाना भी है जहां छात्रगण कार्य करते हैं। विद्यालय का अपना बाग और अपनी गोशाला है जिसके फलस्वरूप छात्रों को स्वास्थ्य और बलकारक भोजन सहज ही प्राप्त होता है।

प्राचीनता के प्रति प्रेम होते हुए भी अंध-मोह नहीं है और न नवीन के प्रति उपेक्षा या अश्रद्धा की भावना ही। दोनों की ही अच्छाइयोंको ग्रहण करके उनके उचित सामंजस्य का प्रयत्न किया जाता है। सादा जीवन और उच्च विचार विद्यालय का मूलमंत्र है।

विद्यालय की स्थापना राजस्थान की महान् विभूति स्वर्गीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी वैद्य की प्रेरणा एवं सहयोग से आज से ३१ वर्ष पूर्व हुई थी उसके वर्त्तमान कुलपति स्वामी श्री मंगलदासजी हैं जिनको उनके छात्र, सहयोगी तथा परिचित जन त्यागमूर्त्ति के नाम से जानते और पुकारते हैं। इस एक शब्द में उनका पूरा परिचय आजाता है। आपने अपना समस्त जीवन विद्यालय को अर्पण कर दिया है। आपकी सादगी अपूर्व है। वह विद्यालय के

छात्रों, अध्यापकों एवं कार्यकर्त्ताओं के लिए महान प्रेरणादायिनी सिद्ध हुई है। आपके सम्पर्क में आनेवाला कोई भी व्यक्ति आपसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। देश का साधु-समाज आपके आदर्श को अपना सके तो देश और समाज दोनों का ही काया-पलट होते देर न लगे। स्वामी श्री सुरजनदासजी के रूप आपको अपने ही अनुरूप सहकारी की प्राप्ति होगयी है यह हर्ष की बात है। श्री सुरजनदास जी इसी विद्यालय की विभूति हैं यह देखकर और भी हर्ष होता है। ऐसे ही अनेकों सुयोग्य और कार्य कुशल विद्वानों की देखरेख में विद्यालय का सञ्चालन होता है। विद्यालय के निकट सम्पर्क में आने और इसके छात्रों एवं अध्यापकों के जीवन को निकट से देखने के मुझे अनेक अवसर मिलते रहे हैं। रजतजयन्ती के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले इस उत्सव के अवसर पर मैं विद्यालय के छात्रों, अध्यापकों, कार्यकर्त्ताओं, सञ्चालकों और सहायकों का अभिनन्दन करता हूँ और हृदय से कामना करता हूँ कि विद्यालय निरन्तर उन्नति के पथ पर प्रगतिशील रहे।

बीकानेर — नरोत्तमदास स्वामी

मार्ग शु० ११ सं० २००७

श्रीचन्द्र औषधालय (मुल्तान) के अध्यक्ष पण्डितभूषण

वैद्य श्रीरामदासजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य (उदासीन)

श्रीदादूमहाविद्यालय जयपुर से मेरा परिचय वा सम्बन्ध गत २४ वर्षों से है। तब यह संस्था रामनिवास बाग के पिछले भाग में श्री रतिरामजी के उपवन में विद्यमान थी, जहां इसका छात्रावास

और विद्यापीठ दोनों एकत्र थे। यह संस्था अखिलभारतवर्षीय साधु-संप्रदाय के विभिन्न विद्यापीठों में से अपने ढ़ंग की अन्यतम शिक्षा संस्था है।

यहां वेद-वेदाङ्ग-दर्शन-साहित्य-धर्मशास्त्र आदि प्राच्यविद्या एवं लोकोपकारक आयुर्वेद-शास्त्र के विज्ञान का पठन पाठन तथा व्यवहारोपयोगी इंग्लिशभाषा की पढ़ाई का भी समुचित प्रबन्ध चला आ रहा है। इस महाविद्यालय का पाठ्यक्रम तथा अध्यापक-वर्ग सदा उच्चस्तर (High Standard) का रहा है, इस शिक्षा संस्था में सामान्यतः सभी साधुसम्प्रदाय, विशेषतः दादूपन्थी महात्मा अधिकतर संख्या में विद्या प्राप्त करते हैं, और यहां उनके निवास, भोजन, वस्त्र, पुस्तक आदि का संपूर्ण प्रबन्ध एवं समस्त व्यय उक्त विद्यालय करता है। गत ३० वर्षों से यह उच्च कोटि की शिक्षा-संस्था जिस तीव्र प्रगति और तत्परता से सुरभारती की निःस्पृह सेवा कर रही है और विद्यादान से शतशः विद्यार्थियों के जीवनस्तर को उच्चतर एवं समुज्ज्वल बना रही है, विशेषतः छात्रों को विद्वान् बनाने के अतिरिक्त उनको सादा जीवन व्यतीत करने का जो अनुपम शिक्षण यह विद्यालय देता है वह सर्वथा प्रशंसनीय एवं सदा अनुकरणीय है।

यहां यह कहना अनुचित न होगा, कि इस विद्यापीठ का सुव्यवस्थित प्रबन्ध तथा समुचित संचालन आदि का समस्त श्रेय त्यागमूर्ति महामना श्री स्वामी मङ्गलदासजी महाराज को है, जिनकी निःस्वार्थ सेवा, निष्काम भावना, कार्यक्षमता और तत्परता ने इस महाविद्यालय को आदर्श एवं आदरणीय बनाया है। इस उदार स्वार्थत्याग के लिए श्री स्वामी मङ्गलदासजी महाराज कोटिशः धन्यवादार्ह तथा स्पृहणीय, स्मरणीय, और आदर्श नररत्न हैं।

अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के प्र० मन्त्री

श्री विद्याधर जी शास्त्री एम. ए., बीकानेर

राजस्थानस्य सुप्रसिद्धेन प्राचीनेन श्री दादूमहाविद्यालयेन सुविहिता संस्कृतशिक्षासेवा सर्वथा सम्मानार्हा। स्वतन्त्रे विशुद्धे च प्राकृतिके वातावरणे शिक्षामासादयन्तोऽत्रत्या स्नातका बलिष्ठा नानाशास्त्रविचक्षणा लोकसेवानिरताश्च भवन्तीति चिरान्मयानुभूतमन्यैश्चापि सर्वैरेव विद्यालयवर्गैर्नित्यं प्रत्यक्षमनुभूयते ।

अस्य विद्यालयस्य संस्थापने स्व० प्रातःस्मरणीयानां श्री १०८ श्री लक्ष्मीरामस्वामिमहोदयानां वर्तमाने च मान्यानां श्रीमङ्गलदासस्वामिवराणां प्रयत्नः सर्वथा श्लाघ्यः संस्मरणीयश्चास्ते ।

भगवतो विश्वनाथस्य कृपया भविष्यति इतोऽप्यधिकमत्रत्या अन्तेवासिनो भवेयुः सर्वविद्याविशारदाः समाजसेवकाश्चेति प्रार्थयते

विद्याधर शास्त्री एम ए

श्री मारवाडी संस्कृत कालेज बनारस के

पं० श्री गणपतिजी शास्त्री मोकाटे

मन्त्रमार्तण्डविक्रमोनविंशतितमे शतके वैक्रमाब्दे स्थापितस्य श्रीदादूमहाविद्यालयस्य साम्प्रतं रजतजयन्तीमहोत्सवो भविता। सोऽयं क्रमशोऽभ्युन्नते परां गतिं सूचयतीति निश्चप्रचम्, यतोऽत्र बालका मारवाड्यासमारभ्य सदाचारादिनियमव्रतानुष्ठानपूर्वकं मूर्द्धन्याभिषिक्ताया आङ्ग्लभाषाया साम्प्रतं राष्ट्रभाषायाश्च शिक्षां लभन्ते। यत्र च चरित्रनिर्माणराष्ट्रोन्नत्यै प्राचीनाधुनिकरीत्या शारीरिकव्यायामादिकस्य उत्तमा शिक्षा प्रदीयते। एवंक्रमेणास्य व्याकरणसाहित्यदर्शनादिविषयेषु आचार्यपदवीं प्राप्नुवन्ति । कालक्षेपात् च-

हूनां धर्मप्रमाणेषु ब्राह्मणादिधार्मिकवर्गेषु चाविश्वासेन धर्मस्वरू-
पेऽपि व्यामोहः सञ्जात इति, एतद्दुःखप्रतिघातक्षममेव कञ्चन रक्षा-
मार्गं सनिश्चयं स्नातकेषु दर्शयितुं प्राचीनास्मज्जात्याचारधर्मेषु दृढनि-
श्चयविश्वासादिकं समुत्पादयितुञ्च समर्थोऽयं विद्यालय इति ज्ञात्वा
केषां सनातनसंस्कृतिसमुपासकानां मानसे न प्रमोदः समुदेष्यति।
एतादृशीञ्च संस्थां के वा न विद्वांसः सम्मन्येरन्। अतोऽस्य वि-
द्यालयस्य समुन्नत्यै यशसोऽभिवृद्धयै श्रीविश्वेश्वरपदाम्बुजसन्निधौ स
ततं प्रार्थयते संस्कृतविद्यानुरागिणोऽस्य साहाय्यकं कुर्वन्त्विति

गणपति शास्त्री मोकाटे



—:इति शुभम्:—

स्नातक परिचय खण्ड

[४]

स्नातक परिचय



वैद्य श्रीकान्हदास स्वामी आयुर्वेदाचार्य

आपने सं० १९७४ में देवगढ़ (जयपुर) ग्राम निवासी दादूमतानुयायी स्वामी श्रीशिवरामदासजी से दीक्षा ग्रहण की। अपने निवासस्थान पर ही कुछ समय तक प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इस महाविद्यालय में शिक्षार्थ प्रवेश प्राप्त किया। यहां रह कर व्याकरण विषय की शास्त्रीय परीक्षा तथा आयुर्वेद विषय की आचार्य परीक्षा पास की।

आचार्यश्रेणी में अध्ययन करते समय आप प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय श्री लक्ष्मीरामजी की सेवा का लाभ उठाने के लिये उन्हीं के पास रहने लग गये। वहां अपनी सेवा से महाराज को सन्तुष्ट कर उनके अमूल्य आशीर्वाद को प्राप्त किया एवं कर्माभ्यास सहित आयुर्वेद के गूढ़ रहस्यों को भी सीखा। स्वामीजी महाराज के स्वर्गारोहण के बाद आपने एक वर्ष तक बनस्थली विद्यापीठ में प्रधान चिकित्सक का कार्य किया।

आपकी इच्छा स्वतन्त्रतया चिकित्सा करने की थी। अतः वनस्थली विद्यापीठ का परित्याग कर चूरू में आपने चिकित्साकार्य प्रारम्भ किया। वहां आशातीत सफलता व ख्याति प्राप्त की। आप अतीव लोकप्रिय, यशस्वी, सरल, उदार व सच्चरित्र व्यक्ति हैं। आपकी वेष-भूषा रहन-सहन सादा तथा विचार उच्च हैं। विद्यालय में आप ही एक ऐसे विद्यार्थी रहे हैं जिनने अपने आचरण से अधिकारियों को पूर्ण सन्तुष्ट किया तथा उनके हृदय में ऊँचा स्थान बनाया।

आपने अध्ययनकाल में विद्यालय सम्बन्धी तथा अध्यापन सम्बन्धी कार्य में भी यथाशक्य भाग लिया है। वर्तमान में आप अपने गुरुजनों की प्रेरणा से चूरू का परित्याग कर भिवानी (पूर्वी पञ्जाब) में अपना चिकित्साकार्य कर रहे हैं और तत्प्रान्तीय साधु एवं गृहस्थ विद्यार्थियों के भोजनाच्छादनादि की व्यवस्था करते हुए उन्हें विद्यादान दे रहे हैं। आप जैसे व्यक्तियों का विद्यालय को अभिमान है।

सन्त श्रीमोतीराम स्वामी भिषगाचार्य

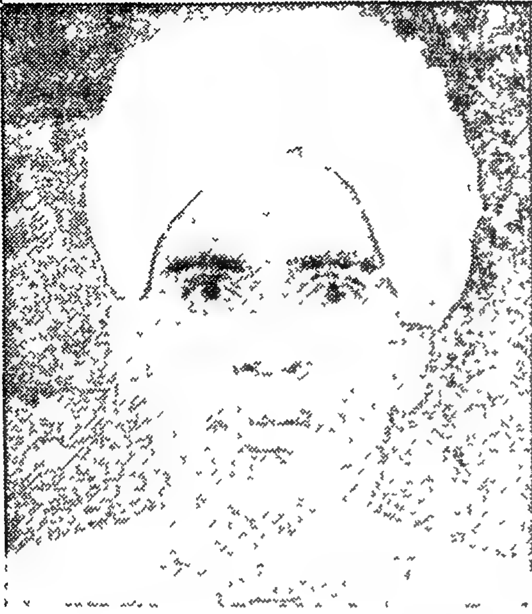
आप ७ वर्ष की अवस्था में जयपुर में महामण्डलीक दादूसमाज में अग्रगणनीय स्थान रखने वाले स्वामी श्रीकेशवदासजी द्वारा दीक्षित होकर अध्ययनार्थ इस संस्था में प्रविष्ट हुए। आप तीव्रबुद्धि विद्यार्थियों में से थे। प्रविष्ट होते ही आपने विद्यार्थियों में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया और शिक्षकों का मन अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया। आदि से अन्त तक प्रायः सभी परीक्षायें उच्च श्रेणि में उत्तीर्ण की हैं। उच्च परीक्षाओं में व्याकरणविषय में शास्त्री परीक्षा तथा आयुर्वेद में भिषगाचार्य परीक्षा पास की है।

आयुर्वेदाध्ययन प्रारम्भ में विद्यालय में ही किया और बाद में स्वर्गीय पूज्यश्री लक्ष्मीरामजी महाराज के पास महाराज संस्कृत कालेज में किया। स्वामीजी महाराज की आप पर योग्य विद्यार्थी होने के नाते पूर्ण कृपा थी। आपने भिषगाचार्य में सर्वप्रथम आकर उदयपुर स्वर्णपदक भी प्राप्त किया। अध्ययन समाप्त करने के बाद आपने अपना स्वतन्त्र 'संजीवन फार्मेसी' नामक औषधालय का सञ्चालन किया। परिस्थितिवश आपको बाहर जाना पड़ा अतः औषधालय का बन्द होना अनिवार्य हो गया।

कुछ काल पश्चात् पुनः जयपुर आकर एक वर्ष तक श्रीधन्वन्तरि औषधालय के फार्मेसी विभाग के मैनेजर पद पर काम किया और तदनन्तर गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज में प्रोफेसर नियुक्त किये गये। तब से अब तक वहीं कार्य कर रहे हैं और अपना चिकित्साकार्य भी करते हैं। आपने मैट्रिक तक इंगलिशभाषा का भी अध्ययन किया है। आप प्रतिभाशाली, उदार व मिलनसार व्यक्ति हैं।

श्री भजनदास स्वामी आचार्य

आपने जमात उदयपुर के अन्तर्गत भानीपुरा ग्रामनिवासी स्वामी श्रीरेखारामजी से दादूमत की दीक्षा प्राप्त की। कुछ समय गुरुसान्निध्य में व्यतीत करने के बाद आपने इस विद्यालय का उद्घाटन होने पर इसमें प्रवेश किया। यहां आपने प्रथम श्रेणी में व्या० शास्त्री तथा जयपुरीय आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण की। आपने मैट्रिक तक इंगलिश भाषा का भी अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त दर्शन के ग्रन्थों का भी आपने यथावत् अध्ययन किया है।

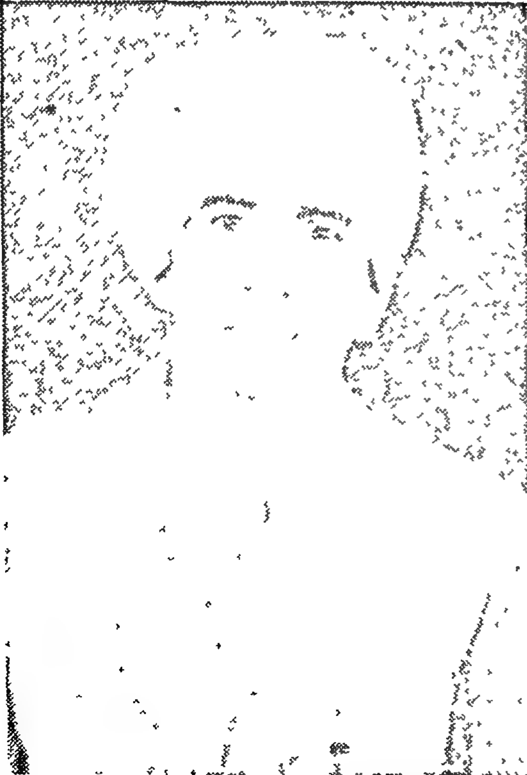


वैद्य श्री कान्हदास स्वामी आयुर्वेदाचार्य
(पृष्ठ १)



सन्त श्री मोतीराम स्वामी भिषगाचार्य
(पृष्ठ २)





श्री भजनदास स्वामी आयुर्वेदाचार्य
(पृष्ठ २)



श्री केशवदास स्वामी वेदान्तशास्त्री
(पृष्ठ ३)



अध्ययनानन्तर २-३ वर्ष इसी संस्था में अध्यापन कार्य किया, और तीन वर्ष तक नरेना के श्री दादू दयाराम संस्कृत विद्यालय में प्रधानाध्यापक पद पर कार्य किया। पुरानी बस्ती जयपुर निवासी राजवैद्य स्वामी हरिरामदासजी ने आपकी योग्यता देख कर अपने स्थान का उत्तराधिकारी बना दिया। तथा अपने स्थान का व जायदाद का अधिकार आपको सौंप दिया। वहीं पर आपने "श्री राम नारायण चिकित्सालय की स्थापना की, जिसका सञ्चालन अन्य अन्य कार्यों के साथ कर रहे हैं।

आप विद्यालय के प्रारम्भिक छात्रों में से हैं। आप स्वर्गीय परमानन्दजी व स्वर्गीय प्रेमदासजी के ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप कर्मठ, दृढ़ तथा स्पष्टवक्ता व्यक्ति हैं।

श्री केशवदास स्वामी- वेदान्तशास्त्री

आपने जमात-उदयपुर निवासी स्वामी श्री रामकरणदासजी से दादूमत की दीक्षा प्राप्त की। आठ वर्ष की अवस्था में शिक्षार्थ इस संस्था में प्रविष्ट हुए। आप इस संस्था के प्रारम्भिक विद्यार्थियों व स्नातकों में से हैं। इस संस्था में अध्ययन कर व्याकरण शास्त्र में मध्यमा परीक्षा, शाङ्करवेदान्त विषय में प्रथम श्रेणी में शास्त्री परीक्षा एवं आयुर्वेदविशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। आप विद्यालय में शाङ्करवेदान्त के प्रथम विद्यार्थी रहे हैं।

प्रारम्भ से ही आपकी रुचि इंगलिश भाषा तथा वेदान्त की तरफ थी। अतः व्याकरण मध्यमा उत्तीर्ण करने के बाद ही व्याकरण जैसे शुष्क विषय का परित्याग कर आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करने वाले वेदान्त विषय का तथा व्यावहारिक इंगलिश भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। उनमें भी प्रगाढ़ पाण्डित्य प्राप्त करने का विचार नहीं था, अपितु व्यवहारोपयोगी ज्ञान प्राप्त कर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने का था। अतः शास्त्री तक वेदान्त के विषय का तथा मैट्रिक तक अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करने के बाद परीक्षा के तौर पर अध्ययन स्थगित कर दिया। आपकी योग्यता जितना अध्ययन किया है उससे अधिक है।

कार्यक्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये सेवाभाव को अपनाना आवश्यक है इसलिये सेवाभाव से प्रेरित हो कर आपने इसी संस्था में इस संस्था के प्राण व सञ्चालक त्यागमूर्ति स्वामी श्री मङ्गलदासजी महाराज के व्यवस्थासम्बन्धी कार्य में

श्रीदयालुदास स्वामी

आपने सं० १९७४ में फाल्गुन कृष्ण एकादशी शनिवार को निवाई के महन्त श्री चन्दनदासजी से श्रीदादूसम्प्रदाय में दीक्षा प्राप्त की। सं० १९८८ में अध्ययनार्थ श्री दादूमहाविद्यालय में प्रवेश पाया। यहां अध्ययन कर गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस की प्रथमा तथा आयुर्वेद विषय में उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की। उपाध्याय परीक्षा पास करने के बाद स्वर्गीय आयुर्वेद मार्तण्ड पूज्यपाद स्वामी श्रीलक्ष्मीरामजी महाराज से शास्त्री तक आयुर्वेद ग्रन्थों का यथावत अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा में प्रविष्ट हुये, किन्तु दैववशात् आप उसमें सफलता प्राप्त न कर सके। परिस्थितिवश आपको अपना अध्ययन स्थगित करना पड़ा।

अध्ययन स्थगित करने के बाद अपने पूज्यपाद श्रीवैद्यजी महाराज के चिकित्सालय में ही रह कर चिकित्सा कार्य का व औषध निर्माण का अभ्यास किया। वैद्यजी महाराज के वैकुण्ठप्रयाण के पश्चात् अपना स्वतन्त्र चिकित्सा कार्य शुरू किया। स्वतन्त्र चिकित्सा कार्य करते हुये अपने गुरुवर्य राजवैद्य श्रीनन्दकिशोरजी के आदेश से राजकीय औषध निर्माण विभाग में कार्य प्रारम्भ कर दिया और तब से अब तक निरन्तर उसी पद पर कार्य करते हुये अपना चिकित्साकार्य कर रहे हैं।

आप विद्यालय में सर्व प्रथम प्रविष्ट होने वाले तथा सर्वप्रथम परीक्षा में प्रविष्ट होने वाले छात्रों में से हैं। आप मिलनसार, सरल, व उदार स्वभाव के व्यक्ति हैं।

वैद्य श्रीसूरजराम स्वामी

आपने बाल्यावस्था से ही शेखावाटी प्रदेशान्तर्गत 'रूरन' ग्राम में दादू सम्प्रदाय के तात्कालिक प्रसिद्ध योगीश्वर महात्मा श्रीजयरामदासजी से दादूसमाज की दीक्षा प्राप्त की। कालविपाकवश सं० १९८१ में पूज्य श्रीगुरुचरणों के परमधाम सिधार जाने से आपको उनके अधिक सान्निध्य का अवसर प्राप्त न हो सका। सं० १९८१ में अध्ययनार्थ इस संस्था में प्रवेश पाया तथा सन् १९२५ में बनारस की प्रथमा परीक्षा पास की।

स्थानीय परम्परा के अनुसार आपकी रुचि आयुर्वेद की तरफ थी। अतः प्रथमोत्तीर्ण होने के बाद ही आयुर्वेद का अध्ययन प्रारंभ किया और सन् १९३०



श्री मनसाराम स्वामी
(पृष्ठ ५)



श्री दयालुदास स्वामी
(पृष्ठ ६)



श्री भूराराम स्वामी
(पृष्ठ ६)



श्री मोतीराम स्वामी व्याकरणाचार्य
(पृष्ठ ७)

में आयुर्वेदशास्त्री परीक्षा पास करली। शास्त्री श्रेणी के अध्ययन काल में ही आप रोगाक्रान्त हो गये थे और उस अवस्था से मुक्ति न होने से स्वास्थ्यभङ्गभयात् आगे अध्ययन का संकल्प छोड़कर आपने चिकित्सा कार्य को अपनाना उचित समझा।

प्रारम्भ में सीकर में स्थानीय प्रतिष्ठित वैद्य श्रीआनन्दीलालजी के सान्निध्य में एक वर्ष कार्य किया। किन्तु साधु प्रवृत्ति होने के कारण आपने ग्रामों में रहकर स्वतन्त्र चिकित्सा द्वारा ग्रामसेवा को लक्ष्य बना कर अपने पूर्वजों के स्थान 'देवास' में जाकर चिकित्सा द्वारा जनता-जनार्दन की सेवा आरम्भ की। तब से आप निरन्तर उसी कार्य में संलग्न हैं।

आप अच्छे वक्ता, हँसमुख, मधुरभाषी, सरल, तथा सादा वेषभूषा के व्यक्ति हैं।

श्रीब्रह्मानन्द स्वामी मंडलेश्वर

आपने दादूसमाज के प्रसिद्ध मण्डलेश्वर श्रीयुक्तानन्दजी से दीक्षा ली। इस विद्यालय में अध्ययन करते हुए आपने व्याकरण मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। स्वतन्त्र तौर से आपने वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन किया। वर्तमान में आप अपने गुरुदेव के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके स्थान पर मण्डलेश्वर का कार्य कर रहे हैं। आप नरेना में चौभीता नाम से प्रसिद्ध विरक्तों के स्थान के प्रधान हैं। उसमें स्थायी प्रबन्ध के लिये आप आजकल प्रयत्नशील हैं।

श्रीमोतीराम स्वामी व्याकरणाचार्य

आपको सं० १९७७ में जमात उदयपुर निवासी स्वामी श्रीगंगादासजी ने दादू समाज में दीक्षित किया। सं० १९८१ में विद्यालय में अध्ययनार्थ प्रवेश प्राप्त कर अक्षराभ्यास से प्रारम्भ कर व्याकरण विषय में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस की आचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। साथ ही जयपुर की आयुर्वेद शास्त्री परीक्षा भी पास कर ली। आप तीव्रबुद्धि व बुद्धिमान् विद्यार्थियों में से हैं।

आपकी अभिरुचि प्रारम्भ से संस्कृत प्रचार की ओर थी। अतः अध्ययनकाल से ही कुछ अध्यापन का कार्य भी शुरू कर दिया था। अब तक दांता, किशनगढ़

रैनवाल रामपुरा आदि विभिन्न स्थानों में, विभिन्न विद्यालयों में अपना कार्य व्यवस्थित व सुचारुरूप से करते आ रहे हैं। बहुत समय तक निश्शुल्क भी शिक्षा प्रचार कार्य किया है। अब भी शरीर निर्वाहार्थ स्वल्प वेतन लेकर ही शिक्षणकार्य कर रहे हैं। आप दृढनिश्चयी तथा विद्यावान् व्यक्ति हैं। आपका परिश्रम व साहस अनुकरणीय है।

स्वर्गीय श्रीप्रेमदास स्वामी वैद्य (भिवानी)

आपने दादूमतानुयायी विरक्त सन्त श्रीरेवादासजी से दीक्षा ग्रहण की। बाल्यावस्था में ही अध्ययनार्थ विद्यालय में प्रविष्ट करा दिए गये। अध्ययन के २।३ वर्ष बाद आप की योग्यता को देखकर भिवानी निवासी वैद्यरत्न स्वामी कृपारामजी ने अपना शिष्य स्वीकार किया। वहां अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा तथा आयुर्वेदीय शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् कारणवश आपने विद्यालय का परित्याग कर दिया। स्वतन्त्र अध्ययन करके आयुर्वेदाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद आप चिकित्सा क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और रतनगढ (बीकानेर) में आपने चिकित्सा कार्य आरम्भ किया। आपने भारतीय व्यायाम की भी पूर्ण शिक्षा श्रीगोपालजी स्वामी से विद्यालय में ही प्राप्त की थी अतः चिकित्साकार्य के साथ साथ रतनगढ में स्थानीय नागरिकों तथा विद्यार्थियों को व्यायाम की शिक्षा देना प्रारम्भ किया, क्योंकि आपका यह सिद्धान्त था कि यदि भारत व भारतीय उन्नत हो सकते हैं तो बल के द्वारा ही हो सकते हैं। आप (तस्माद् बलम् पारावम्) इस वैदिक सिद्धान्त के अनुयायी थे। आपने रतनगढ में तथा आसपास के नगरों में व्यायाम शिक्षा का पर्याप्त प्रचार किया। आज भी रतनगढ में पूर्ववत् व्यायाम शिक्षा प्रचलित है। इन सब कार्यों के करते हुए आपने अपना अध्ययन नहीं छोडा और अंग्रेजी की तैयारी करते हुए सन् ४२ में देशविभाजन के अवसर पर जब कि आप पंजाब में ट्रेक देने को गये थे हिन्दू मुस्लिम दंगे में आपको अपने प्राणों की आहुति देनी पडी थी। आप साहसी, बलिष्ठ, सच्चरित्र, कर्मठ स्नातक थे। आपके निधन से विद्यालय, समाज व आपके गुरुजी को पर्याप्त आघात पहुँचा है और स्नातकों में आपकी क्षतिपूर्ति असम्भव है।

स्वर्गीय वैद्य श्रीपरमानन्द

आप चिड़ावा निवासी प्रसिद्ध चिकित्सक श्रीशिवकरणदासजी के शिष्य हैं। आप दीक्षाग्रहणानन्तर इस विद्यालय में प्रविष्ट हुये और यहाँ अध्ययन कर व्याकरण मध्यमा तथा आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा में उत्तीर्ण हुये। इसी अर्से में सहसा आपके गुरुजी का स्वर्गवास हो गया। अतः आपको आगे अध्ययन समाप्त करना पड़ा, और चिकित्साकार्य में प्रविष्ट होना पड़ा। आपने अपने स्थान पर ही स्वतन्त्र चिकित्सा कार्य आरम्भ किया और अच्छी सफलता प्राप्त की। कुछ वर्षों बाद आप सहसा रुग्ण होकर इस नश्वर देह का परित्याग कर स्वर्गवासी बन गये। आप स्वर्गीय श्री प्रेमदासजी के ज्येष्ठ भ्राता थे। आप सुशिक्षित व उत्साही व्यक्ति थे। आपके असामयिक निधन से विद्यालय को व चिड़ावा के स्थान को अत्यधिक आघात पहुँचा है।

स्वर्गीय श्रीपुरुषोत्तमदास

आपने बीकानेर निवासी प्रसिद्ध वैद्य व सन्त श्री लालदासजी महाराज से दादूमत की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षाग्रहणानन्तर प्रारम्भिक शिक्षा आपने बीकानेर में ही प्राप्त की। इसके बाद आप इस महाविद्यालय में प्रविष्ट कराये गये। यहां से आपने व्याकरण प्रथमा एवं आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा अच्छी श्रेणि में उत्तीर्ण की।

आप बहुत ही प्रतिभाशाली व मेधावी स्नातक थे। आपने केवल एक वर्ष में ही आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की। उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आप गुरुजी के अस्वस्थ होने से अपने स्थान पर चले गये और वहां कार्य करना प्रारम्भ किया। दुर्दैववश आप अकाल में ही स्वर्ग सिधार गये और पीछे वालों के लिये पश्चात्ताप छोड़ गये। आप विद्यालय के अतीव होनहार युवकों में से थे।

स्वर्गीय वैद्य श्रीनिजानन्द

आपका जन्म सितम्बर सन् १९०६ में हुआ। आपने कान्हौर (पञ्जाब) निवासी स्वामी श्री सहजरामजी का शिष्यत्व स्वीकार किया। सन् १९२५ में अध्ययनार्थ इस विद्यालय में प्रविष्ट हुए।। यहां रह कर आपने केवल प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की।

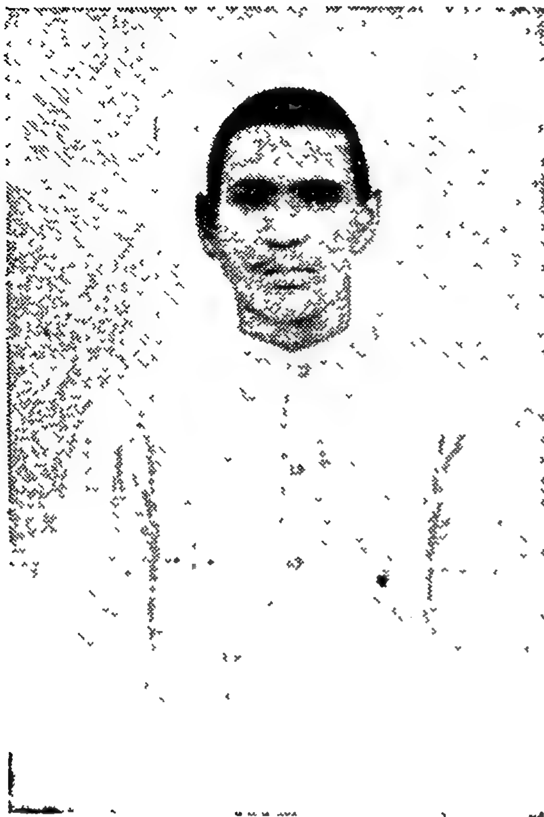
आपकी प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही देश-सेवा की तरफ थी। अत प्रथमा पास करने के बाद ही विद्यालय का परित्याग कर देश मे स्वतन्त्रता के लिये प्रचलित सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया और इसके लिये कितनी ही बार रोहतक जेल की कठोर यातनायें सहीं। इसी बीच मे आपने अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की विशारद परीक्षा भी पास कर ली और चिकित्सा कार्य भी करने लग गये। चिकित्सा कार्य मे भी अच्छी ख्याति प्राप्त की।

तीसरी बार जेल जाने पर सत्याग्रहियों के प्रति बुरे बर्ताव के कारण आप अन्त्रक्षय से पीडित हो गये और जेल मे ही असाध्य अवस्था को पहुँच गये। असाध्यावस्था मे भी सरकार ने आपको जमानत पर ही छोडा। यह थी उस समय की सरकार की देश भक्तो के प्रति मनोवृत्ति। जेल से छूटने के अनन्तर कुछ ही समय बाद इसी रोग के कारण आपने पाञ्चभौतिक देह का परित्याग कर दिया और सर्वदा के लिये अपने आपको भारत-माता के चरणों मे अर्पित कर दिया।

स्वर्गीय श्री बुद्धिप्रकाश

आपने जींदरान (पञ्जाब निवासी) स्वामी श्रीलक्ष्मीरामजी से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षाग्रहणानन्तर कुछ सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही आप इस संस्था मे अध्ययनार्थ भेज दिये गये। यहा अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा तथा आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। गुरुजी का स्वर्गवास होजाने से आपको अध्ययन स्थगित करना पडा और आपने चिकित्सा क्षेत्र में प्रवेश किया। कुछ ही समय पश्चात् आपको सहसा डबल न्यूमोनिया होगया। उस मे पर्याप्त चिकित्सा करने पर भी आपको स्वास्थ्यलाभ नहीं हुआ और क्रूर दैवगति से इस नश्वर शरीर का परित्याग करना पडा।

आप विद्यालय के होनहार स्नातकों मे से थे। आपके निधन से विद्यालय को तथा स्नातकवर्ग को जो क्षति है वह अपूरणीय है।



स्व० श्री बुद्धिप्रकाश
(पृष्ठ १०)



स्व० महन्त श्री भजनदास
(पृष्ठ ११)



महन्त श्री आशाराम
(पृष्ठ ११)



वैद्य श्री कृष्णदास स्वामी
(पृष्ठ १२)



वैद्य श्री पूर्णानन्द

आप बाल्यावथा में ही डालमियां दादरी निवासी स्वामी श्री गिरधरानन्दजी के द्वारा अध्ययनार्थ इस संस्था में प्रविष्ट कराये गये। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण प्रथमा व मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। पश्चात् आपने विद्यालय छोड़ दिया और स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद का अध्ययन किया तथा विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्ययनानन्तर आपने चिकित्साकार्य प्रारम्भ किया। आपने जींद, हिसार आदि क्षेत्रों में चिकित्साकाय सफलता पूर्वक किया है। वर्तमान में आप हांसी में अपने स्वतन्त्र औषधालय का संचालन करते हुए चिकित्सा द्वारा लोकोपकार कर रहे हैं। आप उत्साही, हँसमुख तथा स्वाभिमानी व्यक्ति हैं।

स्वर्गीय महन्त श्री भजनदास

आप नारनौल निवासी स्वामी श्रीब्रह्मदासजी से दीक्षित किए गए। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद प्रौढ अवस्था में अध्ययनार्थ विद्यालय आये। यहां अध्ययन कर आपने प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आपने विद्यालय का परित्याग किया और स्वतन्त्ररूप से अध्ययन कर आयुर्वेद विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्ययनानन्तर आपने नारनौल में अपने स्थान पर ही स्वतन्त्र चिकित्साकार्य किया। इसमें अच्छी सफलता प्राप्त की।

आप संगीत के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। आपका स्वर उच्च व कण्ठ में अत्यन्त माधुर्य था जिससे सुनने वाला मुग्ध हो जाता था। बाद में सन्तप्रवर पं० श्री चेतनदेवजी के स्वर्गवास होजाने पर आप गरीबदासोतों की गद्दी के महन्त बनाये गये। किन्तु दुर्भाग्यवश आप भी युवावस्था के अन्दर ही आकस्मिक रोग से कालकवलित कर लिये गये और अपने निधन से समाज की अपूरणीय क्षति को उत्पन्न कर गये।

महन्त श्री आशाराम

आपने श्रीसुन्दरदासोतों की प्रधान गद्दी घाटड़ा के महन्त श्री लच्छीरामजी महाराज से श्री दादूसम्प्रदाय में दीक्षा प्राप्त कर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। सं० १९८१ में विद्यालय में अध्ययनार्थ प्रवेश किया। यहां पढ़ते हुए व्याकरण-

मध्यमा, व्याकरणोपाध्याय, साहित्योपाध्याय तथा आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। इसी समय आपने गुरुजी का स्वर्गवास होजाने के कारण विद्यालय का परित्याग किया। तब से आप अपने स्थान का सरक्षण करते हुए अपना चिकित्साकार्य कर रहे हैं।

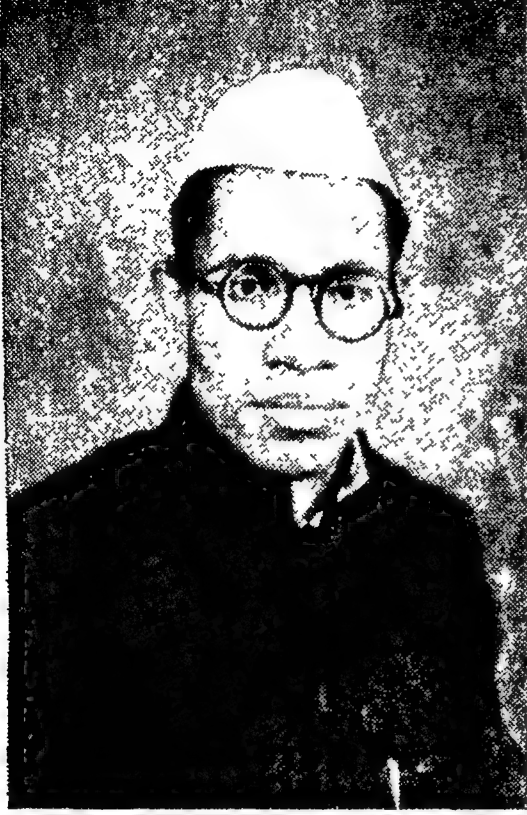
वैद्य श्रीकृष्णदास स्वामी

आप जमात चानसेन के अन्तर्गत सुनारा ग्राम निवासी स्वामी श्री याद्वरामजी से दीक्षित किए गये। कुछ समय तक गुरुचरणों की सेवा करने के बाद आप अध्ययनार्थ श्रीदादूमहाविद्यालय में प्रविष्ट किए गये। यहां रह कर आपने व्याकरण मध्यमा तथा व्याकरणशास्त्री उत्तीर्ण की। तदनन्तर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण बाध्य होकर विद्यालय का परित्याग कर दिया। कुछ कालपर्यन्त स्वास्थ्य को ठीक करके आप बीकानेर चले गये और वहा मोहता आयुर्वेद विद्यालय में प्रविष्ट होकर भिषग्वर परीक्षा उत्तीर्ण की। पूज्य श्री मणिरामजी से अध्ययन कर आयुर्वेदाचार्य परीक्षा पास की। सन् १६४५ में जयपुर राज्य से खोले जाने वाले आयुर्वैदिक औषधालय में चिकित्सार्थ प्रवेश किया और अब भी उसी कार्य द्वारा जनता की सेवा कर रहे हैं।

श्री बलराम स्वामी न्यायायुर्वेदाचार्य

आप श्री दादूसम्प्रदाय के प्रसिद्ध कथावाचस्पति, श्रीदादूजी महाराज की वाणी के मर्मज्ञ विद्वान् श्रीबालूरामजी मण्डलेश्वर के शिष्य हैं। आप फाल्गुन शुक्ला ६ सं० १६८० को आठ वर्ष की अवस्था में इस विद्यालय मे आये। यहा अध्ययन कर के आपने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस की वेदान्तशास्त्री व न्यायाचार्य परीक्षा तथा महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर की आयुर्वेदाचार्य व मीमांसाशास्त्री परीक्षा और राजपूताना विश्वविद्यालय की इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण की है। इस तरह आप संस्कृत व इंगलिश उभय भाषाओं के ज्ञाता हैं। मध्यमा के द्वितीय खण्ड में आप बनारस के परीक्षार्थियों में सर्वप्रथम रहे थे और प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री व आचार्य सभी परीक्षायें आपने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं।

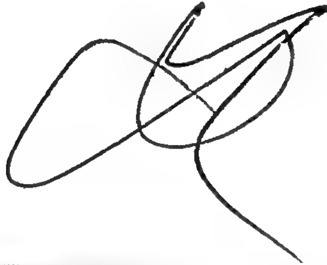
सं० २००२ में आपने जयपुर में होने वाले अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की निबन्ध प्रतियोगिता में "संस्कृतसाहित्य में राजनीति" नामक निबन्ध



श्री बलराम स्वामी
(पृष्ठ १२)



श्री रामेश्वरदास स्वामी
(पृष्ठ १३)





मण्डलेश्वर श्री आत्माराम स्वामी
(पृष्ठ १३)



स्व० श्री विद्यानन्द
(पृष्ठ १५)



पर सर्वप्रथम आने से स्वर्णपदक का पुरस्कार प्राप्त किया। आप अत्यन्त मेधावी होने के साथ-साथ संस्कृत की गद्य पद्य रचना में भी निपुण हैं। आप इस महाविद्यालय के गणनीय स्नातकों में हैं।

अध्ययन के बाद आपने अपने ज्ञान और अनुभव का उपयोग इस विद्यालय की सेवामें ही करने का सङ्कल्प किया और तदनुसार सन् १९४२ से आप निरन्तर इस विद्यालय की सेवा कर रहे हैं। इस समय आप विद्यालय में प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री व आचार्य कक्षाओं के अध्यापन का व स्थानीय छात्रावास में प्रबन्धक का कार्य कर रहे हैं।

श्री रामेश्वरदास स्वामी

आपने राणीला ग्राम (जींद-पंजाब) निवासी महन्त श्रीरामलालजी स्वामी के द्वारा दादूपंथी समाज में दीक्षा प्राप्त की। तदनन्तर विद्यालय में प्रवेश कर अक्षराभ्यास से आरम्भ कर व्याकरणप्रथमा और व्याकरणमध्यमा परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। आयुर्वेदोपाध्याय तक आयुर्वेद के शास्त्रों का भी अध्ययन किया।

आप बाल्यकाल से ही राष्ट्रिय विचारों के रहे हैं। सन् १९३८ में जब जयपुर राज्य प्रजा मंडल द्वारा राज्य के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ आपने पढ़ना बन्द कर दिया और चुपचाप झुंझनूं पहुँच कर सत्याग्रही जत्थे में सम्मिलित हो गये तथा गिरफ्तार कर लिये गये।

गिरफ्तारी से छूटने के पश्चात् आपने खादी सरंजाम कार्य सीखने के निमित्त चिडावा में कार्यारम्भ कर दिया। सूत काते तथा कपड़ा बुनने का भी आपने ज्ञानोपार्जन किया है। सन् १९४० में बनारस में जो चर्खा दंगल हुआ उसमें सूत कातने में आप सर्वप्रथम रहे। आजकल आप राजस्थान गवर्नमेण्ट द्वारा सञ्चालित आयुर्वेदिक कालेज विभागीय औषधालय में उपवैद्य के रूप में जनता की सेवा कर रहे हैं।

मण्डलेश्वर श्रीआत्माराम स्वामी वेदान्तव्याकरणाचार्य

आपने बाल्यावस्था में ही जमात उदयपुर निवासी साधु श्री हरजीरामजी से दादूमत की दीक्षा प्राप्त की। सं० १६८० में श्रीदादूमहाविद्यालय में प्रविष्ट हो कर अक्षराभ्यास से प्रारम्भ कर उच्च श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की। आपने नव्यव्याकरणाचार्य व शाङ्कर वेदान्तशास्त्री परीक्षा इस महा विद्यालय से उत्तीर्ण की। तदनन्तर आप अध्ययनार्थ काशी पधार गये। वहां रह कर आपने विद्वन्मूर्धन्य दर्शनों के पारदर्शी विद्वान महामहोपाध्याय श्री हरिहरकृपालुजी से तथा सकलशास्त्रनिष्णात प० श्री रघुनाथजी शर्मा से उच्च प्रामाणिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और गवर्नमेण्ट क्वींस कालेज से ही वेदान्ताचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। शाङ्कर वेदान्ताचार्य में क्वींस कालेज के सभी परीक्षार्थियों में सर्वोत्तम आने से आप स्वर्णपदक व रजतपद से सम्मानित किये गये।

वेदान्तशास्त्र का अध्ययन करने के समय से ही आपकी रुचि निवृत्तिपरायण हो रही थी, और आप सच्चे साधु बन कर साधुता का जीवन व्यतीत करने की इच्छा करने लग गये थे। अध्ययनसमाप्ति के बाद गुरुवर्य महामहोपाध्यायजी का भी इनकी रुचि के अनुकूल इनको यही आदेश प्राप्त हुआ कि "आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य" इस श्रौतसिद्धान्त के अनुसार साधुजीवन-यापन करते हुए मनन निदिध्यास द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार करो। अत: आपने निवृत्तिमार्ग का अनुसरण किया। किन्तु निवृत्तिमार्ग को अपनाते हुए भी भगवान् के "लोक-संग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि" इस आदेश को ध्यान में रख कर लोककल्याण-भावना से प्रेरित हो धर्मोपदेश के द्वारा राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं, और साथ ही वर्तमान आर्थिक सङ्कट के समय में धनिक लोगों को प्रेरणा देकर इस महाविद्यालय की आर्थिक सेवा भी कर रहे हैं।

आप सच्चे त्यागी व नैष्ठिक साधु हैं। आशा है आप अपने मार्ग पर चलते हुए सम्प्रदाय के गौरव को बढायेंगे। आप सरीखे स्नातकों के लिये विद्यालय को गर्व है।

वैद्य श्री बल्लभ जोशी

आप पुष्कर निवासी पं० मोहनलालजी जोशी भिषग्वर के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपने १६३४ से १६३७ तक श्री दादूमहाविद्यलय में शिक्षा प्राप्त की और आयुर्वेद विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की।

आप आजकल अपने निवास स्थान में ही चिकित्साकार्य कर रहे हैं तथा जनता में अच्छा स्थान प्राप्त कर रहे हैं।

स्वर्गीय श्री विद्यानन्द

आप बाल्यवस्था में ही भिवानी निवासी प्रसिद्ध महात्मा श्री रामलालजी द्वारा दादूसम्प्रदाय में दीक्षित हुए। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरणमध्यमा व आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षायें उत्तीर्ण की। तदनन्तर आप श्रीस्वामी-लक्ष्मीराम-चिकित्सालय में स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य के पास चिकित्सा का कार्य करने लगे और साथ ही स्थान का प्रबन्ध भी। भिवानी में आपका स्वतन्त्र प्रतिष्ठित मकान है। किन्तु स्वामी श्री जयरामदासजी आपके संरक्षक थे और यहां भी योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी अतः आपने उनकी संरक्षता में यहीं कार्य करना उचित समझा और अन्तिम समय तक यहीं कार्य करते रहे। अन्त में दुर्दैववश युवावस्था में ही अकाल के चंगुल में फँस गये और इस असार संसार से प्रयाण कर गये।

आप योग्य प्रबन्धक, मिलनसार, सहृदय, कार्यकुशल व उदार नवयुवक थे। आपके संयोग में आये हुए व्यक्ति आज भी आपकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं और आपकी स्मृति में दो आंसू बहाये बिना नहीं रहते। कितने ही साथियों को आपने अपनी सहायता प्रदान की थी।

वैद्य श्री कल्याण दत्त त्रिवेदी, आयुर्वेदाचार्य

आप हिण्डौन (जयपुर) निवासी स्वामी श्री जगदीशदासजी द्वारा अध्ययनार्थ इस महाविद्यालय में प्रविष्ट किये गये। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा, साहित्य शास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य परीक्षा अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की।

शिक्षणकाल में आप अच्छे विद्यार्थियों मे गिने जाते थे। आपको छात्रदशा मे ही कविता करने की भी रुचि थी। समय समय पर आपने बहुत-सी कवितायें बनाई हैं जिनका सङ्कलन करने पर एक पुस्तक तैयार हो सकती है। कुछ समय तक इसी विद्यालय में आपने अध्यापन कार्य भी किया है।

विद्यालय छोड़ने के बाद आप आयुर्वेदीय सेवा में ही अपना समय लगा रहे हैं।

अब तक आप हरिद्वार, दिल्ली, खोरी आदि विभिन्न स्थानों में आयुर्वेद का अध्यापन व चिकित्साकार्य कर चुके हैं। कुछ वर्ष पूर्व आपको हरिनन्दराय रुइया रामगढ आयुर्वैदिक कालेज मे वाइस प्रिंसिपल व प्रिंसिपल के पद पर कार्य करने का भी सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। आजकल आप खोरी (जयपुर) में ही आयुर्वेद-प्रधानाध्यापक तथा प्रधान चिकित्सक का कार्य अच्छी योग्यता से कर रहे हैं। आप उत्साही तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं।

स्वामी श्रीहनुमान् शास्त्री एम. ए., आचार्य

आपने दौलतपुरा निवासी स्वामी श्रीरामरतनजी से दादूसम्प्रदाय की दीक्षा प्राप्त की। सामान्य शिक्षा प्राप्ति के बाद आप अल्प आयु में ही विद्यालय में प्रविष्ट कर लिये गये। यहीं आपने स्वल्प आयु मे प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर के रजतपदक प्राप्त किया। तदनन्तर व्याकरण मध्यमा व बनारस तथा जयपुर की व्याकरण शास्त्री परीक्षा इस विद्यालय मे पढ कर आपने उत्तीर्ण की और यहा रहते हुए अंग्रेजी का भी अभ्यास किया। आप मेधावी व तीव्रबुद्धि थे।

कारणवश आपने विद्यालय परित्याग कर दिया किन्तु अध्ययन जारी रक्खा और विविध बाधाओं का सामना करते हुए भी अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर होते गये। अन्ततोगत्वा बनारस की व्याकरणाचार्य तथा बिहार की न्यायाचार्य एव आगरे की एम ए परीक्षा संस्कृत विषय को लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। साथ मे आयुर्वेद विशारद एव हिन्दी की विशेष योग्यता परीक्षा भी अच्छी श्रेणी मे उत्तीर्ण की है।



वैद्य श्री कल्याणदत्त त्रिवेदी
(पृष्ठ १५)



स्वामी श्री हनुमान् शास्त्री
(पृष्ठ १६)



वैद्य श्री प्रेमदासजी शास्त्री
(पृष्ठ १७)



पुजारी श्री हरिराम काव्यतीर्थ
(पृष्ठ १७)

इस अध्ययनकाल में आपने अपने निर्वाह के लिये शिक्षाक्षेत्रों में तथा अन्य क्षेत्रों में कार्य किया। जैसे तीन वर्ष तक श्री दादूमहाविद्यालय में, एक वर्ष तक सामोद में, एक वर्ष तक जैन संस्कृत कालेज में। समय समय पर पत्रसंसार में भी आपने कार्य किया। अपने परिश्रम व अध्यवसाय से आपने आशातीत उन्नति की। आप अत्यन्त मेधावी, स्मृतिशील, श्रुतधर, मिलनसार, उत्साही व निर्भीक व्यक्ति हैं। आप जैसे नवयुवक से समाज को गर्व है। सम्प्रति आप बनारस में उच्च अध्ययन में निरत हैं। आपका एक ही लक्ष्य है।

—: विद्याभ्यसनं व्यसनम्।

वैद्य श्री प्रेमदास शास्त्री

आपने निरंजनी सम्प्रदायावलम्बी स्वामी श्रीगिरिधारीदासजी से निरंजन वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा प्राप्त की। सं० १६८१ में अध्ययनार्थ इस संथा में प्रविष्ट हुये। यहां रह कर व्याकरण मध्यमा और आयुर्वेद शास्त्री परीक्षा पास की। बाल्यकाल से व्यायाम की महिमा को खूब समझा था इसलिये आपका शरीर सुगठित व पर्याप्त सबल है। अध्ययनसमाप्ति के बाद आपने गुरुस्थान फलौदी (मारवाड़) में चिकित्सा-कार्य आरम्भ किया जिसमें आप पर्याप्त सफल हुये हैं और साथ ही यश का उपार्जन भी किया है। वर्तमान में श्री द्वारकाधीशजी के मन्दिर के महन्त भी हैं। आपका चिकित्साकार्य केवल फलौदी तक ही सीमित नहीं है अपितु अमरावती (सी०पी०) आदि में भी इस कार्य के लिये जाते हैं। आप परिश्रमी, लोकप्रिय, सरल तथा साधु स्वभाव के व्यक्ति हैं।

पुजारी श्रीहरिराम काव्यतीर्थ

आपने नरेना निवासी प्रतिष्ठित सन्त, दादूद्वारा के भण्डारी श्रीभूरारामजी से दादूमत की दीक्षा प्राप्त की। अक्षराभ्यास करने के बाद आपने अध्ययनार्थ इस महाविद्यालय में प्रवेश किया। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण शास्त्र में मध्यमा, कलकत्ता विश्वविद्यालय की काव्यतीर्थ एवं हिन्दी विशेष योग्यता परीक्षाएं अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। इसके अतिरिक्त आपने इसी विद्यालय में रह कर वेदान्तशास्त्री के ग्रन्थों का यथावत् अध्ययन किया और दो खण्डों की परीक्षा भी दी।

बाद में स्वर्गीय स्वामी श्री १००८ श्री रामलालजी महाराज के रुग्ण होजाने के कारण आपको परीक्षा से विरत होना पडा।

वर्तमान में नरेना में श्रीदादूजी महाराज के मन्दिर के पुजारी हैं। आपके निरीक्षण में इस मन्दिर का बहुत ही सुन्दर संस्करण हुआ है जो कि अतीव दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त नरेना में समागत सभ्यों व अतिथियों के स्वागत सत्कार एवं पुस्तकालय का भार भी आप पर ही है। नरेना के सार्वजनिक कार्यों में आपका प्रमुख हाथ रहता है। नरेना में सुन्दरजयन्ती के सुन्दर आयोजन का भी श्रेय आपको ही है। आपकी योग्यता आपकी डिग्रियों से अधिक है। आपकी लेखनशैली, भाषा व वक्तृत्वशक्ति उदात्त व परिष्कृत है। आप उदार, मिलनसार, सहृदय, और प्रतिभाशाली स्नातक है।

श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री

आपने वडखेडा ग्राम (जयपुर) निवासी महात्मा श्री भूरारामजी थांभायत से दीक्षा ग्रहण की। यहा अध्ययन कर आपने व्याकरणमध्यमा तथा आयुर्वेदशास्त्री परीक्षायें अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की। अध्ययनानन्तर कुछ वर्षों तक राजनीति में भाग लिया और उधर पर्याप्त कार्य किया। देशसेवा से प्रेरित हो कर ही आपने अध्ययन बन्द किया और जयपुर राज्य प्रजा-मण्डल में सक्रिय भाग लिया। सन् १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में जब जयपुर राज्य प्रजा मण्डल ने शान्ति व आलस्य परिपूर्ण नीति अपनाई तब आपने आजाद मोर्चे में प्रविष्ट होकर स्वतन्त्रता के लिये प्रबल उद्योग किया।

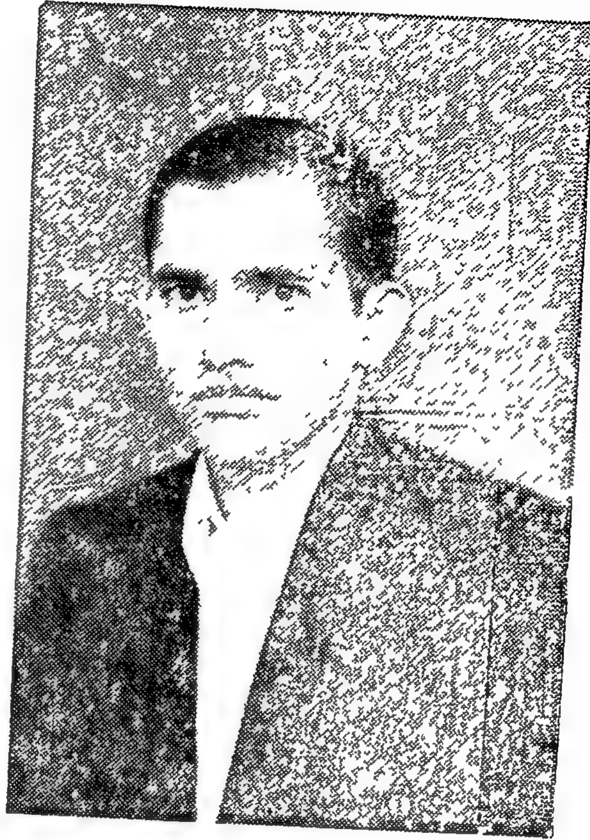
आजकल आप बुरहानपुर (सी० पी०) में रह रहे हैं और अपनी चहुँमुखी प्रवृत्तियों द्वारा कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हैं।

स्वामी श्री मंगलदास आचार्य

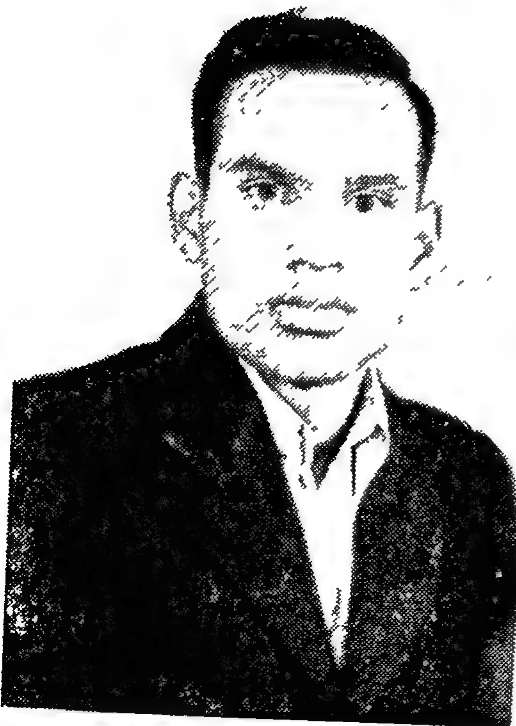
आपने सीकर निवासी दादूसमाज के प्रसिद्ध महात्मा एवं वेदान्त के उच्च कोटि के मर्मज्ञ श्रीरामकरणदासजी से दीक्षा ग्रहण की। गुरुजी का स्वर्गवास होजाने के बाद आप विद्यालय में अध्ययनार्थ प्रविष्ट हुए। यहा रह कर व्याकरणशास्त्री, दर्शनशास्त्री, वेदान्तशास्त्री एवं आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षायें अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की।



श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री
(पृष्ठ १८)



स्वामी श्री मंगलदास आचार्य
(पृष्ठ १८)



वैद्य वालकराम स्वामी आयुर्वेदाचार्य
(पृष्ठ १६)



वैद्य श्री रामगोपाल स्वामी आयुर्वेदाचार्य
(पृष्ठ २०)

बाद में आप व्याकरणशास्त्र के विशेष ज्ञान के लिये बनारस गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में प्रविष्ट हुए। व्याकरणकेशरी, शेषावतार श्री तिवाड़ीजी तथा षट्शास्त्र पारंगत श्री रघुनाथजी आचार्य से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन कर व्याकरणाचार्य पास किया। गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज जयपुर में अध्ययन कर आपने भिषग्वर भिषगाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके अतिरिक्त हिन्दी की सर्वोच्च परीक्षा साहित्यरत्न भी अपने उत्तीर्ण की है।

अध्ययनसमाप्ति के बाद आपकी नियुक्ति धन्वन्तरि औषधालय में चिकित्सक पद पर हुई और तब से आप उसी स्थान पर कार्य कर रहे हैं। आप विद्यालय के योग्य स्नातकों में से हैं। अधीत विषयों का आपका परिज्ञान बहुत अच्छा है। विद्यार्थी अवस्था से आप प्रतिभाशाली रहे हैं। सामाजिक कार्यों में भी आप पर्याप्त भाग लेते हैं। आप श्रीदादूदयालु महासभा के संयुक्त मन्त्री व श्रीदादूयुवक अग्रगामी मण्डल के भूतपूर्व मन्त्री तथा श्रीदादूवीरदल के सञ्चालक हैं। जयपुर में चार वर्ष से आप एक साप्ताहिक सत्संग-मण्डल का भी सञ्चालन कर रहे हैं। आप खेल में भी विशेष रुचि रखते हैं। आप जयपुर की प्रसिद्ध फुटवाल यूनियन क्लब के जनरल कैप्टीन हैं। आप मेधावी एवं स्वाभिमानी व्यक्ति हैं।

वैद्य बालकराम स्वामी आयुर्वेदाचार्य

सांभर के मान्य साधुवर श्री रामजसजी द्वारा आपको तीन वर्ष की बाल्यावस्था में ही दीक्षित कर लिया गया। जब पढ़ने योग्य अवस्था हुई तब श्रीदादूमहाविद्यालय, जयपुर में अध्ययनार्थ आये। व्याकरण मध्यमा, वेदान्तशास्त्री (गवर्नमेण्ट कालेज बनारस) तथा आयुर्वेदाचार्य (जयपुर) परीक्षा उत्तीर्ण कीं।

व्यायाम में भी आप अच्छी योग्यता रखते हैं। आपने सैण्ट्रल जेल, जयपुर में एक वर्ष तक तथा आर्यवीर-दल, जयपुर में दो वर्ष तक व्यायामशिक्षण का कार्य बड़े सुचारु रूप से किया है। आपने सैकड़ों व्यक्तियों को व्यायाम द्वारा दीक्षित किया है।

अध्यापन समाप्त करने के बाद आपने चिकित्साकार्य शुरू किया। वर्तमान में राजस्थान सरकार द्वारा संचालित औषधालयों में काम कर रहे हैं और अच्छी निपुणता दिखा रहे हैं।

वैद्य श्रीरामगोपाल स्वामी आयुर्वेदाचार्य

आपका जन्म दादूपन्थी गृहस्थ आम्नाय के साधु श्री वरतावरदासजी के घर में हिसार(पंजाब) जिलान्तर्गत रामपुरा में सं० १६७६ में हुआ। आपने घर पर ही अक्षराभ्यास कर चुकने के बाद अध्ययनार्थ संस्था में प्रविष्ट हुये। यहाँ शिक्षा प्राप्त करते हुये व्याकरण मध्यमा तथा आयुर्वेदशास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अध्ययन में विशेष रुचि होते हुये भी गृहस्थ का सञ्चालन करने के लिये आपको विद्यालय छोड़ना पड़ा और कार्यक्षेत्र में उतरना पड़ा। प्राइवेट काम करते हुये भी आपने अपनी विशेष अभिरुचि के कारण ही आयुर्वेदाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् १६४३ में सागरिया हाईस्कूल तथा अन्य अनेक संस्थाओं के संस्थापक व सञ्चालक स्वामी श्री केशवानन्दजी की प्रेरणा से फाजिल्का (पूर्वी पंजाब) में दानवीर सेठ श्री चाननलालजी द्वारा सञ्चालित धर्मार्थ चिकित्सालय में प्रधान चिकित्सक के पद पर कार्य करना स्वीकार किया। तब से अबतक आप वहीं कार्य करते हुये जनता जनार्दन की सेवा कर रहे हैं। आप चिकित्साक्षेत्र में अच्छे चिकित्सक प्रमाणित हुये हैं।

आचार्य श्री सेवकराम विरक्त

आपने शैशवावस्था में ही महात्मा मण्डलेश्वर श्री शिवजीरामजी विरक्त से दादूपंथ में दीक्षा प्राप्त की। तदनन्तर आप अध्ययनार्थ इस संस्था में प्रविष्ट किये गये। यहाँ अक्षराभ्यास से अध्ययन कर व्याकरणशास्त्री, साहित्यशास्त्री, वेदान्तशास्त्री, दर्शनशास्त्री, सांख्ययोगशास्त्री एवं आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण की। साथ ही हिन्दी का अध्ययन करते हुए हिन्दी की सर्वोच्च परीक्षायें एडवांस, हिन्दी प्रभाकर एवं साहित्यरत्न उत्तीर्ण की। प्रायः आपने सभी परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं।

आपने इंगलिश का भी साधारण अध्ययन किया है। व्याकरण एवं वेदान्त का दो वर्ष तक बनारस में भी रहकर अध्ययन किया है। आप विद्यालय के स्नातकों में पट्शास्त्री हैं।

अध्ययनानन्तर आप जयपुरस्थ श्री दि० जैन संस्कृत कालेज में आयुर्वेदाध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। तब से आप निरन्तर उसी कालेज में कार्य कर रहे



आचार्य श्री सेवकराम विरक्त
(पृष्ठ २०)



स्व० श्री महेश्वरानन्द
(पृष्ठ २३)



श्री गोवर्धनदास
(पृष्ठ २३)



डा० श्रीनिवास चतुर्वेदी
(पृष्ठ २५)



हैं। आपके द्वारा पढ़ाये हुए स्नातक सफल चिकित्सक हैं। आपने इसी कालेज में अध्यापन के साथ साथ पं० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ से जैनदर्शन का अध्ययन कर जैनदर्शनाचार्य परीक्षा भी उत्तीर्ण करली है।

आप हिन्दी की कविता अत्यन्त ही हृदयग्राहिणी करते हैं। आप वस्तुतः एक प्रतिभाशाली, मिलनसार, सहृदय एवं भावुक स्नातक हैं। आपसे समाज को बहुत आशायें हैं।

वैद्य श्रीजगदीश्वरानन्द

आपने रतिया (पंजाब) निवासी श्री धर्मदासजी से दादूमत की दीक्षा ग्रहण की। रतिया में उर्दू की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर सं० १९८५ में आप इस संस्था में प्रविष्ट हुए। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरणमध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। कारणवश आपने विद्यालय का परित्याग कर प्राइवेट रूप से अध्ययन किया और आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की। पश्चात् संस्कृत कालेज के आयुर्वेद विभाग में प्रविष्ट होकर भिषग्वर में प्रथम वर्ष उत्तीर्ण किया और अस्वास्थ्य के कारण द्वितीय वर्ष की परीक्षा में सम्मिलित न हो सके।

मालेरकोटला में कुछ समय तक स्वतन्त्र चिकित्साकार्य किया। कुछ समय तक हरिपाल आयुर्वैदिक फार्मेसी में कार्य किया। तत्पश्चात् महन्त श्री ब्रह्मदासजी रतिया का स्वर्गवास हो जाने पर आप रतिया चले गये और वर्तमान में वहीं स्वतन्त्र औषधालय द्वारा चिकित्साकार्य कर रहे हैं। आप वहां प्रतिष्ठित व्यवसायी व लोकप्रिय चिकित्सक हैं। आपकी आय भी बहुत अच्छी है।

श्री द्वारकादास कलानौरिया

आप बाल्यावस्था में ही श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर में अध्ययनार्थ प्रविष्ट हुए। उसके बाद आपकी शिक्षा का क्रम व्याकरण और आयुर्वेदपरक रहा।

आयुर्वेद के विशेष ज्ञान के लिये आपने रतनगढ़ के प्रसिद्ध वैद्य श्रीमणिराम जी भिषगाचार्य के सान्निध्य में एक वर्ष का समय लगाया और तदनन्तर आपने बनारस में व्याकरण और वेदान्त में विशेष योग्यता पाने के लिये गवर्नमेण्ट संस्कृत

कालेज मे अपना नाम लिखाया। वहा से आपने शास्त्री और आचार्य परीक्षायें पास कीं।

आप राजनीति मे बहुत दिलचस्पी रखते हैं। बचपन से ही आपका ध्यान इस विषय की तरफ इतना खिंचा हुआ था कि दैनिक समाचारपत्र पढे बिना आपको चैन नहीं पडता था। विद्यालय के विद्यार्थियों मे जब कभी आपस मे राजनीति के विषय मे वातचीत चलती थी तो उसमे आप अगुवा होकर भाग लेते थे।

आजकल आप बनारस मे रहते हुए चिकित्सा द्वारा अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वैद्य श्री रामदेव स्वामी आयुर्वेदाचार्य

आप तीन वर्ष की अवस्था मे ही नरेना निवासी महात्मा श्री कल्याणदासजी से दादू सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए।

यहा अध्ययनार्थ प्रविष्ट होकर व्याकरणमध्यमा के तृतीय खण्ड तक शिक्षा प्राप्त की तथा राजकीय संस्कृत कालेज जयपुर की व्याकरणोपाध्याय परीक्षा भी पास की। मध्यमा का बचा हुआ चतुर्थखण्ड खेतडी से पास किया।

रघुनाथ संस्कृत कालेज रतनगढ मे पढते हुए आपने बनारस की साहित्य-शास्त्री परीक्षा का एक खण्ड, अखिल भारतीय विद्यापीठ सम्मेलन की विशारद परीक्षा पास की। श्रीरामानुज संस्कृत विद्यालय, डीडवाना (जोधपुर) से आपने शास्त्री के अवशिष्ट खण्ड तथा अ० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षायें भी उत्तमता के साथ प्राप्त कीं

श्रीरामानुज संस्कृत विद्यालय डीडवाना, श्रीदिगम्बरजैन हाईस्कूल, सुजानगढ (बीकानेर), श्रीबॉगड हाईस्कूल डीडवाना मे अध्यापन का कार्य करने के बाद आयुर्वैदिक क्षेत्र मे, श्री वेंकटेश आयुर्वैदिक चिकित्सालय डीडवाना, श्री दयालु आयुर्वैदिक औषधालय विष्णुभवन, जोधपुर मे रसायनाध्यक्ष तथा प्रधान चिकित्सक के रूप मे कार्य किया। वर्तमान मे श्रीचाणोद गुरा साहब द्वारा संरक्षित आयुर्वैदिक औषधालय, रोमेल (जोधपुर) मे प्रधान चिकित्सक का कार्य कर रहे हैं। इस बीच आप मारवाड आयुर्वेद प्रचारिणी सभा के उपमन्त्री पद को भी सुशोभित कर रहे है।

वैद्य श्री घनश्यामदास

आपने मेड़ता निवासी भागवती पंडित दादूपन्थी सन्त श्री रामदासजी से दीक्षा प्राप्त की। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण प्रथमा तथा व्याकरण मध्यमा तक के ग्रन्थों का अध्ययन किया। दनन्तर गुरुजी का स्वर्गवास होजाने से आपको अध्ययन स्थगित कर विद्यालय का परित्याग करना पड़ा। अपने स्थान का काम सँभालते हुए वर्तमान में आप मेडता में ही चिकित्सा कार्य करते हैं।

श्री महेश्वरानन्द

उतराध के स्थानधारियों में मान्य महन्त श्री मनीरामजी कलानौर से आपने शिष्यत्व ग्रहण किया। यहां विद्यालय में पढ़ते हुए आपने प्रथमा और व्या० मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। मध्यमोत्तीर्ण होने के बाद आप बीमारी के चगुल में फंस गये और आखिर असमय में ही अपने शरीर की आहुति देदी। आप बहुत परिश्रमी और होनहार युवक थे।

श्री गोरधनदास

श्री सुखदेवदासजी, जमात उदयपुर ने आपको दीक्षित किया। आपने प्रथमा तथा व्या० मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। अनन्तर वेदान्तशास्त्री का खण्ड पढ़ने के समय विद्यालय छोड़ दिया। कारण यह था कि आप भक्तिमार्गानुयायी थे और ईश्वर भजन में ही अपने को लगा देना चाहते थे।

आजकल आप फिरोजपुर (पूर्वी पंजाब) जिलान्तर्गत ग्राम मिरजेकी में वाणी का स्वाध्याय कर प्रेमाभक्ति साधना में तत्पर हैं।

वैद्य श्रीदयाराम स्वामी

आपने बडू (जोधपुर) निवासी प्रसिद्ध चिकित्सक दादूमतानुयायी साधु श्री भोलारामजी का शिष्यत्व ग्रहण किया। कुछ दिनों तक गुरुचरणों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर आपने अध्ययन के लिये इस संस्था में प्रवेश प्राप्त किया। यहां अध्ययन कर व्याकरणमध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। स्वास्थ्य विगड़ जाने के कारण विद्यालय छोड़कर स्वास्थ्य सुधारने के लिये रतनगढ़ गये और सामान्यतः आयुर्वेद का अध्ययन किया।

आपकी सेवावृत्ति और परोपकारी भावना को देखकर सागरिया महाविद्यालय के सचालक स्वामी श्री केशवानन्दजी ने आपको सागरिया बुला लिया। वहा आपको दोनों लाभ थे। स्वास्थ्य के लिहाज से यह स्थान उपादेय था और सेवा के लिहाज से भी। वहा आपने बोर्डिंग में सेवाकार्य करते हुये आयुर्वेद की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। तदनन्तर अपने गुरुजी की आज्ञा से अपने गुरुस्थान पर चले गये और चिकित्साकार्य द्वारा जनसेवा को अपना लक्ष्य बनाया।

आप प्राय निःशुल्क चिकित्सा करते हैं। आपकी रुचि प्रारभ से आध्यात्म विद्या की तरफ ही रही है अतः चिकित्साकार्य के साथ साथ आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन तथा आत्मचिन्तन की तरफ भी पर्याप्त ध्यान देते रहते हैं।

अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिये आपने 'निबन्धप्रकाश' नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। आपकी चिकित्सानिपुणता व लोकप्रियता के कारण दूर दूर के रोगी भी आपको चिकित्सार्थ आह्वान करते हैं।

इस समय आप मारवाड मे गूलर स्थान मे रह रहे हैं। आस पास के ग्रामों मे व सभ्य पुरुषों में आपकी पर्याप्त प्रतिष्ठा है। आप सरलता, आध्यात्मिकता आदि गुणों के कारण विद्यालय के गर्व करने लायक विद्यार्थियों में से हैं।

वैद्य श्री गणानन्द स्वामी

आपने कान्हौर (पजाब) निवासी स्वामी श्रीसहजरामजी से दीक्षा ग्रहण की। यहा अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा, आयुर्वेदशास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य परीक्षा अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की। आपकी गणना प्रारम्भ से ही सुशील, परिश्रमी व साहसी विद्यार्थियों मे रही है। आपके बडे गुरुभाई श्री निजानन्दजी स्वामी हैं जो कि इसी विद्यालय के कर्मठ व यशस्वी स्नातक हो चुके हैं और जिन्होंने देशसेवा में अपनी आहुति देदी।

आप अध्ययन समाप्त करने के बाद अपने स्थान को सम्हाले हुए हैं आप वहीं चिकित्साकार्य कर रहे हैं। आप योग्य चिकित्सक, उदार हृदय व सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं।

श्री निवासजी चतुर्वेदी

आप श्री दादूमहाविद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्य, श्री धन्वन्तरि सेवा समिति जयपुर के भेषज निर्माण व चिकित्साविभाग के भूतपूर्व प्रधान, जयपुर के ख्यातनामा यशस्वी चिकित्सक वैद्य पं० मुकुन्ददेवजी भिषग्रत्न के सुपुत्र हैं। आपने प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की। श्री दादूमहाविद्यालय में पं० दयानन्दजी शास्त्री साहित्याचार्य के पास साहित्यमध्यमा शिक्षा प्राप्त की। आपने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके इन्दौर में एल. एम. पी. की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् श्री दादूमहाविद्यालय के आचार्य श्रीबालानन्दजी आचार्य से आयुर्वेद का अध्ययन करके जयपुर राज्य की आ० आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद सन् १६४७ में आपकी नियुक्ति गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज में प्रोफेसर के पद पर हुई।

यहां आप उभयज्ञ होने के कारण ऐलोपैथिक व आयुर्वैदिक दोनों की तुलनात्मक शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान करते हैं। कालेज में कायकुशलता से प्रभावित होकर शासन ने M.B.B.S. के शिक्षण के लिये आपको मेडिकल कालेज में भेजा जिसमें राजपूताना विश्व विद्यालय की M.B.B.S. डिग्री प्राप्त कर चुके। इस समय आप गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज में प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं। आप अति बुद्धिमान्, कार्यकुशल व सौम्य व्यक्ति हैं। भविष्य आपका अत्युज्ज्वल है।

श्री शिवराम स्वामी

आपने जमात उदयपुर निवासी स्वामी श्री हरभजनजी से दीक्षा ग्रहण की। गुरुजी के स्वर्गवास के बाद आपने स्थान का परित्याग किया और विरक्त हो गये। कुछ समय तक आपने मण्डलेश्वर त्यागी सन्त चैनजी महाराज से श्री दादूवाणी का अध्ययन किया और तत्पश्चात संस्कृत भाषा व दर्शनशास्त्र के अध्ययन के लिये इस संस्था में प्रवेश किया। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरणमध्यमा और दर्शनशास्त्री परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। व्याकरणशास्त्री परीक्षा बनारस में रहते हुए उत्तीर्ण की। आप सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हैं। आपने स्वतन्त्ररूप से न्यायशास्त्र का एवं अन्य दर्शनशास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया है। आपकी सुशीलता और साधुता पर मोहित हो कर ऋषिकेश के दादूसमाज के एकमात्र स्थान रामवाड़ा के महन्तजी ने आपको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। तब से आप

निरन्तर उस स्थान की उन्नति व प्रतिष्ठा में लगे हुए हैं। आप अच्छे मण्डलेश्वर व विद्वान् हैं। आपकी भाषा में वैदुष्य के साथ साथ प्रसाद व माधुर्य का भी अपूर्व सम्मिश्रण है जो कि सोने में सुगन्ध का काम करती है। आप सच्चे साधु विरक्त हैं। आप जैसे स्नातक से विद्यालय व समाज को गर्व है।

श्री रामप्रकाश स्वामी भिषगाचार्य

आप भारतविख्यात, आयुर्वेदमार्तण्ड, सिद्धहस्तचिकित्सक चूडामणि स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के पौत्रशिष्य तथा स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य के शिष्य हैं। ६७ वर्ष की अवस्था में दादूसम्प्रदाय की दीक्षा पाकर विद्यालय में प्रवेश पाया। व्याकरण विषय की मध्यमा और सर्वदर्शन विषय की शास्त्री परीक्षा गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस से पास की।

आयुर्वेदशास्त्र अपनी परम्पराप्राप्त विद्या थी। अतः आयुर्वेद अध्ययन के उपयोगी व्याकरण व दर्शनादिकों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज, जयपुर में प्रविष्ट हो गये और भिषगाचार्य परीक्षा पास की। गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज से सर्वप्रथम भिषगाचार्य परीक्षा पास होने वाले स्नातकों में से आप अन्यतम हैं। चिकित्साकार्य की परिपूर्णता के लिये डाक्टरी ज्ञान की भी आवश्यकता है इसलिये उस ज्ञान के साधन इंगलिश की भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया और हाईस्कूल तथा इंटरमीजिएट परीक्षायें पास कीं।

आपने एक वर्ष तक दिगम्बर जैन कालेज, जयपुर में आयुर्वेद के प्रधानाध्यापक पद पर कार्य किया। चिकित्साकार्य में बाधा होने के कारण बाद में उसका परित्याग कर दिया और इस समय आप अपने औषधालय में ही चिकित्साकार्य कर रहे हैं।

आयुर्वेदीय लेख लिखने का कार्यक्रम आपका चलता है। आप ९ राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन बूंदी निबन्ध प्रतियोगिता में सर्व प्रथम होने के कारण स्वर्णपदक से पुरस्कृत हुए। आपको पुरस्कृत कोटि का लेख लिखने के कारण झांसी आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी ने M Sc (Ayurved) डिग्री प्रदान कर सम्मानित किया है।

आपने सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है। इस समय आप जयपुर म्युनिसिपल कमेटी के निर्वाचित सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त धन्वन्तरि औषधालय आरोग्यशाला समिति के प्रधान मन्त्री, धन्वन्तरि फार्मेसी, जयपुर की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य, राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के संयुक्त मन्त्री, स्थानीय सद्वैद्य सभा के कोषाध्यक्ष तथा नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन दिल्ली की स्थानीय समिति के सदस्य हैं। इससे पूर्व दो वर्ष तक धन्वन्तरि फार्मेसी, तथा धन्वन्तरि सेवा समिति, जयपुर के संयुक्त मन्त्री और राजस्थान आयुर्वेदीय छात्र संघ के संयोजक भी रह चुके हैं। स्थानीय हिन्दू अनाथाश्रम की संचालक समिति के आप सदस्य हैं।

वर्तमान में आप श्रीदादूमहाविद्यालय, जयपुर में आयुर्वेद के अध्यापन का कार्य भी कर रहे हैं। अभी तक आपका अध्ययनक्रम भी चालू है। आपकी इस स्वल्प अवस्था में इन कार्यों में रुचि प्रशंसनीय है। आशा है आप तीव्र गति से अपना भविष्य उज्ज्वल करेंगे। आप मिलनसार, हँसमुख व प्रतिभाशाली होनहार युवक हैं।

वैद्य श्री विद्याधर शर्मा भिषगाचार्य

आपका जन्म आषाढ़ कृष्णा ६ सं० १९७२ में बीकानेर के एक उच्च पारीक कुल में हुआ है। आपके पिता पं० श्री रामधनजी पांडिया हैं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री राजस्थान ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, रतनगढ़ (बीकानेर) में सम्पन्न हुई जहां दशवीं श्रेणि तक के अध्ययन के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य संमेलन प्रयाग की हिन्दी विशारद तथा क्वींस कालेज बनारस की प्रथमा तथा मध्यमा के तीन खण्ड भी उत्तीर्ण किये। इसके अनन्तर मोहता आयुर्वेद विद्यालय बीकानेर में आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा पास करके शास्त्री परीक्षा श्री दादू-महाविद्यालय, जयपुर से पास की। आयुर्वेदाचार्य परीक्षा मोहता आयुर्वेद विद्यालय बीकानेरसे पास की।

अध्ययनक्रम समाप्त कर सर्वप्रथम आपने कलकत्ता में स्वतन्त्र रूप से चिकित्साकार्य प्रारम्भ किया। जलवायु की अननुकूलता से आप बीकानेर में ही

आये। यहा श्रीदाऊदयाल दातव्य औषधालय में ६ वर्ष तक चिकित्सक का काम बड़ी सफलता के साथ किया और जनता मे ख्याति प्राप्त करली।

आजकल आपने अपना स्वतन्त्र 'श्रीगायत्री आयुर्वैदिक चिकित्सा" नाम का चिकित्सालय कर रक्खा है।

सार्वजनिक क्षेत्र मे भी आप अपना पर्याप्त सहयोग देते रहते हैं। राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के मन्त्रिपद को आपने बड़े कौशल के साथ निभाया। बीकानेर प्रान्तीय जिला वैद्य सभा के कार्य सचालन मे तथा सगठन में आपका प्रमुख हाथ रहा है। आयुर्वेद ससार आप से बहुत कुछ उन्नति की आशा रखता है।

वैद्य श्री श्रीकृष्ण स्वामी

आप चूरू (बीकानेर) निवासी साधुवर्य श्री यशरामजी के शिष्य हैं। आपकी प्रारम्भिकशिक्षा सरदार शहर मे हुई। बाद में विद्यालय में भर्ती किये गये। प्रथमा और व्याकरण मध्यमा अच्छी श्रेणी में पास की। साथ ही अखिल भारतीय आयुर्वेद महा सम्मेलन की विशारद परीक्षा भी पास करली। गुरु जी के निरन्तर रुग्ण रहने के कारण विद्यालय का त्याग कर दिया और उनकी सेवा में रहने लगे। सेवा करते करते आपने पजाब की 'हिन्दी प्रभाकर' (आनर्स) परीक्षा पास की और साथ ही हिन्दू विश्वविद्यलय बनारस की Admission (मेट्रिक) परीक्षा भी पास करली। आपको हिन्दी की कविता करने का बहुत शौक है। कांग्रेस आन्दोलनों के समय भिन्न भिन्न कई प्रकार की रचनायें आपने बनाई हैं। खेलों के भी आप अच्छे ज्ञाता हैं। आज कल आप गुरुजी की सेवा मे ही निरत हैं।

वैद्य श्री रामतीर्थ स्वामी

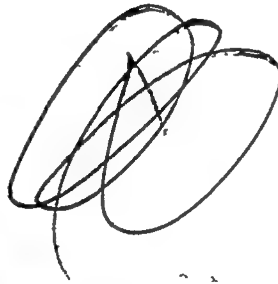
आपको भिवानी निवासी पीयूषपाणि प्रसिद्ध वैद्य स्वर्गीय श्री रघुनाथदास जी ने दीक्षा दी। बल्यावस्था मे ही आपके गुरु जी के असामयिक स्वर्गवास के कारण आप गुरुचरणों से वञ्चित होगये। सन् १९३५ मे महाविद्यालय मे प्रविष्ट होकर व्याकरणमध्यमा, वेदान्तशास्त्रीय प्रथमखड, आयुर्वेद विशारद और आयुर्वेदा -चार्य परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। अध्ययनानन्तर एक वर्ष तक आपने मोहता आयुर्वेद विद्यालय बीकानेर मे कर्माभ्यास किया। सन् १९४६ से आप भिवानी मे ही अपने गुरु द्वारा संस्थापित औषधालय मे चिकित्सा कार्य कर रहे हैं।



वैद्य श्री श्रीकृष्ण स्वामी
(पृष्ठ २८)

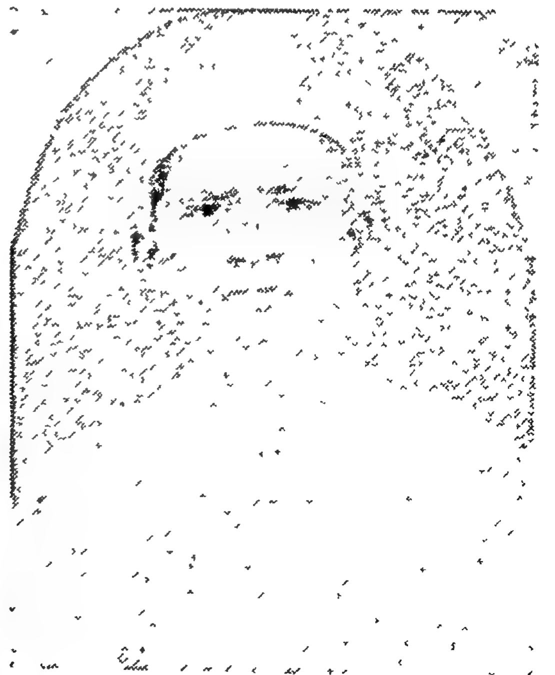


वैद्य श्री रामतीर्थ स्वामी
(पृष्ठ २८)





वैद्य श्री रामदयालु भिषगाचार्य
(पृष्ठ २६)



श्री माधवसिंह शास्त्री
(पृष्ठ २६)

वैद्य श्री रामदयालु भिषगाचार्य

आप आयुर्वैदिक विभाग के डायरेक्टर गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज के प्रिन्सिपल, प्रसिद्ध चिकित्सक तथा चिकित्सक चूड़ामणि राजवैद्य श्री नन्दकिशोरजी जयपुर निवासी के पुत्र हैं। आपने प्रारम्भिक शिक्षा के बाद इस संस्था में प्रवेश किया। यहां अध्ययन कर व्याकरण मध्यमा, आयुर्वेदोपाध्याय तथा साहित्यशास्त्री परीक्षा प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की। गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज में अध्ययन कर भिषग्वर व भिषगाचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। भिषगाचार्य में प्रथम आकर आपने महाराणा उदयपुर से सुवर्णपदक प्राप्त किया।

आपने स्वतन्त्ररूप से दर्शनशास्त्र तथा इंगलिश का भी अध्ययन किया। इंगलिश में आपकी योग्यता मैट्रिक तक की है। संस्कृत में गद्यभाषी व पद्यभाषी कविता आप बहुत ही विशिष्ट करते हैं। वर्तमान में आप श्री राजवैद्यजी के राजकीय अन्य सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण नवजीवन चिकित्सालय का कार्य-भार सँभाल रहे हैं और उसका सुन्दर सञ्चालन कर रहे हैं। आप चिकित्सक हैं। मान्य विद्वान् हैं। आप अपने योग्य पिता के योग्य सुपुत्र हैं। आप प्रतिभाशाली, कर्मठ व उत्साही स्नातक हैं। आप जैसे युवकरत्न को पाकर जयपुर गर्व का अनुभव कर सकता है।

आप जयपुर की प्रसिद्ध आयुर्वैदिक संस्था श्री धन्वन्तरि औषधालय की समितियों में भी पदाधिकारी हैं।

श्री माधवसिंह शास्त्री

आप विजनौर जिलान्तर्गत फीना ग्राम निवासी श्री राघवानन्दजी के सुपुत्र हैं। अपने ग्राम में ही प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर इस विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया यहां व्याकरणप्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा अच्छी श्रेणी से उत्तीर्ण की। गृहस्थ भाराक्रान्त होजाने से आपको अध्ययन छोड़ कर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होना पड़ा। १॥ वर्ष तक आपने मारवाड़ के एक संस्कृत विद्यालय में कार्य किया। वर्तमान में आप गांधी स्मारक उच्चमाध्यमिक विद्यालय सुरजननगर (मुरादाबाद) में संस्कृत हिन्दी के प्रधानाध्यापक हैं। अध्ययनानुरागी होने से अभी अध्ययन कर रहे हैं और इस वर्ष शास्त्री परीक्षा में प्रविष्ट हो रहे हैं। आप उद्यमी, कर्मठ तथा बुद्धिमान् व्यक्ति हैं।

श्री सोहनलाल भिषगाचार्य

आप रामपरा (पञ्जाब) निवासी दादूपन्थी गृहस्थी स्वामी श्री बख्तावरदासजी के सुपुत्र हैं। आप बाल्यावस्था में ही अध्ययनार्थ इस महाविद्यालय में प्रविष्ट करा दिये गये। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। मोहता आयुर्वेद विद्यालय बीकानेर में अध्ययन कर भिषग्वर परीक्षा उत्तीर्ण की और साथ ही साथ सम्पूर्ण विषय लेकर मेट्रिक परीक्षा भी। तदनन्तर आप मेडिकल के कोर्स के लिये एफ एस सी में अध्ययन करने लगे। किन्तु परिस्थितिवश आपने मेडिकल अध्ययन का विचार छोड दिया और जयपुर रह कर भिषगाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। अब आप सागरिया महाविद्यालय (बीकानेर) में रसायनशालाध्यक्ष के रूप में योग्यता पूर्वक काम कर रहे हैं। इससे पूर्व आपने दयालुफार्मेसी बीकानेर में करीब दो वर्ष तक चिकित्सा तथा औषध निर्माणकार्य किया है।

आप सहृदय व उन्नत विचार वाले आदर्श युवक हैं।

श्री बालचन्द्र यति

आपने फतेहपुर (शेखावाटी) निवासी साधुवर्य श्री विष्णुदयालजी यति से यतिसम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की। कुछ काल मे गुरुसान्निध्य में रहने के पश्चात् आपको अध्ययनार्थ इस विद्यालय मे प्रविष्ट कराया गया। यहां आपने व्याकरणप्रथमा तथा कुछ मध्यमा पाठ्य विषय का अध्ययन किया। बाद मे बाहर रह कर अखिल भारतीय विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य परीक्षा पास की। वर्तमान मे आप कलकत्ता में चिकित्साकार्य कर रहे हैं। आप अच्छे चिकित्सक तथा होनहार स्नातक हैं।

श्री कन्हैयालाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

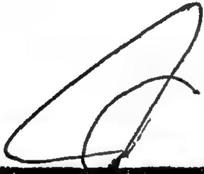
आप भंटियाना जिला मेरठ निवासी वैद्य श्री हरिदत्तजी शर्मा के सुपुत्र हैं। आपने प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय प्राईमरी स्कूल मे प्राप्त की। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप इस महाविद्यालय मे प्रविष्ट हुए। यहां अध्ययन कर व्याकरण विषय में आचार्य परीक्षा पास की। अध्ययन समाप्त करने के बाद डेढ वर्ष तक श्रीदयाराम संस्कृतविद्यालय, नरेना मे अध्यापनकार्य किया। बाद मे आपने आयुर्वेद विश्वविद्यालय झांसी में अध्यापनकार्य तथा होस्पिटल सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पर अत्यन्त सफलता



श्री सोहनलाल भिषगाचार्य
(पृष्ठ ३०)



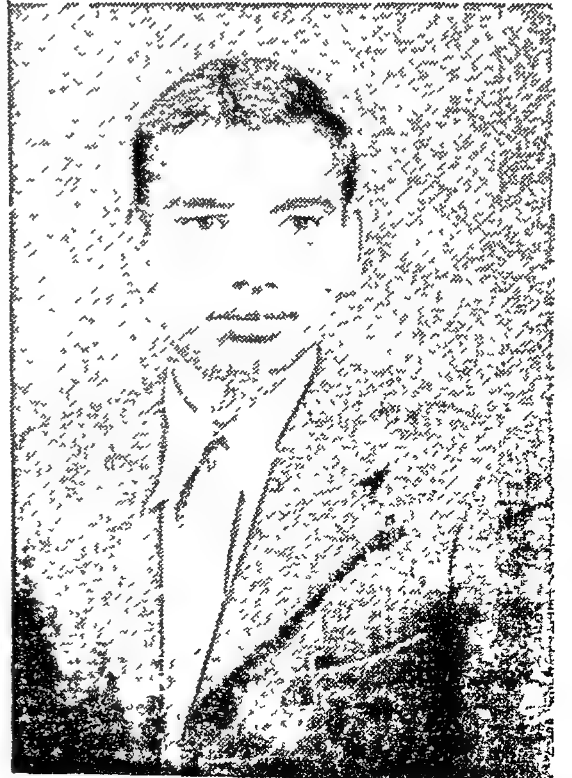
श्री कन्हैयालाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
(पृष्ठ ३०)







वैद्य श्री रामदयालु आयुर्वेदाचार्य
(पृष्ठ ३१)



महन्त श्री रामानन्द आचार्य
(पृष्ठ ३२)



पूर्वक कार्य किया। अब आपके पितृव्य वैद्यराज श्रीहरिश्चन्द्रजी के गोलोकवासी होजाने पर घरेलू औषधालय का सञ्चालन करने के लिये उस पद का परित्याग करना पड़ा। वर्तमान में अपने औषधालय का सञ्चालन करते हुए आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा जनताजनार्दन की सेवा कर रहे हैं।

जयपुर में होने वाले ३२वें अ० भा० संस्कृत महासम्मेलन में "संस्कृतशिक्षा-प्रणाली" निबन्ध प्रतियोगिता में सर्वप्रथम आकर सुवर्णपदक भी प्राप्त किया है। आप स्वभाव के सरल, मेधावी तथा कर्मठ पुरुष हैं। आप इस महाविद्यालय के प्रधान आचार्य, स्वर्गीय श्री पं० रामचन्द्रजी महाराज के भ्रातृज हैं और उनके सान्निध्य में रह कर ही आपने इस महाविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की है।

वैद्य श्री रामदयालु आयुर्वेदाचार्य

आप मण्डलेश्वर श्री भूरारामजी विरक्त, जोबनेर के शिष्य हैं। आपने यहां भर्ती होकर अक्षराभ्यास से आचार्य परीक्षा पर्यन्त अध्ययन किया। आपने व्याकरणमध्यमा एवं अखिल भारतवर्षीय विद्यापीठ की आचार्य तथा गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज जयपुर से आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें पास कीं।

प्रसिद्ध व्यायामशिक्षक श्री गोपालजी स्वामी से बड़ौदा व्यायाम शिक्षा-पद्धति द्वारा व्यायाम की शिक्षा प्राप्त कर उसमें "व्यायाम प्रवीण" की उपाधि से विभूषित हुए। समय समय पर आपने कई व्यायाम प्रदर्शनों में भाग लिया और पुरस्कार स्वरूप कई पदक प्राप्त किये हैं। श्री दादूसम्प्रदाय में अभूतपूर्व आयोजन "श्रीदादू-चतुःशताब्दी महोत्सव" पर व्यायाम प्रतियोगिता में आपको द्वितीयश्रेणी का पुरस्कार-स्वरूप रजतपदक मिला किञ्च जयपुर आर्यसमाज के वार्षिक अधिवेशन पर दो बार एवं सांगानेर गोशाला महोत्सव पर पांच वार रजतपदक आपको मिल चुके हैं।

आजकल आपने रामपुरा ग्राम निवासी माननीय सन्त श्री हरदेवदासजी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया है और राजकीय औषधालय कलमढ़ा में चिकित्साकार्य कर रहे हैं।

महन्त श्री रामानन्द आचार्य

आपने थांभायती महन्त दादू सम्प्रदाय के गणनीय विद्वान् वेदान्तकेशरी श्री गणेशदासजी से दादूमत की दीक्षा प्राप्त की। प्रारम्भिक सामान्य शिक्षा सांभर में प्राप्त की। यहां पढ कर आपने व्याकरणमध्यमा, वेदान्तशास्त्री, आयुर्वेदशास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य परीक्षा अच्छी श्रेणी में प्राप्त की। दो वर्ष तक अध्ययनकाल में तथा अध्ययन समाप्त करने के बाद एक वर्ष तक इस महाविद्यालय में अध्यापन व सहायक व्यवस्थापक पद पर कार्य किया। सम्प्रति आप राजकीय औषधालय में चिकित्साकार्य कर रहे हैं।

आप परिश्रमी, बुद्धिमान्, शीघ्रग्राही व कर्मठ व्यक्ति हैं।

श्री विजयचन्द्र यति

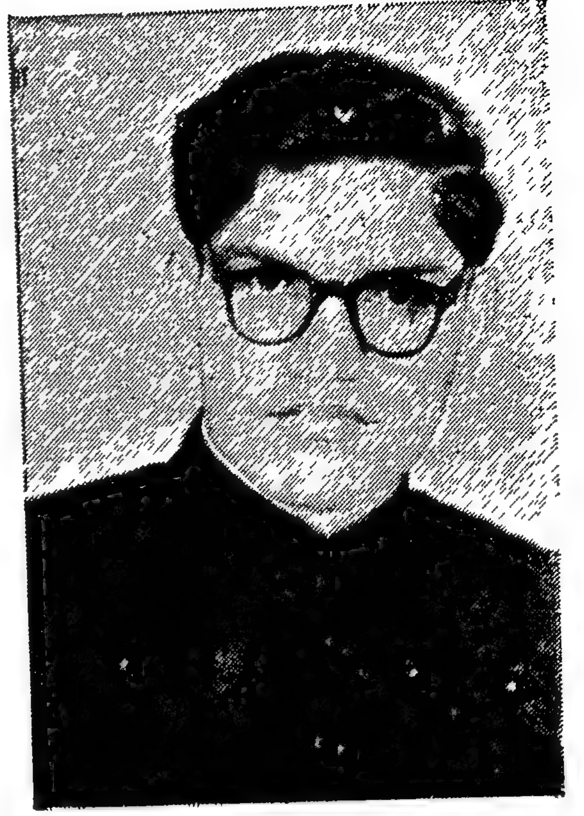
आप फतेहपुर निवासी सन्त श्री ऋद्धिकरणजी यति से यतिसम्प्रदाय की दीक्षा प्राप्त की। प्रारम्भिक शिक्षा फतेहपुर में कर के इस विद्यालय में प्रविष्ट हुए और व्याकरणमध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। साथ ही दर्शनशास्त्र का भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् आपने चिकित्सा क्षेत्र में अनुराग होने से तथा आयुर्वेद में वंश परम्परागत होने से आयुर्वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया और जयपुर तथा विद्यापीठ से आयुर्वेद परीक्षा उत्तीर्ण की। आजकल आप अपने स्थान-फतेहपुर-में ही चिकित्साव्यवसाय कर रहे हैं। आप अत्यन्त शालीन, सादा तथा मधुरभाषी व्यक्ति हैं।

वैद्य श्री ईश्वरदास भिषगाचार्य

आपने अतिशैशवावस्था में ही दादूमतावलम्बी वस्सी (जयपुर) निवासी स्वामी श्री नारायणदासजी से दीक्षा ग्रहण की। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद विद्यालय में प्रविष्ट हुए। यहां अध्ययन करते हुये आपने व्याकरणमध्यमा, साहित्यशास्त्री, काव्यतीर्थ, प्रभाकर तथा हिन्दी विशेष योग्यता (हिन्दी एड्वास) परीक्षायें उत्तीर्ण कीं तथा आयुर्वेद का प्रायोगिक अध्ययन करने के लिये आप विद्यालय का परित्याग कर महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में प्रविष्ट हुये और वहां रह कर भिषगाचार्य एवं विद्यापीठ आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें पास की।



श्री रामप्रकाश स्वामी भिषगाचार्य
(पृष्ठ २६)



श्री वजयचन्द यति
(पृष्ठ ३२)



वैद्य श्री ईश्वरदास भिषगाचार्य
(पृष्ठ ३२)



वैद्य श्री कृष्णदत्त शास्त्री
(पृष्ठ ३३)

अध्ययनानन्तर आपने आयुर्वेदाध्यापन तथा चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया। पांच वर्ष तक जैन दिगम्बर कालेज में आयुर्वेद प्रधानाध्यापक पद पर कार्य किया। पश्चात् आपका गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज जयपुर में आयुर्वेदाध्यापक पद पर निर्वाचन होगया और अब वर्तमान में आप उसी पद पर कार्य कर रहे हैं।

आपकी अध्यापन शैली सरल उत्तम व हृदयग्राही है। आप अध्यापन के साथ साथ चिकित्सा कार्य भी करते हैं। जयपुर में आपने 'चरक फार्मेसी' स्थापित की है। आप अध्ययन में अब भी रुचि रखते हैं जिसके फलस्वरूप इन सब कार्य भारों को वहन करते हुए भी आपने सम्पूर्ण विषय लेकर हाईस्कूल की परीक्षा अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं। आप सरल, उदार व यशस्वी व्यक्ति हैं।

श्री कृष्णदत्त शास्त्री

आप बांदीकुई के पास अरन्या ग्राम निवासी श्रीनन्दरामजी ब्राह्मण के सुपुत्र हैं। आपने इस महाविद्यालय में अध्ययन कर व्याकरण मध्यमा तथा जयपुर की साहित्यशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययनानन्तर आप सुप्रसिद्ध वनस्थली विद्यापीठ (जयपुर) में संस्कृत सहायकाध्यापक पद पर नियुक्त हुए और तब से आज तक उसी संस्था में सेवा करते हुए अपने जीवन को सफल बना रहे हैं। आप संस्कृत की शिक्षा को बड़े रोचक व हृदयग्राही ढङ्ग से प्रदान करते हैं।

आप आधुनिक गीतों में संस्कृत की सरल रचनायें भी करते हैं।

श्री हरिप्रसाद शास्त्री

आपने सूरत (गुजरात) निवासी प्रसिद्ध दादूपन्थी महन्त श्रीरामप्रसादजी से दीक्षा ग्रहण की। कुछ समय पश्चात् आप अध्ययनार्थ इस विद्यालय में आये। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा तथा आयुर्वेदशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। आप अध्ययन के अत्यन्त अनुरागी हैं। आपने परिस्थितिवश विद्यालय का परित्याग किया पर अध्ययन न छोड़ा। आपने गुजरात में ही रह कर वेदान्तशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की और अब वेदान्ताचार्य पढ़ रहे हैं तथा उपदेश भी देते रहते हैं।

आप दृढ़निश्चयी, कठोर परिश्रमी, साहसी तथा अपने ध्येय के पक्के मनस्वी व्यक्ति हैं।

श्री रामपाल रामस्नेही

आपने सांवीण निवासी मलूकदासजी रामस्नेही से रामस्नेह सम्प्रदाय में दीक्षा प्राप्त की। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद यहां रह कर आपने व्याकरणमध्यमा, वेदान्तशास्त्री, एवं इगलिश में मैट्रिक परीक्षायें उत्तीर्ण की। इसके अतिरिक्त जैन संस्कृत कालेज से व्याकरणशास्त्री (जयपुर) पास की। कारणवश विद्यालय छोडना पड़ा।

आपकी स्मृति व बुद्धि भी साथ देती है। अतः बाहर जाकर भी आपने इंगलिश की इण्टर परीक्षा, अ० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य परीक्षा एवं साहित्यरत्न तथा प्रभाकर (पञ्जाब) परीक्षा उत्तीर्ण की। वर्तमान में आप बी. ए. एवं वेदान्ताचार्य परीक्षा की तय्यारी कर रहे हैं।

आप संगीत के भी ज्ञाता हैं। आपका कण्ठ मनोहारी व स्वर हृदयाकर्षक है।

आप सुशील, कुशाग्रबुद्धि व होनहार युवक हैं। भविष्य आपका उज्ज्वल प्रतीत होता है।

वैद्य श्री शिवदत्त व्यास

आप मेरवाडान्तर्गत रायला ग्राम निवासी श्री लालूरामजी व्यास के सुपुत्र हैं। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अन्यत्र हुई। यहां से आपने मध्यमा, आयुर्वेदोपाध्याय, आयुर्वेदशास्त्री तथा विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं।

वर्तमान में आप राजस्थान आयुर्वेदिक विभाग द्वारा सञ्चालित आयुर्वेदिक औषधालय 'कुचील' में प्रधान वैद्य का काम कर रहे हैं। आप सुशील, परिश्रमी व योग्य चिकित्सक हैं।

वैद्यरत्न पं० श्रीप्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य

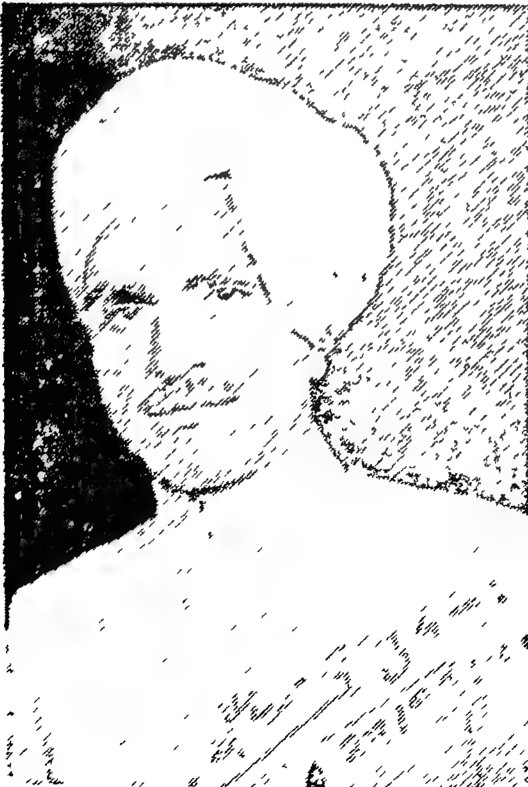
आपका जन्म जयपुरराज्यान्तर्गत गांव खातोलाई पो० शाहपुरा में पं० श्री दौलतरामजी शर्मा ज्योतिषी के यहां हुआ। यद्यपि आपने प्रारम्भिक शिक्षा व आयुर्वेद की शिक्षा अन्यत्र प्राप्त की है। तथापि साहित्य मध्यमा तथा साहित्यशास्त्री के कोर्स का अध्ययन इस संस्था में किया है। अतः आप अभी इस संस्था के स्नातक हैं।



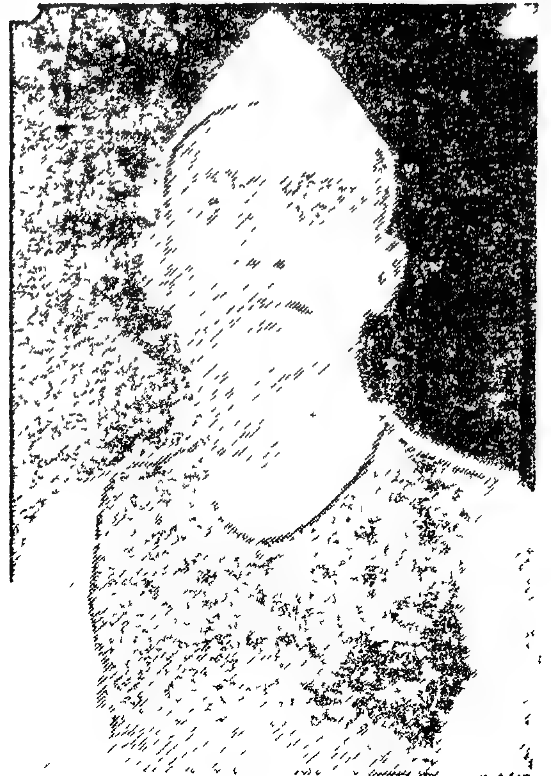
श्री रामपाल रामस्नेही
(पृष्ठ ३४)



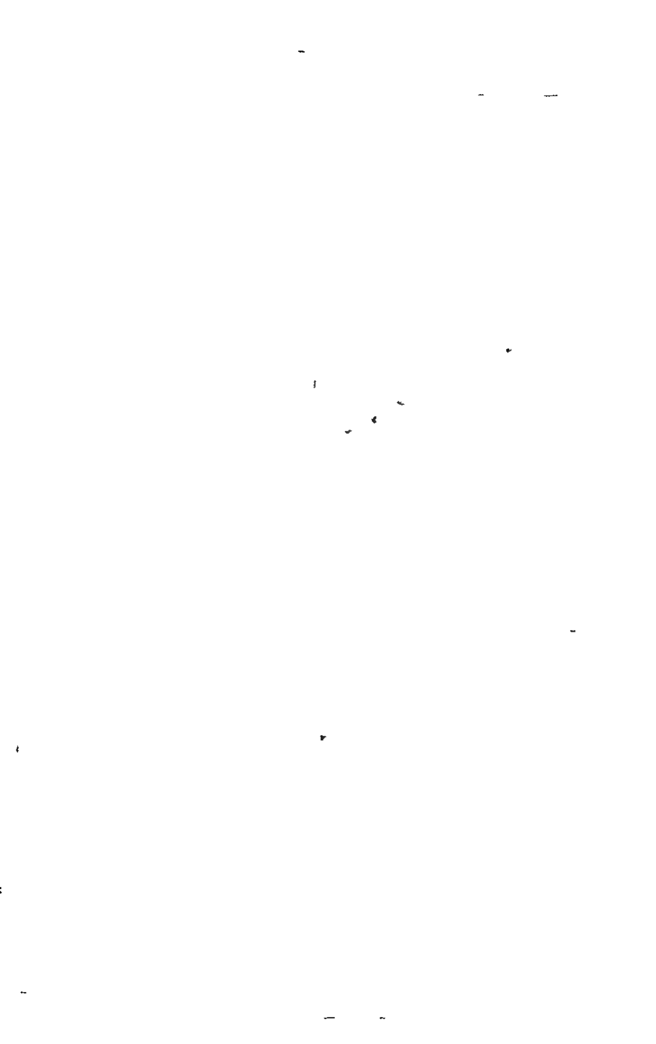
वैद्य श्री शिवदत्त व्यास
(पृष्ठ ३४)



वैद्यरत्न श्रीप्रभुदत्त शास्त्री
(पृष्ठ ३५)



वैद्य श्री ईश्वरदास स्वामी
(पृष्ठ ३५)



आप अत्यन्त मेधावी व प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। वर्तमान में परशुरामपुरिया आयुर्वैदिक कालेज सीकर में प्रिंसिपल के पद पर कार्य कर रहे हैं। कार्यक्षेत्र में आप अच्छी उन्नति व ख्याति प्राप्त करेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

वैद्य श्री ईश्वरदास स्वामी आयुर्वेदाचार्य (विरक्त)

आप श्री भूरजी, लाडपुरा (जमात उदयपुर) द्वारा दीक्षित हुए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा महुवा, रामगढ़ (जयपुर) में सम्पन्न हुई। तदनन्तर आप श्रीदादूबाग, कनखल (हरिद्वार) में चले गये और वहीं से आपने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस की प्रथमा परीक्षा पास की।

श्री दादूमहाविद्यालय अपनी शिक्षापद्धति के लिये प्रसिद्ध हो चुका था इस लिये आपको भी अपनी आगे की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा हुई और तदनुसार सन् १९४२ में आप इसमें प्रविष्ट हो गये। यहां अध्ययन कर आपने गवर्नमेण्ट कालेज बनारस की व्याकरणमध्यमा और वेदान्तशास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आयुर्वेदाचार्य जयपुर की और प्रयाग की हिन्दी विशारद भी आप पास कर चुके हैं।

श्री मोहनलाल शर्मा भिषगाचार्य

आप जयपुर राज्यान्तर्गत लोहरवाड़ा ग्राम निवासी हैं। आप प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्ति के बाद इस महाविद्यालय में अध्ययनार्थ आये। यहां आपने व्याकरण मध्यमा व व्याकरणशास्त्री अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की। साथ ही पञ्जाब की शास्त्री तथा आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा भी यहीं से अध्ययन कर उत्तीर्ण कीं। तदनन्तर ग० आ० कालेज में प्रविष्ट हो कर भिषग्वर व भिषगाचार्य परीक्षायें पास कीं।

वर्तमान में अपने निजी औषधालय भार्गव चिकित्सालय में अपने ज्येष्ठभ्राता के साथ चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। तथा दिगम्बर जैन कालेज में आयुर्वेद प्रधानाध्यापक पद पर कार्य कर रहे हैं। आप बुद्धिमान् तथा शान्त प्रकृति के उत्साही व्यक्ति हैं।

श्री गोकुलेन्द्र शर्मा भिषगाचार्य

आप जयपुर राज्यान्तर्गत मोरीझा (चौमू) ग्राम निवासी हैं। आपने व्याकरण प्रथमा उत्तीर्ण करने के बाद इस महाविद्यालय में प्रवेश किया। यहां अध्ययन कर आपने प्रथम श्रेणी में व्याकरणमध्यमा तथा विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। तदनन्तर गवर्नमेण्ट आयुर्वैदिक कालेज में अध्ययन कर प्रथम श्रेणी में भिषगाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने अदम्य अध्ययन साहस से अनेक कष्टों का सामना करते हुए किया है। आप अध्ययन प्रेमी स्नातक हैं।

अध्ययनानन्तर आपकी नियुक्ति रुइया कालेज रामगढ में उपाध्यक्ष के पद पर हुई। आपने कुछ समय बाद ही उसका परित्याग कर दिया और मालपुरा जिले के औषधालयों में इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त होगये। तब से आप इसी पद पर कार्य कर रहे हैं। सामन्तवाद के विरुद्ध लड कर गरीबों की सहायता करना आपका लक्ष्य है। आप होनहार, बुद्धिमान् तथा देश सेवक व्यक्ति हैं।

श्री शीतलदास स्वामी

आपने दादू द्वारा के भूतपूर्व भण्डारी स्वामी श्री बालदासजी हरिरामजी से दादूसम्प्रदाय की दीक्षा प्राप्त की। श्री दादूदयाराम विद्यालय, नरेना में प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। आप इस सस्था में प्रविष्ट हुए और व्याकरण मध्यमा उत्तीर्ण हुए। साथ ही अखिल भारतीय विद्यापीठ दिल्ली की आयुर्वेदाचार्य में इस वर्ष सम्मिलित हो रहे हैं।

वर्तमान में आप गवर्नमेण्ट आयुर्वेद कालेज जयपुर में भिषग्वर श्रेणी में अध्ययन कर रहे हैं।

श्री यमुनादास स्वामी

आप जमात चासेन के महन्त श्री गोवर्धनदासजी के शिष्य हैं। दीक्षा ग्रहण से पूर्व ही आपके पिता श्री नरतानरदासजी ने अध्ययनार्थ इस विद्यालय में प्रविष्ट कराया। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण मध्यमा तथा वेदान्तशास्त्री का प्रथम खण्ड पास किया।



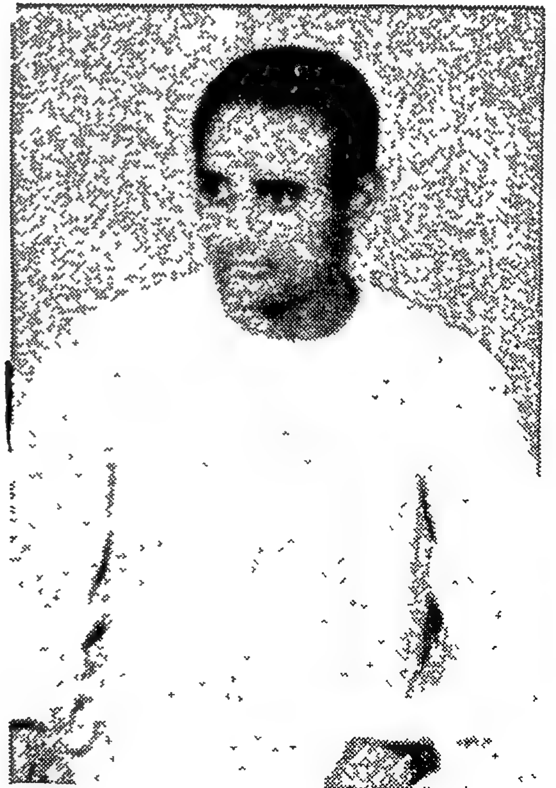
श्री मोहनलाल शर्मा भिषगाचार्य
(पृष्ठ ३५)



श्री शीतलदास स्वामी
(पृष्ठ ३६)



श्री यमुनादास स्वामी
(पृष्ठ ३६)



श्री मनोहरलाल ब्रह्मचारी
(पृष्ठ ३७)

सम्प्रति आप वेदान्त का तथा भिषग्वर श्रेणी में आयुर्वेद का अध्ययन कर रहे हैं। आप योग्य विद्यार्थियों में से हैं आपको अपने अधीत विषय का अच्छा परिज्ञान है। आप कार्य कुशल व व्यवहारदक्ष हैं।

श्री मनोहरलाल ब्रह्मचारी

आप मीरपुर खास (सिन्ध हैदराबाद) के निवासी हैं। आपने सिन्ध के प्रसिद्ध महात्मा वेदान्ती श्री लीलासहायजी से गुलाबदासीपन्थ की दीक्षा प्राप्त की। संस्कृत के अध्ययन के लिये आप ऋषिकेश गये। वहां कुछ वेदान्त ग्रन्थ तथा संस्कृत का अध्ययन किया।

उसी समय आप इस संस्था की ख्याति सुन कर इस संस्था में आगये। यहां आपने प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। आप सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हैं। आपने मैट्रिक तक इंगलिश भाषा का भी अध्ययन किया है।

आप प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। संस्कृत की गद्य व पद्यमयी सुन्दर रचना करते हैं। आप अध्ययन के साथ साथ प्रतिदिन जिज्ञासुजनों को उपदेश भी करते हैं। ग्रीष्मावकाश में चार मास उपदेशार्थ जोधपुर आदि नगरों में भ्रमण करते हैं। जिज्ञासुजनों को शुद्ध वेदान्त का तथा पञ्चदशी, विचारसागर तथा शङ्करानन्दी आदि वेदान्त ग्रन्थों का अध्यापन कराते हैं। आपकी उपदेशकला व भाषणकला प्रशस्त हैं। आप एक अत्यन्त होनहार विद्वान् तथा महात्मा हैं।

वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा

आप जयपुर निवासी श्री कन्हैयालालजी शर्मा के पुत्र हैं। आप प्रथमा व कुछ मध्यमा के पाठ्य विषय का अध्ययन करने बाद इस संस्था में अध्ययनार्थ आये। यहाँ अध्ययन कर आपने साहित्यमध्यमा तथा साहित्यशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। यहाँ अध्ययन के साथ साथ आपने गवर्नमेण्ट कालेज से भिषग्वर तथा भिषगाचार्य की परीक्षायें तथा साहित्यरत्न परीक्षा भी उत्तीर्ण कीं।

वर्तमान में आप तहवीलदारों का रास्ता चांदपोल बाजार जयपुर में राम फार्मेसी का सञ्चालन कर रहे हैं। आप दो वर्ष तक संस्कृत वाग्वर्धिनी परिषद् के प्रधान मन्त्री भी रह चुके हैं। आप उत्साही एवं कर्मठ स्नातक हैं।

वैद्य श्री नरहरि शास्त्री चतुर्वेदी

आप मानपुर (चौमू) ग्राम निवासी प० श्रीधरजी चतुर्वेदी ज्योतिर्विद के सुपुत्र है। आपने मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इस महाविद्यालय में प्रवेश किया और यहा अध्ययन कर साहित्यशास्त्री परीक्षा अच्छी श्रेणी मे उत्तीर्ण की। इसके साथ-साथ आपने विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य, कलकत्ता विश्वविद्यालय की काव्यतीर्थ तथा गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज जयपुर से भिषग्वर परीक्षा भी उत्तीर्ण की। आपने प्राय सभी परीक्षायें प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की है। अभी आपका अध्ययन जारी है। आप एक प्रतिभाशाली, मेधावी तथा कर्मठ व्यक्ति है। भविष्य आपका उज्ज्वल प्रतीत होता है।

श्री हरिनारायण आयुर्वेदाचार्य

आप बाल्यावस्था मे ही अक्षराभ्यास करने के बाद इस विद्यालय मे प्रधान-तया सकेत के अध्ययनार्थ प्रविष्ट हुए। आपने यहा अध्ययन कर व्याकरणमध्यमा के दो खण्ड तथा आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर सस्कृत कालेज मे आयुर्वेद विभाग में प्रविष्ट होकर भिषग्वर व आयुर्वेदाचार्य परीक्षाये पास कीं। तदनन्तर आपने रोहतक मे चिकित्साकार्य प्रारम्भ किया और दादू फार्मेसी नाम से एक फार्मेसी का सञ्चालन करना शुरू किया। तब से आज तक सफलता पूर्वक वहीं चिकित्साकार्य कर रहे हैं। आप मिलनसार, परिश्रमी व स्वावलम्बी व्यक्ति हैं।

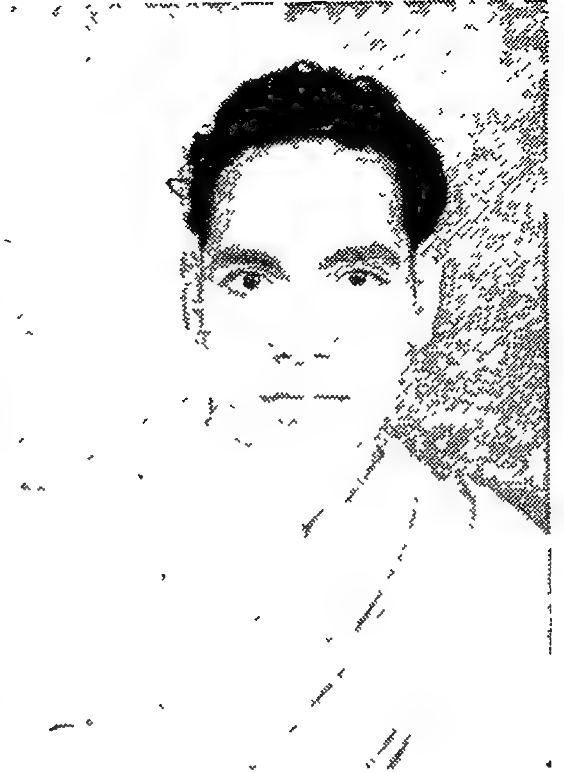
श्री शिवकुमार शास्त्री

आप जयपुर निवासी श्री श्रीरामजी के सुपुत्र है। आपने प्रारम्भिक शिक्षा-प्राप्ति के बाद इस विद्यालय मे प्रविष्ट होकर व्याकरणशास्त्री, आयुर्वेदशास्त्री परीक्षायें प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण कीं। आपने व्याकरणाचार्य दो खण्डो का तथा साहित्याचार्य के ग्रन्थों का इसी विद्यालय मे रह कर अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद-विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य परीक्षा भी उत्तीर्ण की। गृहस्थिति की कुछ कमजोरी से आगे परीक्षाक्रम छोडना पडा। कुछ वर्षों तक आपने राजकीय सस्कृत विद्यालयों में अध्यापनकार्य किया।

वर्तमान मे आप बगरू में राजकीय औषधालय मे कार्य कर रहे हैं। आप मेधावी, परिश्रमी व योग्य स्नातक है।



श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा
(पृष्ठ ३७)



श्री नरहरि शास्त्री चतुर्वेदी
(पृष्ठ ३८)



श्री गोपालदास स्वामी
(पृष्ठ ३६)



श्री शान्तिस्वरूप यति
(पृष्ठ ३६)

श्री गोविन्दनारायण आचार्य

आप जयपुर के रहने वाले हैं। इस विद्यालय में अध्ययन कर आपने व्याकरणशास्त्री तथा साहित्यशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके अतिरिक्त साहित्याचार्य के दो खण्ड उत्तीर्ण किये। बाद में गृहदशा की कमज़ोरी से परीक्षाक्रम छोड़ कर अध्यापनकार्य करना प्रारम्भ किया और तब से यही कार्य करते आ रहे हैं।

श्री गोपालदास स्वामी

आपने रतलाम निवासी थांभायती महन्त श्री आत्मारामजी से रामस्नेह सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की। प्रारम्भिक शिक्षा रतलाम में ही प्राप्त करके आप इस विद्यालय में प्रविष्ट हुए। यहां अध्ययन कर आपने व्याकरण प्रथमा व व्याकरण मध्यमा परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। बाद में आप डाक्टरी सहित आयुर्वेद के अध्ययन की इच्छा से इन्दौर चले गये और वर्तमान में वहां राजकुमारसिंह आयुर्वैदिक कालेज में आयुर्वेदाचार्य व B. I. M. S. द्वितीय वर्ष में पढ़ रहे हैं। आप एक होनहार युवक हैं।

श्री शान्तिस्वरूप यति

आप सिरसा जिला हिसार, पूर्वी पञ्जाब निवासी वैद्य श्री मोहनलालजी यति के सुपुत्र हैं। विद्यालय में प्रविष्ट होकर बनारस की प्रथमा व मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। अब आप भिषग्वर श्रेणी में प्रविष्ट होकर आयुर्वेद का अध्ययन कर रहे हैं।

वैद्य श्री गोविन्दप्रकाश

आप नारनौल निवासी सन्तवर महात्मा श्री गोपालदासजी द्वारा दीक्षित हुए हैं। आपने यहां पढ़ कर व्याकरण मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की है। बाद में आपने चिकित्सा क्षेत्र में प्रवेश किया और आजकल आप अपने स्थान पर ही अपने गुरुजी की सेवा करते हुये चिकित्साकार्य कर रहे हैं।

उपर्युक्त परिचयों के अतिरिक्त जिन विद्यार्थियों ने विद्यालय से परीक्षा पास की हैं

उनकी

नामावली

प्रथमा

१ श्री जुहारदास
२ ,, चिमनदास
३ ,, महादेवदास
४ ,, श्रीराम
५ ,, नारायणदास
६ ,, सुरजनदास
७ ,, रामप्रताप रामस्नेही
८ ,, हरजीराम
९ ,, केशवानन्द
१० ,, किशनदास
११ ,, रामचन्द्र
१२ ,, डूंगराम
१३ ,, रामेश्वर
१४ ,, रामदयाल
१५ ,, चेतनदास
१६ ,, गोविन्दनारायण
१७ ,, हरिनारायण
१८ ,, हरिदयालु
१९ ,, नारायणदास
२० ,, सुखानन्द
२१ ,, महन्त मानदास
२२ ,, राधेश्याम मिश्र
२३ ,, पूर्णराम
२४ ,, गोपीनाथ शर्मा
२५ श्री केशवदत्त शर्मा
२६ ,, हरिनारायण शर्मा
२७ ,, भगदत्त शर्मा
२८ ,, जीवानन्द
२९ ,, गोविन्दनारायण शर्मा
३० ,, रामेश्वर शर्मा
३१ ,, रामचरण
३२ ,, वाचस्पति शर्मा
३३ ,, रामनारायण
३४ ,, भोलाराम
३५ ,, रामशंकर
३६ ,, मदनलाल गौड
३७ ,, रामेश्वर शर्मा
३८ ,, राधेश्याम दाधीच
३९ ,, रतनलाल शर्मा
४० ,, कन्हैयालाल चतुर्वेदी
४१ ,, अश्विनीकुमार शर्मा
४२ ,, बद्रीनारायण शर्मा
४३ ,, मोहनराम स्वामी
४४ ,, नारायण स्वामी
४५ ,, नृत्यगोपाल शर्मा
४६ ,, गजानन स्वामी
४७ ,, भक्तराम स्वामी
४८ ,, कलानाथ शर्मा



वैद्य श्री बल्लभ जोशी
(पृष्ठ १५)



श्री चेतनदास दादू ब्रह्मचारी



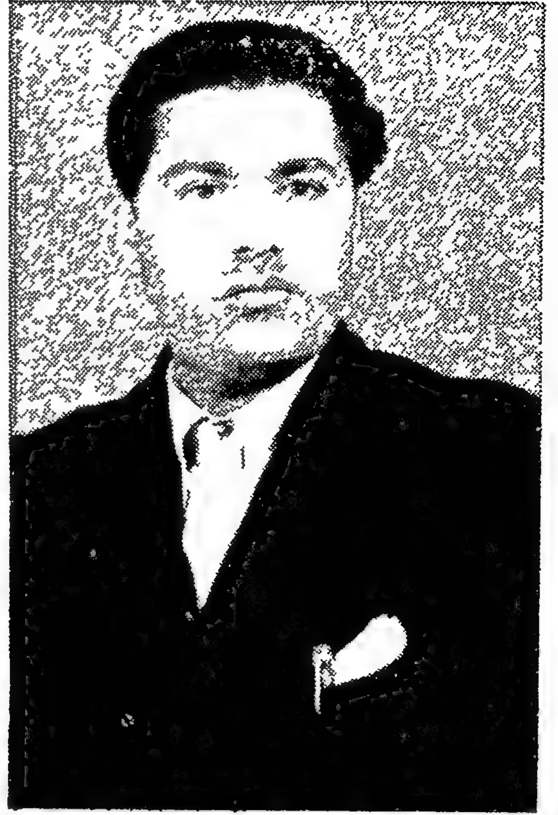
श्री सुरजनदास स्वामी आयुर्वेद विशारद



वैद्य मोतीराम स्वामी आ० विशारद



श्री माधवलाल शर्मा



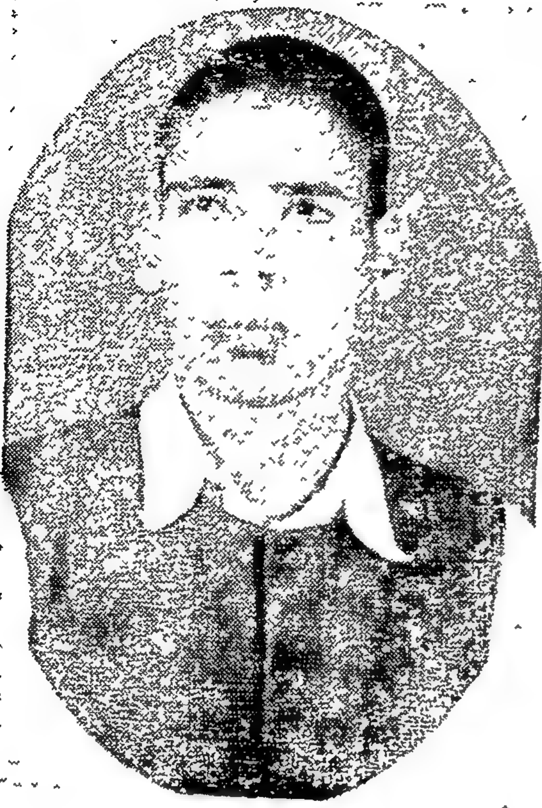
श्री वाचस्पति शर्मा



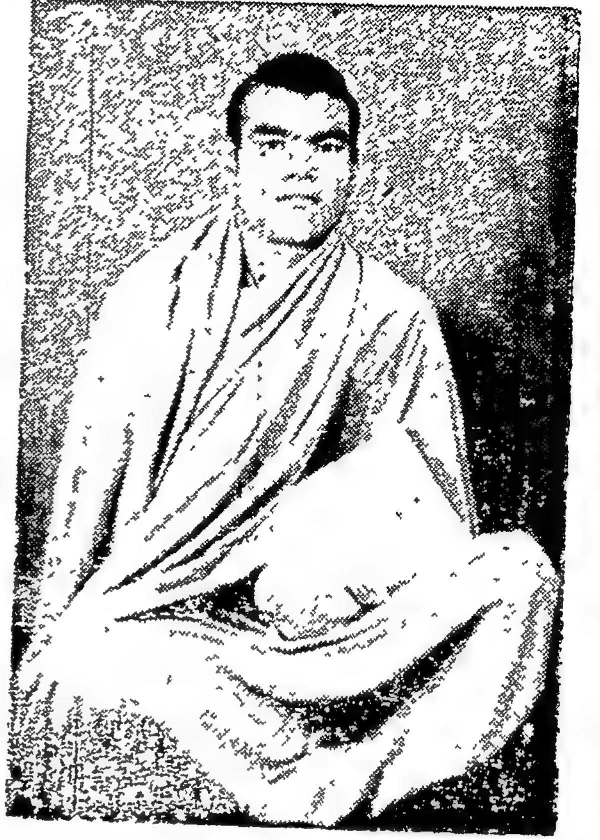
श्री जयरामदास भंडारी



श्री सुखानन्द, पाली



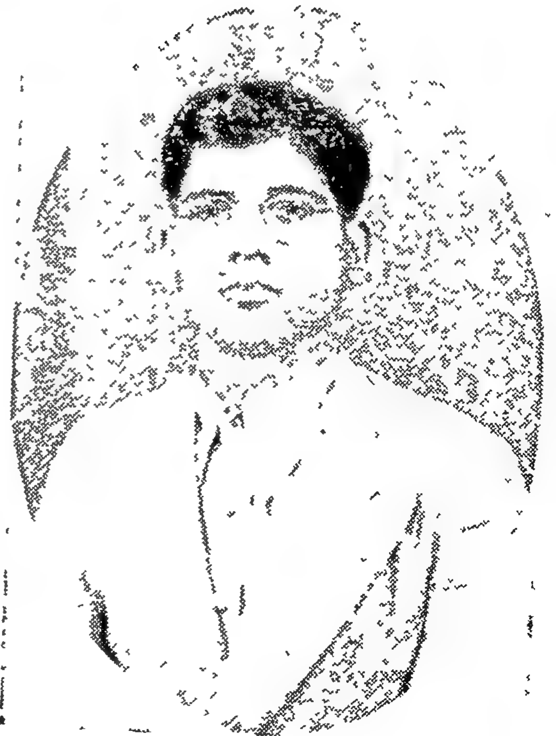
श्री दूधाराम स्वामी



श्री भजनानन्द स्वामी



श्री रंगराम रामस्नेही



श्री बनवारीदास स्वामी

४६ श्री श्रीप्रकाश शर्मा
५० ,, तुलसीदास स्वामी
५१ ,, पांचूराम
५२ ,, जगदीश शर्मा
५३ ,, दिनेशचन्द्र शर्मा
५४ ,, जयरामदास स्वामी
५५ ,, मदनदास स्वामी
५६ ,, रामपाल स्वामी
५७ ,, जवाहरदास स्वामी
५८ ,, बनवारीलाल
५६ ,, विष्णुप्रकाश
६० श्री दयालदास
६१ ,, विद्याधर स्वामी
६२ ,, ऋषिराम शर्मा
६३ ,, गोविन्दराम स्वामी
६४ ,, उदयराम स्वामी
६५ ,, रामसुखदास स्वामी
६६ ,, नृसिंहदास
६७ ,, रामदास
६८ ,, रामेश्वर
६६ ,, रामदयाल

उपाध्याय मध्यमा

१ श्री मनसाराम स्वामी
२ " दयालचन्द्र
३ " रामरतन
४ " गोविन्दप्रकाश
५ " श्यामसुन्दर
६ " ओंकारलाल शर्मा
७ " पूर्णानन्द
८ श्री चिरञ्जीलाल
६ " सुरजनदास खंडेला
१० " हरिप्रसाद स्वामी
११ " राधेश्याम शर्मा
१२ " माधवलाल शर्मा
१३ " गोकुलेन्द्र शर्मा
१४ " रंगराम

विशारद

१ श्री माधवसिंह शास्त्री
२ ,, सुरजनदास स्वामी
३ ,, नारायणसहाय शर्मा
४ ,, द्वारिकाप्रसादशर्मा
५ श्री मोतीराम स्वामी
६ ,, हरिशंकर
७ ,, शीतलदाश स्वामी
८ ,, चेतनदास

शास्त्री

१ श्री नारायण शर्मा

बाबाजी महाराज श्री सेवादासजी की प्रेरणा से
सहायता प्रदान करने वाले गृहस्थ सज्जनों की
नामावली

४३२०१) श्री बिड़लापरिवार
६७७६) श्री सूरजमलजी मोहता राजगढ़
५१०१) श्री घनश्यामदासजी लोयलका पिलानी
१३५०) श्री मालचन्दजी मन्त्री चूरू
३०००) श्री नृसिंहदासजी कोठारी बीकानेर
१६००) श्री भागीरथमलजी कानोडिया मुकुन्दगढ
१०००) श्री मुरलीधरजी हीरालालजी चिड़ावा
१०००) श्री दुर्गाबाई गोदावरीबाई बाजोरिया
१००१) श्री बालावक्सजी बिड़ला, नवलगढ
१०८१) श्री रामकुमारजी बिड़ला, पिलानी
१०००) श्रीमती नारायणदेवी जालान
४८००) गुप्तदानी सज्जनों द्वारा
१०००) श्री कमलाप्रसादजी डालमिया
१०००) श्री गजाधरजी ब्रजलालजी
२६०४) श्री गुप्तदानी सज्जनो द्वारा
६००) श्रीमती चोखली दादी, झुन्झनू
१०१) श्री प्रह्लादरायजी मुरारका, नवलगढ
११५) श्री मोतीलालजी चियाणी
४५०) श्री आत्मारामजी पाडिया, पिलानी
१६२) श्री श्यामसुन्दरजी पाटोदिया नवलगढ
१००) श्रीमती शान्तिदेवी, राजगढ
१००) श्री मूलचन्दजी, बगडिया
७५०) श्री भगवानदासजी बशीधरजी
५०१) श्री रामकुमारजी चोखानी
४००) श्री महावीरजी सिंघी

३००) श्रीमती जयदेवी की मांवसी
३००) श्रीसुमेरुमलजी की माजी
५००) श्री फूलचन्दजी टीकमाणी
२००) श्री शिवनारायणजी मरोलिया, पिलानी
१०१) श्री विश्वनाथजी, पिलानी
१०१) श्री मदनलालजी, राजगढ़
१००) श्री ज्वालादत्तजी मण्डेलिया
१००) श्री फूलचन्दजी जालान
१००) श्री केदारबक्सजी की बाई बिश्नी देवी
१००) श्री घनश्यामदासजी की माजी
१००) श्री रामकुमारजी जालान
१००) श्री दुर्गादत्तजी जालान
१००) श्री गोकुलचन्दजी की माजी
१००) श्री बनारसी देवी
४०) श्री रामकुमारजी पाटोदिया, नवलगढ़
२१) श्री जुगलकिशोरजी काशीरामका पिलानी

८१४६४)

साधुओं से प्राप्त होनेवाली सहायता का विवरण

१०३५६।।) जमात उदयपुर और सवाई माधोपुर
३२३०) जमात निवाई
३७६०।=)।। जमात लालसोट
५१८६।।।≡)। जमात चानसेन, महावीर, मोरड़ा
६६२५६।।।–)। उतराधा, खालसा, विरक्त, तपस्वी
३१६३।।।) इतर सम्प्रदाय से प्राप्त
१३६०५।)। इतर गृहस्थ सज्जनों से प्राप्त

१०५८६५।।=)।



उपासना

(ले० महन्त श्री रामानन्द स्वामी आयुर्वेदाचार्य, वेदान्तशास्त्री)

जहाँ आधिदैविक व आधिभौतिक कर्म का अथवा ज्ञान व कर्म का समुच्चय (मिश्रण) हो उसे उपासना कहते हैं। इस समुच्चय में एक वस्तु दूसरे की भक्ति (अङ्ग) बनती है अतः इसे भक्ति भी कहते हैं।

आधिभौतिक वस्तु में बाह्य दृष्टि रखकर उसके द्वारा दूरस्थ आधिदैविक वस्तु में मन लगाना या चिन्तन करना, अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा परोक्ष अर्थ का ज्ञान कर उसमें वृत्ति लगाना उपासना या भक्ति कहलाती है। यहाँ आधिभौतिक प्रत्यक्ष वस्तु की सहायता से या उस माध्यम से आधिदैविक परोक्ष वस्तु पर पहुंचा जाता है, अतः आधिभौतिक व आधिदैविक दोनों का समुच्चय है, और इसी तरह अमूर्त व निराकार उद्देश्य की प्रतिनिधिरूप मूर्त व साकार वस्तु स्थापित कर उसकी पूजा आदि क्रिया करनी पड़ती है, तथा तद्द्वारा परोक्ष अविज्ञेय निराकार लक्ष्य का मन द्वारा चिन्तन करना ज्ञान है। इस तरह उपासना में ज्ञान व कर्म का समुच्चय भी होता ही है।

ब्रह्म, परमात्मा, आत्मतत्व व आधिदैविक दूरस्थ पदार्थ सभी विज्ञान द्वारा ही जाने जाते हैं किन्तु जो मनुष्य विज्ञान में असमर्थ हैं वे उस वस्तु को आसानी से जानने के लिए आधिभौतिक वस्तु का सहारा लेते हैं और उस आधिभौतिक वस्तु द्वारा उस परोक्ष आधिदैविक वस्तु का ज्ञान करते हैं। जैसे शून्यबिन्दु सर्वथा निराकार अदृश्य व अज्ञेय है अतः उसके ज्ञान के लिये लोक में एक गोलाकार पिण्डबिन्दु की कल्पना की जाती है और उस पिण्डबिन्दु के द्वारा हम वास्तविक शून्यबिन्दु का ज्ञान करते हैं। जैसे—स्वर, व्यंजनरूप सभी वागक्षर निराकार हैं, किन्तु हम निराकार वागक्षर का ज्ञान क, च, ट, त इत्यादि साकार लिपि द्वारा करते हैं। इसी तरह निर्गुण ब्रह्म या आत्मतत्व भी सर्वथा निराकार व निर्गुण है। उसके ज्ञान के लिये हम साकार शालग्राम की मूर्ति आदि का सहारा लेते हैं और उसके द्वारा हम वास्तविक निराकार तत्व पर पहुंचते हैं। यही मार्ग या उपाय उपासना या भक्ति शब्द से शास्त्रों में व्यवहृत हुआ है।

इस उपासना मे प्रधानतया तीन तत्वों की आवश्यकता होती है और वे तीन तत्व हैं —१—उपासक, २—प्रथमोपास्य, व ३—परमोपास्य ।

१—जो प्रत्यक्ष अर्थ की दृष्टि से देखता हुआ परोक्ष लक्ष्य की मन द्वारा भावना करता है वह उपासक कहलाता है ।

२—जिस प्रतिनिधिरूप प्रत्यक्ष अर्थ के दर्शन द्वारा उपासक उद्देश्यभूत परोक्ष अर्थ की भावना करता है वह प्रथमोपास्य कहलाता है ।

३—और इस प्रथमोपास्य के द्वारा जिस उद्देश्यभूत परोक्ष अर्थ की भावना की जाती है वह मन द्वारा भाव्यमान चरम लक्ष्य परमोपास्य कहलाता है । जैसे एकलव्य ने मृण्मयी मूर्ति बनाकर आचार्य द्रोण की उपासना की । इसमे एकलव्य उपासक, मृण्मयी द्रोणमूर्ति प्रथमोपास्य तथा वास्तविक द्रोण परमोपास्य है । इसी तरह जहा पिता बालक को मिट्टी के हाथी या घोडे द्वारा वास्तविक हाथी या घोडे का ज्ञान कराता है वहाँ बालक उपासक, मृण्मय हाथी या घोडा प्रथमोपास्य तथा वास्तविक हाथी व घोडा परमोपास्य है । इसी तरह गोलाकार पिण्डबिन्दुद्वारा जहा शून्यबिन्दु का ज्ञान किया जाता है वहाँ ज्ञानकर्ता पुरुष उपासक, पिण्डबिन्दु प्रथमोपास्य तथा वास्तविक शून्यबिन्दु परमोपास्य है ।

इस उपासना के प्रधानतया चार भेद है । १–प्रतीकोपासना, २–प्रतिरूपोपासना ३–भावोपासना, और ४–निदानोपासना । क्योंकि उपासना मे उपासक माध्यमिक प्रथमोपास्य के द्वारा लक्ष्यभूत परमोपास्य पर पहुचता है इसलिये इसमे माध्यमिक प्रथमोपास्य की प्रधानता है और यह माध्यमिक प्रथमोपास्य चार प्रकार का होता है अत उसके भेद से उपासना भी चतुर्धा विभक्त हो जाती है । इनमे सर्वप्रथम प्रतीकोपासना को ही उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं ।

१—प्रतीकोपासना

एकदेश या एक अङ्ग का नाम प्रतीक है । इस एकदेश के द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का जहा ग्रहण किया जाता है उसे प्रतीकोपासना कहा जाता है । जैसे, यदि बच्चा पिता की अगुलि पकडता है तो लोक में पिता को पकड रक्खा है ऐसा व्यवहार होता है गायके अङ्गभूत पूछ को छूने से गायके छूने का व्यवहार होता है । उपर्युक्त उदाहरणों मे अङ्ग द्वारा अङ्गी का जो बोध हुआ है वह प्रतीकोपासना है । इसी तरह ससार के यावत् पदार्थ तथा देवी, देवता, भूत, प्रेत आदि सब परमेश्वर या परब्रह्म

के अङ्ग हैं। इन इन्द्र, मित्र आदि अङ्गों के माध्यम द्वारा परमेश्वर की उपासना करना प्रतीकोपासना है :—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ॥
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यः तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः ॥
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

इत्यादि ऋग्वेद मन्त्र प्रतीकोपासना के सुन्दर उदाहरण हैं। उपर्युक्त मन्त्रों में एकत्व अङ्गी की तथा अनेकत्व प्रतीक की अपेक्षा से है।

'सर्वाभेदादन्यत्रेमे' इस सूत्र में भगवान् व्यासने इसी रहस्य को व्यक्त किया है। ब्रह्मसूत्र के चतुर्थ पाद में वर्णित 'नाम ब्रह्मेत्युपासीत' 'आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत' इत्यादि उपासनायें प्रतीकोपासना ही हैं।

२— प्रतिरूपप्रतिमोपासना :—

चित्र व प्रतिमा आदि प्रतिकृति को प्रतिरूप कहते हैं। किसी वस्तु का कोई चित्र या प्रतिकृति बनाकर उस माध्यमके द्वारा वास्तविक लक्ष्य पर पहुंचना प्रतिरूप-प्रतिमोपासना कहलाती है। जैसे मृण्मय गज व अश्व बनाकर उसके द्वारा वास्तविक गज व अश्व का मालूम करना।

उपासक लोग उपास्य हिरण्यगर्भ ईश्वर को इसी रूप से प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। अधिदैवत में हिरण्यगर्भ ईश्वर, आपोमय परमेष्ठी लोक में विद्यमान चौतरफ नीलाकार आपोमण्डल से परिवेष्टित तेजोमय सूर्यज्योतिर्गर्भित विष्णु है। इसी हिरण्यगर्भात्मक विष्णु से समस्त चराचरात्मक जगत् का निर्माण होता है जिसका निरूपण निम्न श्रुति में है :—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

वह हिरण्यगर्भ अण्डे के समान वर्तुल आकार वाला है जिसका कि स्पष्टी-करण निम्नलिखित गीता श्लोकों से हो रहा है :—

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

कालिदास का प्रेमनिरूपण

(ले० श्री हरिराम स्वामी काव्यतीर्थ)

महाकवि कालिदास जिस तरह सजीव चरित्रचित्रण, मार्मिक प्रकृतिचित्रण, रसपरिपाकोपयुक्त अलङ्कारनिरूपण, सहृदयहृदयोल्लासक रसपरिपाक, एव वैदर्भी रीतिके विन्यास मे अद्वितीय हैं, उसी प्रकार प्रेमपद्धति मे भी। उनकी प्रेम-पद्धति निराले पन को लिए हुए हैं। उनने अपनी प्रेम-पद्धति मे भारतीय-सस्कृति का पूर्णतया निर्वाह किया है। उनके उच्छृङ्खल प्रेमनिरूपण मे भी भारतीय-सस्कृति का अतिक्रमण नहीं हुआ है। अपितु उस प्रेम ने विशुद्ध बनकर अपना वास्तविक-स्वरूप प्राप्त किया है। अत यहा हमे इसी विषय का कुछ दिग्दर्शन कराना है।—

शृङ्गार रसराज है। सस्कृतके प्राय सभी कवियोंने इसका निरूपण किया है। प्रेम शृङ्गार की मुख्य वस्तु है। अत सभी शृङ्गार का वर्णन करने वाले कवियों ने प्रेम का चित्रण भी अपने काव्यों मे किया है। प्रेम का चित्रण करते हुए उनने भारतीय-सस्कृति का सर्वथा लोप किया हो यह बात भी नहीं। किन्तु भारतीय-सस्कृति व प्रेमका जो निखरा हुआ विशुद्ध-स्वरूप हमे महाकवि कालिदास की कृतियों मे दृष्टिगोचर होता है, वह अन्यत्र नहीं।

कालिदास जैसे चतुर चित्रकार की कलापूर्ण तूलिका का आश्रय पाकर जिस प्रकार अन्य वस्तुओंने दिव्य तथा अलौकिक रूप धारण किया है, उसी तरह प्रेमने भी अपने लौकिक-वासनामय व रजस्तमोमय-विकृतिके आवरणको हटाकर सत्त्वमय दिव्यरूप प्राप्त किया है। कालिदास की कृतियों मे प्रेम का स्वरूप अग्निसतप्त सुवर्ण की तरह विरहाग्नि से सतप्त होकर देदीप्यमान तेजोमय बनगया है। उसने भौतिक आवरण हटाकर दिव्यरूप धारण कर लिया है।

उदाहरण के लिये आप कालिदास के किसी भी काव्य को लीजिये। सर्वप्रथम कुमारसभव को ही लेते हैं। इस महाकाव्य मे कविने शिव और पार्वती के प्रेमका वर्णन किया है प्रारम्भ मे कवि पार्वती के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन कर शिवके प्रति उसके लौकिक प्रेमका वर्णन करता है। और इतर लौकिक-प्रेमियोंकी तरह पार्वती अपने सौन्दर्य व लौकिक-प्रेम द्वारा ही शिवको वशमे करनेका प्रयास करती है।

"अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम्।
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवार वसन्तपुष्पाभरण वहन्ती॥

आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम् ।
पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव ॥
स्रस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनः पुनः केसरदामकाञ्चीम् ।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण मौर्वीं द्वितीयामिव कार्मुकस्य ॥ इति

उपर्युक्त इन पद्यों से यह स्पष्ट है कि उसने किस तरह अपने आपको सजाया था। और इस तरह बसन्त-कालिक पुष्पों के आभरणों से अलंकृत अनवद्य अङ्गवाली वह पार्वती अपने सौन्दर्य से रतिको भी लज्जित कर रही थी। यद्यपि वह प्रतिदिन शिवकी पूजा करने जाया करती थी, फिरभी इतनी सुसज्जित होकर इसीलिये जाती थी कि इस तरह स्वलंकृत, अनुपम सौन्दर्य देखकर महादेवजी उसपर रीझ जायेंगे। और उसका मनोरथ सफल होजायगा। इस प्रकार शृङ्गारयुक्त होकर आना उसके वासनामय प्रेमकी ही अभिव्यक्ति कर रहा है। अन्यथा दिव्य अलौकिक प्रेममें उपर्युक्त शृङ्गार की आवश्यकता कहां। किन्तु भारतीय-संस्कृति के अनन्य उपासक दिव्य प्रेमके परमपुजारी कालिदास इस वासनामय प्रेम को तुच्छ समझते हैं। वे उस प्रेमसे उस अभीष्ट उच्च फलकी प्राप्ति कराना नहीं चाहते जिसको पार्वती चाहती है। कालिदास उसको दिव्य अकृत्रिम अलौकिक प्रेम में परिणत करना चाहता है, और चाहता है उसी दिव्य प्रेमसे उसके मनोरथ की पूर्ति। इसलिये वह काम-दहन तथा तपस्याविघ्नरूप पार्वती के संसर्गवाले स्थान का शिवसे परित्याग द्वारा उस वासनामय प्रेमकी निरर्थकता व तुच्छता सिद्ध करना चाहता है। इस भावकी अभिव्यक्ति कविके निम्नपद्यों से स्पष्ट होजाती है।—

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥
इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥ इति

इन पद्यों में कविने स्पष्ट कर दिया है कि कामदहन द्वारा पार्वती को ज्ञात होगया कि केवल भौतिक सौन्दर्य तथा वासनामय प्रेमसे वह अद्वितीय शिवका प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता। इसके लिये तपस्या तथा विरह के द्वारा वासनाओं को जलाकर आत्मशुद्धि आवश्यक है। उसीसे उस अलौकिक अभीष्ट वरकी प्राप्ति होसकती है। कविने केवल अपने ही मुखसे इस बातको नहीं कहा अपितु उसकी सखीके मुखसे भी इस वातको कहलवाया है। जैसे—

सचित व आगामी सभी कार्यों को नष्ट कर देती है। उसी तरह विरहाग्नि प्रेममे से रजस्तम सपर्कजनित सकलकामनाओं व दूषितवासनाओं को नष्टकर उस प्रेमको सात्त्विक बनादेती है। श्रीमद्भागवत मे भी 'दु सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभा। तथा 'तदप्राप्तिमहादु खविलीनाशेषपातका' इत्यादि वचनों से विरह द्वारा सकल अशुभों की निवृत्ति बतलाई है।

भगवान् कृष्णने भी अपने वियोगदु खद्वारा गोपियों के प्रेमसे इस काममयी व सौन्दर्यमयी वासना को दग्धकर उनके प्रेमको दिव्य व सात्त्विक बनाया था। कविवर कालिदासने भी यही कार्य किया है।

पहले जैसे वर्षा ऋतुमे वहनेवाली नदीके जलप्रवाह मे तीव्रता मर्यादोल्लघिता व आविलता रहती है, उसी प्रकार दुष्यन्त व शकुन्तला के प्रेममे भी कामकी तीव्रता, वासनाओं की आविलता तथा गुरुजनोपेक्षारूपी मर्यादोल्लाघिता थी। किन्तु वर्षाके बीतजाने पर जैसे नदीप्रवाहमे मन्दता, गम्भीरता, स्वच्छता, प्रसन्नता, व रमणीयता आजाती है, और तदन्तर्वर्ती प्रत्येक वस्तुकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होजाती है, उसी प्रकार दुष्यन्त व शकुन्तला के प्रेममे भी वियोगानन्तर पुनर्मिलन के बाद शान्तता, गम्भीरता, आदर्शता आजाती है। और वे दोनों ही भारतीयसस्कृतिकी मर्यादा, तथा गुरुजनों के आदेश का पालन करते हैं। उस समय उनके अन्त करणमें अपने पूर्वकालमे कृत अपराध व अन्य कर्तव्यों की स्पष्ट प्रतीति होजाती है। इस समय पहले की तरह शकुन्तला प्रत्याख्यान को पतिका दोष कहकर भारतीय नारीसस्कृतिकी मर्यादा को भग नहीं करती है। अपितु भारतीय नारीकी तरह पति के दोषको भी अपना ही पूर्वजन्मकृत दुष्कृत मानती है। जैसाकि निम्नाङ्कित उक्ति से स्पष्ट है —

नून मे सुचरितप्रतिबन्धक पुराकृत तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीद् येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरस सवृत्त इति ॥

कालिदासने केवल शकुन्तला नाटक मे ही नहीं, अपितु अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रघुवश में भी भारतीय नारीके इस आदर्श को उपस्थित किया है। वहा पर राम के द्वारा अपने निष्कारण परित्याग द्वारा दु खावेश मे सीताके द्वारा रामके प्रति उपालम्भपूर्ण शब्दों का कथन कवि करवाता है, जैसे—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मा लोकवादश्रवणादहासी श्रुतस्य किं तत्सदृश कुलस्य।

किन्तु इसके बादही वह भारतीय नारीके उस दिव्य आदर्श का उपस्थान करता है जो भारतीय संस्कृति व भारतदेश को छोड़कर अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता। सीता राम से कहती है :—

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥

अर्थात् आप (राम) सीता मेरे प्रति सदा हितबुद्धि रखने वाले हैं अतः आपने मेरा परित्याग स्वेच्छा से नहीं किया है। किन्तु इस समय निरपराध होने पर भी जो मेरा परित्याग आपने किया है उसमें आप कारण नहीं है किन्तु मेरे ही जन्मान्तर के पाप का यह परिणाम है।

अस्तु प्रसङ्गागत इस बातको यहीं समाप्त कर हम प्रकृत की तरफ आते हैं।

वस्तुतः प्रेम एक अत्यन्त पवित्र-विशुद्ध तथा व्यापक वस्तु है। भाव, भक्ति, श्रद्धा, वात्सल्य रति आदि सब इसीके स्वरूप हैं। केवल सम्बन्धभेदसे व प्रतियोगी तथा अनुयोगी के भेदसे यह नाना रूपों को धारण कर लेता है। निरतिशयानन्द भी इसीका स्वरूप है। अतः इसकी व्यापकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। किन्तु आवश्यकता केवल इसकी विशुद्धता व व्यापकता की है। कालिदास की मेघदूत आदि अन्य कृतियों में भी प्रेम की यही पद्धति दृष्टिगोचर होती है। हमने केवल उसकी दो कृतियों के उदाहरण द्वारा इस तथ्य का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया। इसके औचित्यानौचित्यका निर्णय पाठक करेंगे।

योगविभूतिशब्दार्थविवेचनम्

(ले० सुरजनदासः स्वामी)

इहाद्य खलु वर्तते समीक्षाविषय. 'एता विभूति योग च मम यो वेत्ति तत्त्वत' इति गीताशास्त्रे योगविभूतिशब्दार्थ प्रधानत । पर तत्प्रसङ्गात् गीताया तत्तत्स्थलेषु प्रयुज्यमान सार्वत्रिक योगशब्दोऽपि समीक्षाकोटिमारोहति ।

इह तावद्विचारणीयम् यद्यपि युजिर् योगे युज् समाधी इत्यादिधातुभिर्घञ्प्रत्ययेन निष्पन्नो योगशब्द ध्यानोपायसंगत्याद्यनेकार्थक, प्रतिपादितश्च कोशकृताऽपि 'योग सहननोपायध्यानसगतियुक्तिषु' इत्युक्तयताऽनेकार्थता तस्य, तथापि गीताया—

योगस्थ कुरु कर्माणि सग त्यक्त्वा धनजय ॥

तस्माद् योगाय युज्यस्व, योग कर्मसु कौशलम् ॥

इम विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥

योगी यु जीत सततमात्मान रहसि स्थित ॥

एता विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वत' ॥

इत्यादिषु वहुषु स्थलेषु प्रयुक्तो योगशब्द सर्वत्र समानार्थक उत विभिन्नार्थक । विभिन्नार्थकश्चेत् कुत्र कुत्र कोऽर्थो ग्राह्यो योगशब्देनेति ।

एतस्या तु मीमासायामिदमेव प्रतिभाति यत् गीताया बहुत्र प्रयुज्यमानो योग-शब्द विभिन्नार्थक एव न समानार्थक । सर्वत्र समानार्थकतामादाय गीतावाक्याना अर्थस्य सामजस्यानुपपत्ते ।

तथाहि 'योगस्थ कुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा धनजय' इत्यत्र योगशब्दार्थ "सिद्ध्यसिद्धी च समत्वबुद्धि" । स्पष्टीकृतश्चैषोऽर्थो भगवता स्वयमेव अस्य श्लोक-स्यान्ते 'समत्व योग उच्यते' इत्यनेन वाक्येन । व्याख्यातश्चैवमेव भगवता शङ्करपादेनापि ।

इम विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम् (चतुर्थ अ०)

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोगे त्विमा शृणु (द्वितीय अ०)

सन्यास कर्मणा कृष्ण पुनर्योग च शससि (पञ्चम अ०)

इत्यादिषु योगशब्देन स कर्मयोगोऽभिप्रेत यत्र फलासक्तिकामनापरित्याग-पूर्वक कर्मणा कर्तव्यत्वमुपदिश्यते एतादृशे कर्मयोगे कर्मणि बुद्धे समुच्चयो वर्तते । कर्मसु बुद्धियोगेनैव फलाना आसक्ते कामनाना च परित्यागो विधीयते कर्मकर्त्रा ।

एष एव च कर्मयोगो कर्मणि बुद्धेर्योगात् बुद्धियोगशब्देनापि व्यपदिश्यते। प्रयुक्तश्च एतदर्थं भगवता बहुत्र बुद्धियोगशब्दः, यथा 'बुद्धियोगाद् धनंजय' ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव' इत्यादिषु।

एतादृशस्यैव कर्मयोगस्य अर्जुनायोपदेशं विदधता भगवता तस्य परपदप्रापकत्वमपि प्रतिपादितम् 'असक्तः कुरु कर्माणि, संगं त्यक्त्वा धनंजय।

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः' इति पद्ये न।

अस्यैव च योगस्य कर्मसंन्यासापेक्षया वैशिष्ट्यं, अपि च ज्ञानाद्यपेक्षयाऽपि ज्यायस्त्वं प्रतिपादितं भगवता निम्नाङ्कितवचनाभ्याम्।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन॥ इति

एष च बुद्धियोगापरपर्यायः कर्मयोगो केवलकर्मयोगाद् भिन्नः, अत एवास्य कर्मिणोऽप्येपक्षया आधिक्य प्रतिपादितमुपर्युक्ते वचने। गीतायामाद्ये अध्यायषट्के अयमेव बुद्धियोगापरपर्यायः कर्मयोगः प्रधानतया उपदिष्टो भगवता अर्जुनायेति ध्येयम्।

परं गीतायाः षष्ठेऽध्याये "योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः" इत्यादिभिर्वचनैर्यस्य योगस्य प्रतिपादनं विहितं स योगो न बुद्धियोगापरपर्यायः कर्मयोगः अपि तु तत्साधनोपायः चित्तनिरोधापरपर्यायो योगः वर्तते यस्य प्रतिपादनं भगवता अस्मिन्नध्याये 'योगी युंजीत सततमित्यत आरभ्य 'युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा' इत्यन्तेन 'संकल्पप्रभवान् कामान्' इत्यारभ्य 'युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः' इत्यन्तेन च सन्दर्भेण विहितम्।

एतावत्पर्यन्तं निरूपितः गीतायां तत्तत्स्थलेषु योगशब्दस्यार्थः। साम्प्रतं गीतायां दशमेऽध्याये 'एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः' इति पद्ये प्रयुक्तस्य योगशब्दस्य कोऽर्थः इति तावद्विचार्यते। यद्यपि युजिर् योगे इति धातुना निष्पन्नस्य योगशब्दस्य सम्बन्ध एवार्थः प्रतिभाति संगच्छते चापि एषोऽर्थः। अतः नास्त्यस्य जिज्ञास्यत्वम् इत्यापाततः प्रतिभाति। तथापि सूक्ष्मेक्षिकयाऽऽलोच्यमाने कोऽसौ सम्बन्धविशेषो भगवतः सर्वप्राणिषु वर्तते यस्यात्र योगशब्देन निरूपणं विहितं, इत्येवंरूपेण सम्बन्धविशेषमादाय भवति प्रेक्षावतां समीक्ष्यविषयोऽयं योगशब्दः। एव विभूति-

शब्दोऽपि व्युपसर्गकात् भूधातो क्तिनि निष्पन्न विविधाभवनरूपे ऐश्वर्यादिरूपेऽर्थे च वर्तते, तथापि सोऽर्थो नात्र सामञ्जस्यमर्हति इति सोऽपि समापतति जिज्ञासाविषयताम्, इति तयो शब्दयोरर्थविचार इदानीं प्रस्तूयते ।

द्विविधो हि खलु दहरोत्तरयोर्भावयो संसर्गो भवति, योगो विभूतिश्च । उत्तरस्माद् भावात्प्रवृत्तांशस्य यो दहरेऽनुग्रह स योग । अप्रवृत्तस्य च उत्तरस्य (उत्कृष्टस्य, महत) यो दहरेऽनुग्रह स विभूति । अन्त सम्बन्धो योग , बहि सम्बन्धो विभूति । स्वरूपधर्मो योग , आश्रितधर्मो विभूति । यथा तुषारस्यागलितस्य जले प्रवेशो विभूति । गलितस्य च तुषारस्य जले सम्बन्धो योग । जलस्य द्रवीकरणे योऽग्ने सम्बन्ध जले स योग । यतोऽत्र अग्नि स्वरूपाद् प्रवृज्य जलस्य स्वरूप धत्ते । द्रुते जले च यस्तापजनक अग्ने सयोग स विभूति । यतोऽत्र उष्मतापादक अग्निर्न जलस्य स्वरूपतामायाति अपि तु स्वविभूत्या जलमनुगृह्णाति अर्थात् जले अग्निराश्रितो भवति ।

एवमेव तण्डुलस्योदनभावनिर्माणे य अपा सम्बन्ध स योग । तत्र हि जल जलस्वरूपात्प्रवृज्य तण्डुले प्रविष्ट ओदनस्वरूपता धत्ते । तस्य च ओदने, आर्द्रे तण्डुले च योऽपा सम्बन्ध स विभूति । न हि तत्र जलस्य आन्तर स्वरूपनिर्मापक सम्बन्ध अपितु बाह्यक आगन्तुक । जलमत्र तण्डुलस्याश्रितो धर्मो भवति न तु स्वरूपधर्म ।

एवमेव अव्ययस्य ब्रह्मणोऽपि सर्वेषु भावेषु द्विविध सम्बन्धो भवति । योगो विभूतिश्च । अव्ययस्य यो भावोऽव्ययात् प्रवृत्तो भूत्वा दहरवस्तुषु संयुज्य तद्वस्तुस्वरूपनिर्मापको भवति स आन्तर वस्तुस्वरूपनिर्मापक सम्बन्ध. योगशब्दवाच्य । यत्र अव्ययस्य सम्बन्ध न दहरवस्तुन स्वरूपधर्मो भवति अपि तु स्वविभूत्या वस्तूनि व्याप्नोति वस्तुषु च आश्रिततया स्थितो भवति । एतादृश बहि. सम्बन्धो विभूतिशब्दव्यपदेश्यता भजते ।

भगवता स्वय गीताया स्वस्य (अव्ययस्य) दहरेषु लौकिकवस्तुषु द्विविधस्य सम्बन्धस्य स्पष्ट निरूपण विहित प्रत्तानि चानेकानि उदाहरणानि । तेषु पूर्वं भगवतो योगसम्बन्धस्योदाहरणानि प्रस्तूयन्ते । यथा—

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोह क्षमा सत्य दम शम , सुख दु ख भवो भावो भय चाभयमेव च ।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दान यशोऽयश भवन्ति भावा भूताना मत्त एव पृथग्विधा ॥

बुद्ध्यादयो हि मानसा भावा अव्ययात्प्रवृज्य भूतेषु प्रविष्टा भूताना स्वरूपधर्मा

भवन्ति इत्येते भावाः अव्ययस्य भगवतो योगसम्बन्धस्योदाहरणतां भजन्ते ।

अत एव एतेषां समुपन्यासानन्तरं भगवता योगसम्बन्धस्य स्फुटीकरणाय 'भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः' इत्युक्त्या तेषां भावानां स्वस्मादव्ययात्मनः प्रवर्गोऽभिहितः, एतदर्थमेव च मत्त इत्यत्र विभागद्योतिका पञ्चमीविभक्तिरुपात्ता, उत्पत्त्यर्थकस्य च वतेः प्रयोगो विहितः । अग्रे च—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥१०।६।

इत्यस्मिन् पद्ये वशिष्ठागस्त्यादिषु सप्तसु महर्षिसु स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायुज-भेदभिन्नेषु स्वायंभुवरौचिषरैवतोत्तमभेदभिन्नेषु वा चतुर्विधेषु मनुषु वा स्वस्य योगः एव प्रोक्तः । एते हि आधिदैविका भावा अव्ययात्मनः प्रवृज्य (पृथग्भूत्वा) सकलां सृष्टिं सृजन्ति। सृज्यमानां वस्तूनानां स्वरूपधर्माश्च भवन्ति। एतेषु हि आधिदैविकेषु भावेषु अव्ययस्य योगसम्बन्ध इत्येतदर्थस्य स्फुटतायै 'जाताः' इत्यस्य प्रयोगो विहितः । अव्ययात्मनः प्रवृक्तेभ्य आधिदैविकेभ्य एभ्यो भावेभ्य एव सकलजगदुत्पत्तिः संजायते । अतएव भगवता मनुना—

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवदानवाः ।

देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ इत्युक्तम्

एवमेव—रसोऽहमप्सु कौन्तेय, प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु, शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

वीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥

वलं वलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ॥

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥७।८।११

इत्यत्र अप्सु रसरूपेण, शशिसूर्ययोः प्रभारूपेण ,वेदादिषु च प्रणवादिरूपेण अव्ययस्य योग एव । अवादिषु विद्यमानस्य रसादेः अवादीनां स्वरूपधर्मत्वात् । निरूपितन्तावदेवं योगसम्वन्धस्वरूपं समासतः सोदाहरणम् । विभूतिसम्वन्धस्ताव-त्साम्प्रतं निरूपणीयः—

विभूतिर्हि वहिर्याम सम्बन्ध, व्याप्तिरूप सम्बन्ध । यथा रक्तवस्त्रे रक्तत्वस्य सम्बन्ध सुधाचूर्णोपरञ्जितभित्तौ च श्वैत्यस्य सम्बन्ध विभूति । यथा वा वायौ गन्धस्य, धात्रीमुखच्छाया मधुन, जलदर्पणनेत्रादौ च प्रतिबिम्बस्य सम्बन्धो विभूति । एवमेव अव्ययात्मनो भगवतोऽपि सासारिकेषु आध्यात्मिकेषु आधिदैविकेषु च भावेषु विभूतिरूपो वहिर्यामसम्बन्धोऽपि वर्तते येन विभूतिसम्बन्धेन स सासारिकान् भावान् व्याप्नोति । स चाव्ययात्मा भगवान् क्वचित् साक्षादपि सासारिकान् भावान् व्याप्नोति क्वचिच्च स्वाशबहुलपदार्थद्वाराऽपि । यत्र साक्षात् व्याप्नोति तत्र स्वयमव्यय एव विभूति । यथा

'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित,
अहमादिश्च मध्य च भूतानामन्त एव च' ।

'अत्र सकलप्राणिनामन्त करणे वर्तमान प्रत्यगात्मा भूतानामादिमध्यान्तव्यापी च अव्यय एव विभूति । यत्र च स स्वाशबहुलप्रधानभावद्वारा भावान्तराणि व्याप्नोति तत्र अधिष्ठानाभिव्यापी प्रधानोऽधिष्ठाता विभूति । यथा 'आदित्यानामह विष्णुर्ज्योतिषा रविरशुमान्' इत्यादिषु आदित्याद्यधिष्ठानेस्वभिव्याप्तिशीलेन प्रधानेन विष्ण्वादिरूपेण अधिष्ठात्रा स आदित्यादीन् व्याप्नोति इति स प्रधानोऽधिष्ठाता विष्ण्वादिरेव विभूति ।

परमुभयत्रापि आश्रिताश्रययोर्भावयो सम्बन्धो वहिर्यामरूपेण आश्रितधर्मरूपेणैव वर्तते न स्वरूपधर्मेण । यथा 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित' इत्यत्र सर्वभूताशयस्थितोऽपि अव्ययात्मा सर्वभूताशयेषु आश्रितधर्मरूपेणैव वर्तते न तु स्वरूपधर्मेण । यथा च आदित्येषु विष्णुरूपेण भगवान् वर्तते, पर द्वादशविधेषु आदित्येषु वर्तमानो विष्णुराश्रितधर्म एव न स्वरूपधर्म । न हि विष्णु आदित्याना स्वरूप धत्ते, अपित्वादित्यादिषु आश्रयेषु स आश्रित-धर्म-विभूति रूपेण वर्तते ।

यथा वा 'इन्द्रियाणा मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना'। इत्यत्र इन्द्रियेषु मनस पृथिव्यादिषु च पञ्चसु भूतेषु चेतनाया सम्बन्धो विभूतिरेव । तत्र इन्द्रियेषु भूतेषु च मनसश्चेतनायाश्च व्याप्त्यात्मकेन आश्रितधर्मरूपेणैव वर्तमानत्वात्, नतु मन इन्द्रियाणा, चेतना भूताना वा कदापि स्वरूपधर्मो भवति, मनो विनापि इन्द्रियाणा, चेतनामन्तराऽपि च भूताना स्थितिदर्शनात् । स्वरूपधर्मत्वे तु स्वरूपधर्मस्योच्छेदेन वस्तुन एवोच्छेदप्रसङ्गात् । तस्मात् 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित' इत्यत आरभ्य

'यच्चापि सर्वभूतानां वीजं तदहमर्जुन' इत्यन्तं विभूतीनामुदाहरणानि वर्तन्ते। एषु सर्वेषु उदाहरणेषु साक्षात् परम्परया वा भगवतो विभूतिसम्बन्ध एव वर्तते।

इदं त्ववधेयमत्र यत् विभूतिसम्बन्धमादाय भगवान् भूतेषु येन येन रूपेण वर्तते तान्येव रूपाण्यत्र विभूतिशब्देनोक्तानि न विभूतिसम्बन्धमात्रम्, अत्रत्यप्रश्न-प्रतिवचनयोरवलोकनेन तथैव प्रतीतेः।

तथाहि भगवतः साक्षाद् रूपस्य सर्वथाऽव्यक्तत्वेन उपासितुमशक्यत्वात् अर्जुनेन भगवतो दिव्या विभूतय उपासनार्थं पृष्टाः।

नहि ते भगवान् व्यक्ति विदुर्देवा न दानवाः ॥
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ॥
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

इत्यनेन पद्यजातेन तासां विभूतीनां स्वरूपं पृष्टं याभिर्भगवान् लौकिकान् भावान् व्याप्य तिष्ठति। भगवताऽपि

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥

इत्यनेन पद्येन प्रधानविभूतीनां कथनं प्रतिज्ञाय 'अहमात्मा गुडाकेश' इत्यादिना तेषां भावानामेव वर्णनं विहितम् यैर्भावैः स भौतिकान् पदार्थान् व्याप्नोति।

तादृश एव विभूतिविषयकः परिप्रश्नः श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे उद्धवेन अनेनैव रूपेण भगवन्तं प्रति पृष्टः उपासनायैव। तथाहि—

येषु येषु च भावेषु भक्त्या तु परमर्षया। उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद् वदस्व मे ॥
याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूतेः ॥

ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि तं तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥

भगवता च गीतायामिव तत्रोद्धवाय 'अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥' इत्यादिना तेषां भावानामेव निरूपणं विहितम् । यैः स सांसारिकान् भावान् व्याप्य वर्तते ।

एवं समासतो निरूपितौ 'एतां विभूतिं योगं च ' ' ' 'इति पद्ये प्रयुक्तौ योगविभूतिशब्दौ । एतयोरेव योगविभूत्योर्निरूपणं ईशावास्योपनिषदि

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥ इति मन्त्रेण विहितम् । अत्र मन्त्रे पूर्वार्धेन सर्वस्मिन् जगति व्याप्तस्य भगवतो विभूतिसम्बन्धस्य निरूपणं विहितम् । भगवान् हि विभूत्या सर्वत्र व्याप्तः । अतएवोक्तं जगत्यां सर्वं जगत् ईशेनावास्यम् इति । उत्तरार्धेन चात्र मन्त्रे भगवतो योगसम्बन्धस्य ध्वननं विहितम् । तथाहि प्राणिनां भोगः भगवतः प्रवृत्तेन (त्यक्तेन) अंशेनैव भवति नाप्रवृत्तेन । लोकेऽपि यदा दाता दीयमानाद् वस्तुनः स्वस्वत्वनिवृत्तिं विदधाति तदैवापरः प्रतिग्रहीता तद् वस्तु उपभोक्तुं समर्थो नान्यथा । अतो भोगाय दातुः दीयमानाद् वस्तुनः स्वस्वत्वनिवृत्तिरावश्यकी । अत्रापि मन्त्रस्योत्तरार्धे भागे एतदेवोक्तं यत् भगवतस्त्यक्तेन भागेन भुञ्जीथाः, कस्यचिदपि प्राणिनः अत्यक्तं धनं मा गृधः इति । प्रवृत्तस्य च अंशस्य इतरस्मिन् सम्बन्धो योग एव । तथा चोत्तरार्धे योगसम्बन्धः त्यक्तेन भुञ्जीथा इत्युक्तवता ऋषिणा प्रतिपादित इति । एवं योगविभूतिशब्दार्थविषये प्रदर्शिता अभिनवैव काचिदेषा दिक् मन्ये प्रभवेद् विदुषां विनोदाय । इतिशम् ।

संस्कृतभाषा राजनीतिश्च

(० बलराम स्वामी)

"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्" इति खलु भगवतो वेदव्यासस्य महाभारतमधिकृत्य प्रतिज्ञा, तथापि व्यापकत्वेन गृह्यमाणाऽसौ संस्कृतवाङ्मयमधिकृत्य स्वीकर्तुं शक्यते। निखिलं हि तद् विज्ञानजातं, यत् किल मानवजातेरुन्नतसंस्कृतेः परिचायकं भवितुमर्हति, सन्निहितमास्ते संस्कृतवाङ्मये। धर्मविज्ञानम्, अर्थविज्ञानम्, भौतिकविज्ञानम्, शिल्पशास्त्रम्, साहित्यविज्ञानम्, राजनीतिशास्त्रम्, आयुर्वेदशास्त्रम्, अध्यात्मशास्त्रम्—इत्यादयः सर्वेऽपि मानवजीवनसम्बन्धिनो विषयाः संस्कृतवाङ्मये सुसन्निविष्टाः तथाच वैशद्येन व्याख्याता आसन् यथा न केवलम् व्याख्यातॄणामेव बुद्धिवैभवं प्रख्यापयन्ति किंतु प्रमाणयन्ति तदानीन्तनीम् भारतीयामुन्नतसंस्कृतिम् सत्या-पयन्ति च तदानीन्तनानाम् भारतीयानां महर्षीणामिममुद्घोषं यत्—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशात् अग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" इति।

हन्त कालप्रभावेण वैदेशिकानामन्यायेन च हिमालयवत् उन्नतमस्तकानां भारतीयानां हृदयगुहाभ्यो निःसृताभिः ज्ञानविज्ञानधाराभिः सम्भृतो ज्ञानसमुद्रः शोषमगमत् मानवानां दौर्भाग्यमरुस्थले। तथापि यत् किञ्चित् विज्ञानमवशिष्यते तदपि पर्याप्तं प्रकटयितुं भारतस्य प्राचीनं गौरवम्। अध्यात्मम्, धर्मः, साहित्यञ्चेत्यादीना-मनेकेषां विषयाणां तत्त्वान्यद्यापि तथा रहस्यतया स्थितानि यथा तत्र मतिगतिमलभमाना वैदेशिका विद्वांसः स्वीकुर्वन्ति आत्मनोऽज्ञानम्।

अस्तु, राजनीतिर्नाम अस्माकम् प्रकृतोविषयः। अद्यत्वे हि संसारे राजनीतिशास्त्रे महान् विकासो वरीवर्ति। यद्यपि च भारतीयविज्ञानपराङ्मुखा भारतीया राजनीतिज्ञा वर्तन्ते राजनीतिक्षेत्रे परमुखापेक्षिणस्तथापि नैतत् मन्तव्यस्य किमपि कारणं यत् राजनीतिक्षेत्रे भारतमस्ति ज्ञानदरिद्रम्। इतिहासः प्रमाणमत्र यत् भारते महान्ति महान्ति साम्राज्यानि परमोन्नतिमासादितानि। को नाम भारतीयः महाराजमनोः, महर्षियाज्ञव-ल्क्यस्य च संहितासु सुनिरूपितं राजनीतितत्त्वंसमवलोक्य गर्वं नानुभवेत्। विश्व जानाति खलु परमकुशलम् अस्माकं महान्तं राजनीतिज्ञम् आचार्यचाणक्यम्। आसीत् तस्मिन् स्वर्णयुगे संस्कृतमेव भारतस्य राजभाषा राष्ट्रभाषा वा नाम। तस्मात् संस्कृतवाङ्मयनि-धाने एवं सुसङ्गृहीतमास्ते सर्वं राजनीतिसर्वस्वम्। तदस्मिन् निबन्धे संस्कृतसाहित्यात् यत्किञ्चिदुद्धृत्य प्रयतिष्ये संक्षेपेण राजनीतिस्वरूपम्परिचाययितुम्।

का नाम राजनीतिरिति विचारणायाम् नयन्ति अनया इति नीतिः, राज्ञां नीतिः राजनीतिरिति व्युत्पत्त्या यया खलु इतिकर्तव्यतया राजानः स्वकर्तव्यं प्रजानां परिपालनम्

बाधानिवारणञ्च नयन्ति नाम निर्वर्तयन्ति, किं वा नयन्ति नाम सम्पादयन्ति स्वस्य प्रजानाञ्च त्रिवर्गं धर्मार्थकामम्, सा राजनीतिः। सङ्क्षेपेण राज्ञः स्वार्थं परार्थो वा सर्वोऽपि क्रियाकलापः राजनीतिपदार्थेऽन्तर्भवति।

अथ कदा किं वा प्रयोजनमुद्दिश्य संसारे राजनीतेः प्रवृत्तिरभूदिति प्रश्ने कस्यैतस्य न किमप्युत्तरं दातुं शक्यं यतो हि नास्मिन् विषये कोऽपि ऐतिहासिको घटनाक्रमो लभ्यते। प्रयोजनविषये तावत् सङ्क्षेपेणेदं वक्तुं शक्यते यत् एकतो मत्स्यवृत्तिरपरतश्च सामाजिकवृत्तिरिति द्वयमेव राजनीतेः प्रवर्तकम्। अस्ति खलु मानवानां हृदयेषु प्रतिष्ठिता काऽपि पशुभावना यया प्रयुज्यमानास्ते न सङ्कोचमनुभवन्ति परार्थहननपूर्वकं स्वार्थसाधने। यथा खलु मत्स्येषु महत्तरो लघुतरं भक्षयित्वैव स्वजीवनं निर्वहतीति स्वभावस्तथैव दुर्बलान् बाधित्वा स्वार्थसाधनलक्षणो मानवस्वभावो मत्स्यवृत्तिरिति व्याख्यायते। अथ जागर्ति मनुष्येषु काऽपि धर्माख्या नामापरा सात्त्विकवृत्तिर्यदीयप्रेरणया ते स्वयमेव निवर्तन्ते परेषां बाधनात्। सेयं सात्त्विकवृत्तिरेव सामाजिकवृत्तिरित्याख्यातुं शक्यते। तदिदं वृत्तिद्वयमेव आसुरी दैवीति च नामान्तरेण निर्देष्टुं शक्यते। कल्पयितुं शक्यते च यदादिकालादेव प्रवर्तमान आस्तेऽस्मिन् संसारे देवासुरवृत्तिसङ्घर्षस्तस्यैव चायं परिणामो यत् प्रादुरासीत् राजनीतिः संसारे। तथा ह्युक्तमाचार्यश्रीकौटिल्येनास्मिन् विषये

"मत्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। धान्यषड्भागम् पण्यदशभागम् हिरण्यं चास्य भागधेयं कल्पयामासुः।" इति।

तदित्थं मत्स्यवृत्तिमभिभूय सामाजिकवृत्तेः,नामान्तरेण धर्मवृत्तेरुत्कर्षस्थापनमेव राजनीतेः मुख्यम्प्रयोजनम्।

किन्तु न तावता राजनीतिः स्वलक्ष्यं सम्पादयितुं प्रभवति यावता नायाति तस्याः प्रसह्यकारिता। शुचिहृदया हि जना धर्मबुद्ध्या प्रवर्तितुमर्हन्ति नतु अशुचिहृदया,यावन्न तेषां पुरस्तात् तिष्ठति किमपि भयम्। ततश्च राजनीतौ प्रसह्यकारितामापादयितुं सन्निधापिता तस्यां काऽपि सर्वोन्नता शक्तिः दण्डशक्तिर्नाम।

तथाचोक्तं महाराजेन मनुना—

> तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
> ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत् पूर्वमीश्वरः॥

सेयं दण्डशक्तिरेव राजनीतेर्मूलतत्त्वम् यद्द्वारा किमपि राज्यम् स्वप्रजाः स्वाभीष्टविधिनिषेधेषु बलात् प्रवर्तयितुं शक्नोति। अत एव तु बहुधा राजनीतिः दण्डनीतिनाम्ना प्रस्तूयते। यद्यपि च दण्डप्रधानत्वात् दृश्यते राजनीतौ कोऽपि हिंसादोषस्तथापि नैषा हिंसा स्पृशति किमपि राज्यम् अपराधिगामित्वात् तस्याः।

तथा चोक्तम् प्रजापतिना मनुं प्रति—

"मा भैषीः, कर्तॄनेनो गमिष्यति ।" इति

अथास्याः दण्डशक्तेर्नाम राजशक्तेः किं नाम स्रोतः किञ्चास्या आलम्बनम् इत्यत्र किमपि वक्तव्यम् । अद्यत्वे हि संसारे सर्वेषु प्रगतिशीलराष्ट्रेषु प्रजातन्त्रा नाम राजनीति-रुररीकृताऽऽस्ते ! प्रजातन्त्रे हि प्रजा एव राजशक्तेरुद्गमत्वेन स्वीक्रियन्ते स्वीक्रियते च राज्यसंस्था तदीयमालम्बनम् । नास्मिन् युगे राजशक्तिः कस्यापि कुलस्य परम्परागतोधिऽ-कारः किन्तु प्रजा यं कमपि पुरुषधौरेय-स्वप्रतिनिधित्वेन निर्वक्ति स एवास्या राजशक्ते-रालम्बनम् । न च सोऽपि राजा वा राष्ट्रपतिर्वा स्वच्छन्दम् राजशक्तिं व्यवह्तुं मीष्टे किन्तु लिखितविधानानुरोधेनैव प्रवर्तते स्वकर्तव्येषु । तदित्थं समुत्तिष्ठति विचारो यत् किं भारतीया राजनीतिः प्रजातन्त्ररूपा राजतन्त्ररूपा वा । अत्रेदमेव वक्तव्यं यत् यथा किल अद्य प्रजातन्त्रस्येयं परिभाषा क्रियते यत् या खलु शासन रूपा प्रणाली प्रजाद्वारा स्यात्, प्रजायाः कृते च स्यात् सा प्रजातन्त्रारूपा इति न तथाऽस्याः परिभाषायाः शब्दार्थैः सह संवादम्भजति भारतीया राजनीतिः यतो हि सर्वेषु भारतीयेषु राजनीतिशास्त्रेषु राजनीतेरारम्भप्रस्तावे प्रजापतिद्वारा राज्ञे निरूपिता मन्यते राजशक्तिः । न चास्मिन्नंशे प्रजाद्वारेति वर्तमानपरिभाषांशेन सह सा संवदितुमर्हति ।

यतो हि प्रजाद्वारेतिसिद्धान्तस्य व्यवहारो यथा अद्यत्वे प्राप्तवयस्कमतद्वारा निर्वाचनप्रक्रियायां दृश्यते न तथा भारतीयपद्धतौ ।

तथापि प्रजातन्त्रस्य भावार्थेन सह सा सर्वथा संवादमर्हति भवति च भावार्थेन भारतीया राजनीतिः सर्वथा प्रजातन्त्रा । तथाहि वर्तमानपरिभाषायाम् विशेषणत्रयसन्नि-वेशस्यायमेवाभिप्रायो यत् राजनीतिः सर्वात्मना प्रजापक्षपातिनी भवेत् ।

सोऽयमभिप्रायः भारतीयराजनीतिसूत्रेषु सर्वतो मुख्यत्वेन प्रतिष्ठापितो वर्तते । वस्तुतः प्रजातन्त्रत्वं नाम न कस्यचित् पद्धतिविशेषस्य स्वाभाविको धर्मः । अयन्तु शासकानां हृदयेषु प्रतिष्ठितः कोऽपि महान् सिद्धान्तः यस्तदीयशासनप्रक्रियासु परिस्फुरति। तमिमं सुन्दरं सिद्धान्तम् भारतीयराजनीतिशास्त्राणि शासकानां हृदयेषु तथा प्रतिष्ठा-पयन्ति यथा अनेनैव सिद्धान्तेन सह धमनीषु सञ्चरन् तथा व्याप्नोति शासकानामा-त्मसु यथा सर्वात्मना प्रजाहितमयं जायते शासकानां जीवनमेव । न भवति प्रजाभ्यः पृथक् राज्ञः काऽपि सत्ता । कियत् सुन्दरमिदं सूत्रम् यत्—

"प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां हि प्रियं हितम् ॥"

स्वभागभृत्या दास्यत्वे प्रजानां च नृप कृत ।
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा ॥
प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशन ।
राज्ञ कुलं श्रियं प्राणांश्चादग्ध्वा न निवर्तते ॥

तमिम सत्य शिव सुन्दर च सिद्धान्तमनुरुध्य प्रवर्तमानाम् भारतीया राजनीतिं को नाम वक्तु शक्नोति यत् न सा प्रजातन्त्रेति ।

राजसंस्थासङ्घटनम्

इदानीं यावदस्माभि भारतीयराजनीते सैद्धान्तिकरूप संक्षेपेण निवेचितम् । अत पर तस्या व्यावहारिकं रूपमपि यत् किञ्चिन्निदर्शनीयम् । यद्यपि प्रजाना हितानि प्रियाणि च राज्ञे समर्पितानि तथापि न कोऽपि राजा राष्ट्रस्यापि तेषा सरक्षणकार्यं स्वयमेकाकी सम्पादयितु प्रभवति । भवति तत्र जनधनापेक्षा । भवति चेत्थं धनजनसमाहारेण महती राज्यसस्था सङ्घटिता । यथा चाद्यत्वे राज्यसंस्थासु भवन्ति त्रयो विभागाः—व्यवस्थापरिषद्, शासकमण्डलम्, न्यायविभागश्चेति । तथैव त्रयोऽप्येते विभागा समुपलभ्यन्ते भारतीयराजनीतिषु । तानेतान् क्रमेण निरूपयिष्याम । प्रथम हि व्यवस्था परिषद् गृह्यताम् । राज्यकर्तव्यान्यनुरुध्य अनेके विधेया निषेध्याश्च विषया समुपस्थिता भवन्ति राज्ञां पुरस्तात् ये नियमतया स्वीकृता एव शासने प्रचरितुमर्हन्ति । तेषा नियमत्वोपपत्तये प्रथमं सर्वेऽपि विषया व्यवस्थापरिषदि प्रस्तूयन्ते तत्र च सविचारविमर्शं सुपरीक्ष्य स्वीकृता एव विधेयका शासनेषु गृह्यन्ते इति सुनिर्दिष्टमिदानीन्तन व्यवस्थापरिषदा कार्यम् ।

अस्माक राजनीतिशास्त्रेषु व्यवस्थापरिषत्स्थानीया सुनिरूपिता कापि धर्मपरिषत् या धर्मनिर्धानेषु राज्ञो निरपेक्षतया प्रवर्तमाना अङ्कुशायते राज्ञामनुचितप्रवृत्तिषु तथाहि—

चत्वारो वेदधर्मज्ञा पर्षत् त्रैविद्यमेव वा ।
सा ब्रूते य स धर्म स्यात् एको वाध्यात्मवित्तम ।

व्यवस्थापरिषदा सुनिरूपितानां विधेयकानां व्यवहारे प्रवर्तनार्थं भवति साम्प्रत मेक शासकमण्डलम् यन्मन्त्रिमण्डलनाम्ना निरुच्यते । तदिद शासकमण्डलम् अस्माकं राजनीतौ प्रकृतिमण्डलनाम्ना व्यपदिश्यते । तथाहि—

पुरोधाश्च प्रतिनिधि प्रधान सचिवस्तथा
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च पण्डितश्च सुमन्त्रकं
अमात्यो दूत इत्येते राज्ञ प्रकृतयो दश ॥ शुक्रनीति ।

यथाहि खलु साम्प्रतं मन्त्रिमण्डलमध्यगता मन्त्रिणो विभिन्नेषु विभागेषु पृथक पृथक् कर्तव्यचिन्तका भवन्ति तथैवैताः प्रकृतयोपीतीति तासां कर्तव्यावलोकनेन सुस्पष्टं भवति । तथाहि—पुरोहितविषये कौटिल्यवचनम्—

पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् ।
दण्डनीत्यां च कुशलं अथर्वाङ्गिरसे तथा ॥

सोऽयं पुरोहितः राष्ट्रहितचिन्तासु नियुज्यमानोऽपि राज्ञां निरङ्कुशप्रवृत्तिदमनाय तेषामाचार्यत्वेन गुरुत्वेन पितृत्वेन च स्वीकृतः । तथाहि—

"षडङ्गवित् साङ्गधनुर्वेदविद्यार्थधर्मवित् ।
यत्कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत् ॥
नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहितः ।
सैवाचार्यः पुरोधा यः शापानुग्रहयोः क्षमः ॥

(२) पुरोहितादनन्तरं राज्ञः प्रतिनिधिः स्वीकृतः । तथाहि—

"कार्याकार्यप्रविज्ञाता स्मृतः प्रतिनिधिः खलु ।
अहितं चापि यत कार्यं सद्यःकर्तुं यदोचितम् ॥"
अकर्तुं यद्धितमपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा ।
बोधयेत् कारयेत् कुर्यात् न कुर्यात् न प्रबोधयेत् ॥

सोऽयं प्रतिनिधिरद्यतनोपराष्ट्रपतिवत् प्रतीयते ।

(३) प्रतिनिधेरनन्तरम् प्रधानो नामाधिकारी योऽद्यतनप्रधानमन्त्रिस्थानीयः । तथाहि—

"सर्वदर्शी प्रधानस्तु" इति ।

(४) प्रधानानन्तरम् सचिवः यः वर्तमानरक्षामन्त्रिस्थानीयः । तथाहि—

"सेनावित् सचिवस्तथा ।

(५) अथ मन्त्री नाम प्रकृतिः वर्तमानपरराष्ट्रमन्त्रिस्थाने । तथाहि—

"सामदानञ्च भेदश्च दण्ड केषु कदा कथम्
कर्तव्यः किं फलं तेभ्यो वहु मध्यं तथाल्पकम् ।
एतत् सञ्चिन्त्य निश्चित्य मन्त्री सर्वं निवेदयेत् ॥

(६) अथ प्राड्विवाको नाम वर्तमानन्यायमन्त्रिस्थानीयः । तथाचोक्तम्—

लोकशास्त्रनयज्ञस्तु प्राड्विवाकः स्मृतः सदा ।

(७) सुमन्त्रो नाम राज्याधिकारो अर्थमन्त्रिस्थानीयः तथाहि—

आयव्ययप्रविज्ञाता सुमन्त्रः स च कीर्तित ।

(८) दूतो नामाष्टमः वर्तमानराजदूतस्थानीयः —

"षाड्गुण्यमन्त्रविद् वाग्मी वीतभी; दूत इष्यते ।

(९) नवमः पण्डितो नाम राज्याधिकारी यो राज्यस्य धार्मिककार्येषु अध्यक्षतया नियुज्यमान आसीत् किन्तु अद्यत्वे धर्मनिरपेक्षराजनीतियुगे न सन्निवेश्यते मन्त्रिमण्डलेषु ।

(१०) अथ अमात्यो नाम दशमो राज्यकार्याध्यक्षः यः खलु इदानीं गृहमन्त्रीति व्यपदिश्यते । तथाहि—

"देशकालप्रविज्ञाता ह्यमात्य इति कथ्यते । इति ।

तदित्थं शुक्राचार्येण दश प्रकृतयो निरूपिता । उक्तञ्च—

"विना प्रकृतिसन्मन्त्रात् राज्यनाशो भवेद्ध्रुवम् ।
रोधनं न भवेत् तस्मात् राजस्ते स्युः सुमन्त्रिणः ॥

यद्यपि साम्प्रतं दैवकोपजानां राष्ट्रक्षतीनां निवारणाय प्रयत्यते बहुविधं राष्ट्रपतिभिः, नियुज्यन्ते चास्मिन् कार्ये बहवो वैज्ञानिकाः । तथापि भौतिकविज्ञानोत्कर्षकालेऽप्यस्मिन् न किञ्चित् तादृशविज्ञानमाविष्कृतं येन दैवीनां राष्ट्रविपदामनुत्पाद एव स्यात् । आसन् पुरा भारते तानि विज्ञानानि येषां विद्वांसः पुरोहिता नाम अभवन् सततं जागरूका राष्ट्रहितेषु रक्षन्ति स्म च राज्ञां प्रवृत्तिं सर्वथा स्वाङ्कुशे । किन्तु अद्यत्वे तथाविधानाम् आथर्वणवैज्ञानिकानामभावात् वर्तमानराजनीतेर्महती शून्यता । अपि च वर्तमानवैज्ञानिका भवन्ति राजनीतेर्भृत्या इति राजनीतेरुपरि तेषामङ्कुशाभावात् संसारे प्रवर्तयन्ति तत्साहाय्येन विश्वसङ्कटम् यदा तदा स्वच्छन्दम् ।

यथा च खलु इदानीं शासनव्यवस्थामुद्दिश्य राष्ट्रं प्रान्तभेदेन विभज्य विभिन्नेषु प्रान्तेषु पृथक् पृथक् अधिपतयो नियुज्यन्ते सैषा व्यवस्था प्रागप्यासीत् या सामन्त-राज महाराज स्वराट्-सम्राट्-विराट्-सार्वभौमानां शास्त्रेषु निरूपितैः कार्यैः लक्षणैश्च स्पष्टं प्रतीयते । किञ्च यथेदानीं राज्यव्यवस्थामनुरुध्य अनेके राजकीया विभागाः कल्पन्ते प्रतिभागं च पृथक् अध्यक्षास्तेषां कर्तव्यानां सुनिरूपणाय भवन्ति तथैवासीत् सुव्यवस्थिता राज्यव्यवस्था प्रागपीति कौटलीयार्थशास्त्राध्ययनेन स्पष्टं प्रतीयते । तथाहि तत्र—राजस्व-व्यापार-कृषि-शुल्क-सुरा-सेना-वनादिनाम्ना पृथक् पृथक् विभागास्तेषां कर्तव्यानि यथावत् चाणक्येन सुनिरूपितानि । यथा—

(१) सन्निधाता नामासीत् राज्यस्य प्रधानकोषाध्यक्षः

(२) समाहर्ता नाम राज्यस्य करव्यवस्थापकः

(३) नागरिको नाम स्वाधिकृतनगरसुरक्षाधिकारी

(४) शुल्काध्यक्षो नाम बाह्यम्, आभ्यन्तरम्, आतिथ्यञ्चेति त्रिविधशुल्कानां व्यवस्थापकः । तत्र स्वदेशजानां वस्तूनां शुल्कं बाह्यम् । राजधानीनीतानां द्रव्याणां शुल्कम् आभ्यन्तरम् । आतिथ्यं च द्विविधम्—निष्काम्यम् प्रवेश्यं च । तत्र स्वदेशजानां द्रव्याणां विदेशगमने निष्काम्यशुल्कं यदिदानीं निर्यातकरनाम्ना कथ्यते । विदेशेभ्यः स्वदेशे समागतानां द्रव्याणां प्रवेश्यशुल्कं यदद्यत्वे आयातकर इति कथ्यते ।

(५) सीताध्यक्षो नाम कृषेरधिकारी

एवमन्येषामपि सेना-सुरा-पण्यादिविभागानां कार्याणि सुविभक्तं निरूपितानि यानि विस्तारभयेनात्र न निदर्शयितुं शक्यते ।

यथाचेदानीं खलु राजकर्मचारिणां नियुक्तौ शिक्षा कार्यक्षमता चापेक्ष्यते तथैवासीद् व्यवस्था भारतीयराजनीतावपि । तथाचोक्तम्—

"प्राज्ञत्वमुपधाशुद्धिः अप्रमादोऽभियुक्तता
कार्येषु व्यसनाभावः स्वामिभक्तिश्च योग्यता ।" इति,

(३) न्यायविभागः—

शासनात् परं न्यायनिर्णयोऽपि राज्ञां कर्तव्यम् तदर्थं च आसीत् व्यवस्था न्यायविभागस्य। तत्र च नृपतिरेव प्राधान्येन न्यायाध्यक्षः। यथोक्तम्—

व्यवहारान् स्वयं पश्येत् विद्वद्भिः ब्राह्मणैः सह।
धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥

किन्तु राष्ट्रव्यापि कर्तव्यमेतत् न शक्यते राज्ञा स्वयमेकाकिना सम्पादयितुमिति तदर्थं भवति व्यवस्था न्यायाध्यक्षान्तराणाम् नियुक्तेः। तथाहि—

"यदा न कुर्यान्नृपतिः स्वयं कार्यविनिर्णयम्
तदा तत्र नियुञ्जीत ब्राह्मणं वेदपारगम्
दान्तं कुलीनं मध्यस्थं अनुद्वेगे वरं स्थितम्
परत्र भीरुं धर्मिष्ठं उद्युक्तं क्रोधवर्जितम् ॥ इति।

आसीच्च न्यायनिर्णयाय न्यायसभायाः व्यवस्था। तथाहि—

श्रुताध्ययनसम्पन्नाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः
सप्राड्विवाकः सामात्यः सब्राह्मणपुरोहितः
समाहितमतिः पश्येत् व्यवहाराननुक्रमात्।

तदित्थं—न्यायाध्यक्षः, प्राड्विवाकः अन्ये सभासदश्चेति न्यायसभास्वरूपम्। तत्र प्राड्विवाको नाम मुख्यतया अभियोगस्य विवेचकः। स हि उभयपक्षं पृच्छति ततश्च विवेचयति सत्यासत्यम्। अत एव च पृच्छतीति प्राट् विवेचयतीति विवाक् प्राट् च विवाक्चेति निरुक्त्या तस्य प्राड्विवाकसंज्ञा।

आसीच्च सुव्यवस्थिता व्यवहारदर्शनप्रणाली। तथाहि—

'स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः।
आवेदयति चेद् राज्ञो व्यवहारपदं हि तत्।"

इतिवचनानुसारं प्रथमम् प्रार्थिना स्वयं निवेदितोऽभियोगो विचाराय स्वीक्रियते स्म। ततश्च प्रार्थिना सप्रश्नोत्तरं निरूपितः सर्वोपि व्यवहारविषयः प्राड्विवाकेन लिख्यते। सेयं व्यवहारस्थापना नाम। ततश्च सः राजशासनपत्रादिना प्रत्यर्थिनं सूचयति न्यायसभायामुपस्थातुम् नियते दिने समये च। यथासमयं चार्थिप्रत्यर्थिनोरुपस्थितौ प्रवर्तते स्म व्यवहारविचारः। स च चतुर्धा विभक्तः—भाषापादः, उत्तरपादः, क्रियापादः, साध्यसिद्धिपादश्च। तत्र प्रथमं प्राड्विवाकः सर्वेषां सभ्यानां समक्षम् प्रत्यर्थिनोऽग्रे अर्थिनोवक्तव्यं पुनर्गृह्णाति अपेक्षते च तत्र प्रथमवक्तव्येन सर्वथा सादृश्यम्। विसादृश्ये हि हीनवादी भवति अर्थी। तथाहि—

"अन्यवादी क्रियाद्वेषी नोपस्थाता निरुत्तरः।
आहूतप्रपलायी च हीनः पञ्चविधः स्मृतः ॥" इति :

प्रश्नोत्तरद्वारा गृह्यमाणमर्थिवक्तव्यम् आवापोद्वापद्वारा संशोध्य प्राड्विवाकः करोति लेखबद्धम्। सोऽयं प्रथमः भाषापादः। अथ अर्थिनः आक्षेपाणां निराकरणरूपम् प्रत्यर्थिनो वक्तव्यं गृह्णातीति उत्तरपादः। ततश्च पुनरर्थिपक्षस्य प्रमाणानि संगृह्णाति

विवेचयति च सभ्यान्तरैः सह पक्षद्वयम् इति तृतीयः क्रियापादः। अनन्तरम् प्रमाणबलाबलमपेक्ष्य करोति न्यायान्यायपक्षनिर्णयम्। तत्र च यदि वादिनः पक्षो न्यायसम्मतः प्रमीयते तदा सा वसिद्धिपादः - अन्यथा तु साध्यहानिपादः। तस्मिन्—

उपर्युक्तनियोगदर्शनप्रक्रियायाम् दिव्यं लौकिकं च द्विविधं प्रमाणं स्वीक्रियते स्म। तत्र लौकिकं यथा—

"प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तिता।" इति।

दिव्यन्तु—

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानीह विशुद्धये।" इति।

किन्तु यावच्छक्यं लौकिकप्रमाणोपलब्धौ सत्यां न स्वीक्रियते स्म दिव्यं प्रमाणम्। लौकिकाभावे एव तु कदाचित् दिव्यमनुमन्यते स्म। यथोक्तम्—

यद्येको मानुषीं ब्रूयात् अन्यो ब्रूयात्तु दैविकीम्।
मानुषीं तत्र गृह्णीयात् नतु दैवीं क्रियां नृप।"

अथ न्यायान्यायनिर्णयानन्तरम् अन्याय्यपक्षस्य दण्डावसरे अपराधभेदेन उत्तमाधमा दण्डव्यवस्था निरूपिता। तथाहि—

धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा।
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे।

तत्र धिग्दण्डो नाम धिक्कारदानम्। वाग्दण्डो नाम कठोरवाक्यैः भर्त्सनम्। धनदण्डो नाम धनापहरणम्। स च पणादारभ्य पूर्वसाहसम्, मध्यमसाहसम्, उत्तमसाहसमिति क्रमेण वर्धमानः सर्वस्वापहरणपर्यन्तः अपराधानां गौरवतारतम्यापेक्षी। वधो नाम शारीरदण्डः। सोऽपि ताडनम्, एकाङ्गवधः, प्राणदण्डश्चेति त्रिविधः। प्राणदण्डोऽपि चित्रः शुद्धश्चेति द्विविधः। तत्र चित्रवधो नाम सकष्टं प्राणहरणम्, यथा दाहो जलमज्जनं वा। शुद्धवधो नाम सरलतया प्राणहरणम्। किन्तु प्राणदण्डः प्रायशो वर्जितमेवासीत्। उपर्युक्तदण्डेषु च कस्यामवस्थायां कीदृशो दण्डो विधेय इति सविस्तरं प्रतिपादितं शास्त्रेषु। न च केवलं दण्डविधानमेव किन्तु अपराधिनां शिक्षापूर्वकं सन्मार्गानयनमपि नीतिशास्त्राणामभिप्रेतम्। तथाहि—

एवंविधानसाधूंश्च संसर्गेण च दूषितान्।
दण्डयित्वा च सन्मार्गे शिक्षयेत्तान् नृपः सदा।

तदित्थं स्वराष्ट्रसम्बन्धी राजनीतिभागः दिग्दर्शनविधया किञ्चित् प्रदर्शितः। स्वराष्ट्रवत् परराष्ट्रसम्बन्धिनी राजनीतिरपि सविस्तरं राजनीतिशास्त्रेषु व्याख्याता। तत्र च सन्धिविग्रहयानासनसंश्रयद्वैधीभावाख्यम् षाड्गुण्यम् परराष्ट्रनीतेर्मुख्यमङ्गम्। न तु अस्मिन् संक्षिप्ते निबन्धे पृथक् पृथक् व्याख्यातुं शक्यम्।

निबन्धस्यायमेवाभिप्रायो यत् राजनीतिसम्बन्धिनः सर्वेऽपि विषयाः संस्कृतसाहित्ये पुष्कलतया सुनिरूपिताः भारतीयानां दौर्भाग्यवशेन न ते शिक्षासु समावेश्यन्ते भारतीयसंस्कृतिपराङ्मुखैः शिक्षाधिकारिभिः। आसीत् स किल कालोऽस्माकं यत्र यत् किमपि ज्ञातव्यमासीद् भारतस्य, अलभ्यत तत् संस्कृते। इति शम्॥

संस्कृतशिक्षाप्रणाली

ले०—श्रीकन्हैयालालः शास्त्री

विद्वज्जनवरिवस्यां नित्यं कमलासनस्थितामार्याम् ।
शिक्षास्वरूपिणीं तां वाग्देवीं संनमस्यामः ॥

अस्ति हि संस्कृतभाषा सर्वभाषाजननी संसारसभ्यताखनिः सर्वभाषामूर्धन्या च। सर्वा अपि संस्कृतयस्तत्र व्यासतः समासतो वा निबद्धाः । व्यावहारिकी आध्यात्मिकी सांस्कृतिकी आधिदैविकी च सर्वविधा अपि सभ्यता अस्यां संग्रथिताः । अत एव तद्भाषाविदो भारतीयस्येयं सगर्वोक्तिः—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ इति

भवन्ति च पूर्वं भारतीयाः सर्वसंस्कृतिरत्नाकरमिमामधीत्य सर्वविदः, इति नाविदितं पुरातत्वेतिहासविदां विदाम् । न ते केवलं शुष्कवैयाकरणा जरन्नैयायिका मीमांसकदुर्दुरूढा वा एवाभवन् । अपि तु राजनीतावर्थशास्त्रे, व्यवहारे, विज्ञाने, ज्ञाने, दर्शने च परिनिष्ठिताः। सर्वा अपि विद्याः सकलाश्च कला अधिगम्यन्ते स्म तैः षोडशवर्षात्मके ब्रह्मचर्य एवाश्रमे । प्रतीयते चैतत्स्पष्टं पुरातनग्रन्थावलोकनेन । दशकुमारचरित-कादम्बर्यादिषु राजकुमाराणां सर्वविद्यावित्त्वं तत्तत्कलाभिज्ञत्वं च निरूपितम् । न केवलं तत्र तेषां धनुर्विद्यायां युद्धविद्यायामेव वा नैपुण्यं निरूपितमपि तु द्यूत-नाट्यचौर्यादिकलाभिज्ञत्वं ज्यौतिषादिविद्याविज्ञत्वं चापि प्रतिपादितम् । रघुवंशेऽपि पंचमे सर्गे कौत्सस्य चतुर्दशविद्याविज्ञत्वं स्पष्टमेव । तेन च सर्वविधाऽपि विद्याधीता तेषां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां ब्रह्मर्षीणां सविध एव । तदानीमिमामेव संस्कृतभाषा-मधीयाना भवन्तिस्म सर्वविदः, इदानीं तु अधीत्यापि बहूनि वर्षाणि तामेव भाषां न भवन्त्येकभाषाविदोऽपीति महदाश्चर्यम् । इदानीं तु (अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्) इत्याभाणकं निदर्शयन्तो यापयन्ति सर्वमायुर्व्याकरणाध्ययने. परं तदापि विचिकित्सन्ते शब्दसाधुत्वे । व्याकरणाध्ययनस्य यत्प्रयोजनम् रक्षोहागमलध्वसन्देहाः इतिसन्देह-प्रागभाव रूपं तदपि दूरापास्तम् । वैषम्येऽत्र प्रत्यक्षं दृग्गोचरीक्रियमाणे मूलं निदानं तु शिक्षाप्रणाल्या वैषम्यमेव । अत एव संस्कृतभाषाविदां व्यवहारे प्रतिदिनमेधमानं

र्तान्निदानं निभाल्य तत्प्रतिचिकीर्षुभि संस्कृतभाषायास्तदध्येतृणां च दीना दशा निरा-
करयितु विहितसङ्कल्पै कैश्चिद्विद्वद्भिर्वर्तमानाया संस्कृतशिक्षाप्रणाल्या परिवर्तन संशोधन
वाऽपेक्ष्यते ।

कतमा संस्कृतशिक्षाप्रणाली श्रेयसीति विवेचनात् पूर्वं "वाक्यार्थज्ञाने पदार्थ-
ज्ञानस्य कारणत्वमिति न्यायादादौ शिक्षा—शब्दार्थविवेचनमावश्यकम् । शिक्षाशब्दो
हि शिक्ष—धातोरचि टापि शक् धातोरिच्छासनि" अप्रत्ययात्स्त्रियामप्रत्यये टापि वा
निष्पद्यते । शिक्षयति बोधयत्यैहिकामुष्मिक सर्वविधव्यवहार या इति व्युत्पत्त्या
शक्तो भवितुमिच्छति यया सर्वविधलौकिकव्यवहारे इति व्युत्पत्त्या वा सर्वविध-
लौकिकव्यवहारविषयकबोधसम्पादयित्री तदनुकूल-शक्ति-सम्पादनेच्छा वा नाम
शिक्षाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् । शिक्षयैव मनुष्य ऐहिकानामुष्मिकान् समानपि विषयान्
जानाति, शिक्षयैव तत्तद्व्यवहारसम्पादने समर्थश्च जायते । एवञ्च यया हि मनुष्य
सर्वविधलौकिकव्यवहारबोधने आमुष्मिकधर्ममोक्षौपयिके च ज्ञाने, तत्सम्पादने च
शक्तो भवेत् सैव हि शिक्षा नाम । सूक्ष्मरूपेण वर्तमानाना तिरोहिताना वा नाना-
शक्तीनामुद्भावन शिक्षाया एव कार्यम । आसुरीणां सम्पदा ह्रास विधाय धृतिदमाद-
मास्तेयादिदैवसम्पदा च प्रादुर्भाव कृत्वा दानवतापरिहारपूर्वकं मानवस्य मानवता-
सम्पादन शिक्षाया एव उद्देश्यम ।

एषा च बहिरङ्गान्तरङ्गोभयभेदेन अङ्गद्वयवती । बाह्यान्यङ्गानि तावत् व्रतशब्दे-
नोपदिष्टानि शास्त्रेषु । भवन्ति स्म पूर्वं केवल तद्व्रतपालका अपि ब्रह्मचारिणो ये
व्रतस्नातकाभिधेयता भजन्ते स्म । तानि च व्रतानि यद्यपि शिक्षासाधनानि तथापि
साधनसाधनवतोरभेदमाश्रित्य शिक्षापदव्यपदेश्यान्यपि ।

तेषा व्रतानां नियमानाञ्च श्रुतिस्मृत्यादिषु विस्तरेणोपलब्धि । यथा याज्ञवल्क्य-
स्मृतौ स्नातकधर्मप्रकरणे स्नातकधर्मा विस्तरशो निरूपिता । तत्र ब्रह्मचर्यं शिक्षाया
प्रधानमङ्गम । नहि ब्रह्मचर्यमन्तरा शिक्षाधिगति , नवाऽन्ये नियमा कथमपि पालयितुं
सुशका , अत सर्वप्रथम ब्रह्मचर्यस्योपदेश । किन्त्ववधेयमत्र यत् नात्र ब्रह्मचर्याश्रमे
ब्रह्मचर्योपदेशे च ब्रह्मचर्यशब्द स्त्रीवीर्यरक्षणरूपेऽर्थे एव सङ्कुचित , अपि तु विभिन्ने
व्यापके चार्थे प्रयुक्तो वर्तते । यथा— ब्रह्म=वेद =विद्या तदध्ययनार्थं व्रतमपि
तादर्थ्याद् लक्षणया ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी, तदर्थं चर्यं च ब्रह्मचर्यमिति
व्युत्पत्त्या सशब्द विद्याध्ययनार्थं शिक्षार्थं वा अपेक्ष्यमाणानां सर्वविधाना व्रताना
नियमाना चोपलक्षक । किन्त्वन्येषा व्रताना वीर्यरक्षारूपव्रतसापेक्षत्वात् स शब्द

तत्र प्राधान्येन रूढिमिवोपगतः। ब्रह्मचर्यवत् गुरूपसत्त्यादिकमप्यपेक्षितम्। उपनीतो हि बालकः पितृभ्यां गुरवे समर्प्यते। तत आरभ्य आस्नानं तस्य आचार्य एव माता, पिता, सम्बन्धी गुरुश्च। यदा स आत्मानं सर्वथा गुरवे निवेदयते, तमेवात्मनः सर्वस्वं मन्यते, तदा कथं गुरुराचार्यो वा तस्मै स्वहृदयगतमपि भावं न प्रकाशयेत्। गुरुशिष्ययोरेष सम्बन्धः अतीव विशुद्धो विलक्षणः सर्वान्तरतमश्च। एष तयोरत्यन्तसन्निधिं तादात्म्यमेव च स्थापयति। तत्र रात्रिन्दिवं गुरुपरिचर्यां चरन् स कथं न विद्यामवाप्नुयात्। "गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा। अथवा विद्यया विद्या" इति त्रिषु विद्यासाधनेषु गुरुशुश्रूषैवेतरां द्वयीमतिशेते। इतरोपायद्वय्याधिगताऽपि विद्या विनयाधानफलप्रदत्वाभावात् न सार्थिका। अतएव चाणक्येनार्थशास्त्रे "शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्।" इत्युक्तम्। गीतायामपि भगवता "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः" इति वचनेन गुरुशुश्रूषाया महत्त्वमुक्तम्।

एवमन्येऽपि आचारादयो नानपेक्षिताः। आचारादीनामपि शिक्षायामत्युपयोगित्वेन तदनन्तरम् आचारशिक्षाया एव सर्वप्रथममाचार्यैः शिष्याय शासनात्। तथा हि उपनीय गुरुः शिष्यम् शिक्षयेच्छौचमादितः। आचारमग्निकार्यञ्च सन्ध्योपासनमेव च। वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥" एवमेकान्तवासोऽपि शिक्षायै अत्यावश्यकः। अतएव नगरेभ्यो ग्रामेभ्यश्च अतिदूरं निर्जने शुद्धजलवायुसम्पन्ने, मनोरमनानादृश्यसमाकुले प्राकृतिके स्थाने ऋषीणां सात्त्विका आश्रमा शिष्याणाम् अध्ययनाध्यापनस्थानान्यासन्। न केवलं वेदकाले, महाभारतकाले एव वा अपितु बौद्धकाले तक्षशिलानालन्दादिविश्वविद्यालया अप्येतादृशे स्थाने एव स्थापिता अभूवन्। आसीदेषैव पद्धतिर्गुप्तकाले हर्षकाले च। पूर्वमभिहितमेतत् यत् स्वस्थं शरीरं मनश्च शिक्षायै अपेक्ष्यते। बुद्धिर्हि मनःस्वास्थ्यमपेक्ष्यते, मनःस्वास्थ्यं च शरीरस्वास्थ्यायत्तम्। मनःशरीरसम्पत्तिश्च सर्वविधराजसतामससामग्रीबहिर्भूतेषु प्राकृतिकसात्विकसाधनसम्पन्नेषु एतादृशेष्वाश्रमेष्वेव सम्भवति। शिक्षकाणां सात्त्विकी वेषभूषा, तदीयाः सात्त्विका आचारादयश्च प्रभविष्णवोऽवर्तन्त। एवमाश्रमेषु निर्धनानां धनिकानां च राज्ञां सामन्तानामन्येषां च सामान्यविद्यार्थिनां रात्रिन्दिवं समव्यवहारः परस्परसम्बन्धश्च भाविनीं राष्ट्रियसम्पत्तिमुपक्रमत एव तेषां हृदयेष्वंकुरयति स्म। एतदेव शिक्षाया बाह्यमङ्गम्।

शिक्षाया अन्तरंगसाधनेषु च षडङ्गवेदवार्तादर्शनपुराणज्यौतिषायुर्वेदराज-

नीत्यादिविषयाणामध्ययनस्य समावेश । किं बहुना सामान्यतश्चतुर्दशविद्याना चतु षष्टिकलाना च यावच्छक्य ज्ञानमप्यत्रैवान्तर्भूतम् । एतदङ्गद्वयोपेता शिक्षा प्रभवेत् उपर्युक्तशिक्षाशब्दार्थप्राप्तये । अत एतादृशशिक्षासम्पन्नाय तादृशी प्रणाल्येव श्रेयसी मन्तव्या, याङ्गद्वयीविशिष्टशिक्षासम्पादनाय समर्था स्यात् । न चाधुनिक्या सस्कृतशिक्षाप्रणाल्या एकस्यापि विषयस्यासन्दिग्ध ज्ञान जायते, दूरमास्ता समेषां विषयाणा ज्ञानस्य कथा। इदानीं प्रधानतया न्यायव्याकरणसाहित्यायुर्वेदादीनामेवाध्ययन क्रियते । तत्र व्याकरण हि वेदाङ्गम् । अर्थात् उपेयभूतवेदोपायमात्रम । आधुनिकैश्च सर्वमप्यायु तदध्ययने एव याप्यते किन्तु तदापि नासाद्यते असन्दिग्धता शब्दसाधुत्वज्ञाने । कारण त्वत्र वर्जयित्वा सिद्धान्तकौमुदीं नास्त्येकोऽपि एतादृशो ग्रन्थो य शब्दसाधुत्व बोधयेत् । केवल वादविवादपरा मनोरमाशब्दरत्नशेखरादयो ग्रन्था सन्ति येषामध्ययने व्यर्थमेवाध्येतुरायुर्व्येत्येति न च किमप्यासाद्यते तेन। एषैव दशा न्यायस्य । पूर्वं तु न्यायो दर्शनमेव न, केवल कथानियमनिरूपणपर शास्त्रम्, तत्रापि आधुनिकैस्तदेकदेशस्यानुमानस्याध्ययन क्रियते । अनुमानेऽपि हेत्वाभास पञ्चके व्याप्तिनिरूपणे पक्षताज्ञाने वा स्वीयमायुर्नाश्यते न चाधीयन्ते तैर्वास्तविकानि शास्त्राणि, यैर्हि स्यात्तेषा वस्तुतो ज्ञानवृद्धि । तथा हि सन्ति सस्कृतसाहित्ये निरूपिता बह्वो विद्या यासा नामापि नेदानीं श्रूयन्ते । तद्यथा—छान्दोग्ये सनत्कुमार प्रति आत्मजिज्ञासया गतो नारद स्वाधीता विद्या परिगणितवान्— "ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेद, सामवेद, आथर्वण चतुर्थं, इतिहासपुराणं पञ्चम वेदाना वेद, पित्र्य राशिं, दैव, निधिं, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवयजनविद्याम्" इति । एव याज्ञवल्क्येनापि— पुराणन्यायमीमासाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता । वेदा स्थानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश ॥ इत्येवरूपेण विद्याना चतुर्दशत्वमुक्तम् विष्णुपुराणे तु ताभिश्चतुर्दशविद्याभि सह "आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रय । अर्थशास्त्र चतुर्थं च विद्या ह्यष्टादशैव ता । इति तासा अष्टादशत्व प्रतिपादितम् । एवमन्या अपि अश्वगजायुधादिविद्या निदानादिविद्या रहस्यग्रन्थाश्च पूर्वं शास्त्रेषु उल्लिखिता । ये इदानीं नोपलभ्यन्ते न च ज्ञायन्ते आधुनिकैर्विद्वद्भिर्नाममात्रेणापि । तदेवासीत् सस्कृतभाषाया वास्तविक साहित्य यदादायैव "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तद् क्वचित् ।" "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन । स्व स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ,"इति साटोपमुक्तिर्भारतीयानाम् । एषा खलु दशा इदानी शिक्षाया अन्तरङ्गाणाम् ।

व्रतब्रह्मचर्यशौचाचारादिवहिरङ्गशिक्षा तु नेदानीं क्वचित् दरीदृश्यते। पाश्चात्त्य-शिक्षाप्रभावतः सा तथोन्मूलिता यथा तामुज्जीवयितुं न कोऽपि चेष्टते इदानीम्।

अतः साम्प्रतिकी शिक्षाप्रणाली अन्तरङ्गबहिरङ्गोभयशिक्षाङ्गशून्या नाना दोषदूषिता विषवद् दूरतः परिहार्या। एषा प्रणाली तु पाश्चात्यैः भारतीयानां पङ्गुत्वः सम्पादनार्थमेव प्रचालिता। न चात्र केवलं दोषः पाश्चात्यानाम्, किन्तु विशेषतो मध्यकालिकविपश्चितामपि यैर्व्यर्थमेव येन केनाप्युपायेन विशेषतश्च वितण्डया परमुखमुद्रणाय स्वविजयेच्छुभिर्निरर्थका विषयज्ञानविरहिताः केवलं वादपराः नव्यन्यायव्याकरणादिविषयाणां ग्रन्था विरचिताः, आविष्कृता च सर्वेषामपि विषयाणां प्रतिपादनाय वादपूर्णा नव्यन्यायगुम्फिता सा निरूपणशैली। नव्यन्यायो नव्यव्याकरणं, एतच्छैली-लिखिताः साहित्यज्यौतिषादयो विषया ग्रन्थाश्च तदानीमेव लब्धजन्मानः। वादप्रधाने तस्मिन् युगे सर्वमपि प्राचीनं संस्कृतसाहित्यं सर्वथा विलुप्ताध्ययनाध्यापनं सत्कथाशेषतामुपगतम्। इदानीं बहूनां विषयाणां नैकेषां ग्रन्थानाञ्च नामापि नावशिष्यते। क्वेदानीं रहस्यग्रन्थाः क्व निदानशकुनादिविद्या-ग्रन्थाः। क्व वा विचित्रकलानिरूपणपरा निबन्धाः। क्व वाकोवाक्यम्, क्व वा वेदस्य ताः पारेसहस्रं शाखाः; येषामुल्लेखो बहोः कालादनन्तरमपि "पातञ्जले महाभाष्ये उपलभ्यते। एषां विनाशे कारणं केवलं न विदेशीयशासनमेव, अपितु प्रधानं कारणमस्मिन्वादयुगे तेषामध्ययनाध्यपनप्रचाराभावः। सुस्पष्टमेतत् सर्वेषा-मितिहासविदां यत् भारतीयं साहित्यं केवलमध्ययनाध्यापनपरम्परयैवैतावत्काल-मक्षुण्णं वर्तते। ये ये विषयाः ग्रन्थाश्चअध्ययनाध्यापनपरम्परातो बहिर्भूतास्ते प्रायशः लुप्ताः। ये च प्रकाशनहेतोर्न प्रणष्टास्तेऽपीदानीं प्रणाशोन्मुखा एव, अध्ययनाध्यापन-बहिर्भूतत्वात्। तेषां रहस्यं तु इदानीमपि लुप्तप्रायमेव। संख्येया एव संख्यावन्तः-सन्ति संस्कृतज्ञेषु, ये सन्ति पुराणानां अन्येषां चार्थशास्त्रादिविषयाणां वास्तविक-रहस्यविदः। अतः वास्तविकशिक्षाधिगत्यर्थं प्राचीनविलुप्तसंस्कृतसाहित्यसंरक्षणार्थञ्च सामयिककतिपयसंशोधनसहिता सा प्राक्तनी आर्षी पद्धतिरेवोपयुक्तेति ब्रूमः।

यथा पुरोपनयनसंस्कारानन्तरं ब्रह्मचारिण ऋषीणामाश्रमेषु प्रेष्यन्ते स्म। ऋषीणां महाकारा लताकुञ्जफलपुष्पादिसमन्विताः परितः प्राकृतिकरमणीयता—विलसिताः शुद्धजलाशययुता आश्रमा एव तेषां विद्यालयाः। साधारणानि कृत्रिमशोभा-

निरहितानि इष्टजान्येव तेषां गृहाणि आचार्य एव तेषां पितरावभिभावकश्च, सहचारिणो ब्रह्मचारिणो वन्या मृगा एव च तेषां सहचराः, परितः नानाविध-रमणीयदृश्यावृता प्रकामं विस्तृता प्रकृतिरेव च तेषां रङ्गस्थली, उपदेष्ट्री चापि। शिक्षाग्रहणं, गुरुशुश्रूषा प्रकृतिशोभानिरीक्षणं, नैत्यिककर्मसम्पादनमेव च तेषां दैनन्दिनं कर्तव्यम्। न तेषां ग्रन्थाध्ययनकाल एवाध्ययनम्, किन्तु प्रतिक्षणं ते प्रकृतितः आचार्यतः, तद्व्यवहारतः सहचरेभ्यश्च शिक्षा लभन्त एव। इदानीमपि तादृशेषु एकान्तेषु स्थानेषु नगरतोऽतिदूरेषु सर्वविधलौकिकचाकचक्यविरहिता साधारणा सात्त्विका आश्रमा निर्मेयाः। तेषु च भारतीयसाधारणवेषभूषाभूषिताः सदाचारपरा तत्तद्विषयेषु परिनिष्ठिता वानप्रस्था विशिष्टा गृहस्था वा अध्यापका नियोज्याः। एवमाचार्योऽपि वानप्रस्थोऽनेकविषयेषु पारदृश्वा कश्चित् विपश्चित् सदाचारे लोकव्यवहारे च दीक्षित एव नियोज्यः। तत्र च सर्वैः प्राक् त एव शौचाचारादयः अन्ये च विद्याध्ययनोपयोगिनो ब्रह्मचर्यगुरुसेवादयो नियमाः शिक्षणीयाः। येन स्याच्छरीरशुद्धिरन्तःशुद्धिश्च तेषाम्। सम्भवेयुश्च ते सात्त्विकविचारवन्तोऽन्तेवसन्तः, भवेच्चोदयः स्मृतिधारणामेधोहापोहादीनां विद्याग्रहणोप-योगिनां तत्त्वानाम्। गुरुशुश्रूषया, गुरुंप्रति आत्मसमर्पणेन गुरूपसत्त्याचभवेदेव विनयप्राप्तिः, या हि शिक्षायाः प्रधानं प्रयोजनम्। अत एव शिष्या विनेया इति व्यपदिश्यन्ते। तेषां महर्षीणां आचार्याणां सर्वोऽप्याचारव्यवहारश्च भवति शिक्षारूपः। उक्तं च केनापि कविना—

> परिचरितव्याः सन्तो, यद्यपि ददति नो सदुपदेशम्।
> यास्तेषां स्वैरकथा भवन्ति ता एव सदुपदेशाः॥ इति

स्मृत्यादिविषयाणामाचारव्यवहारादीनां च शिक्षा व्रतादिपालनद्वारा रात्रिन्दिवमनु-ष्ठीयमानाचार्यव्यवहारेण च स्वत एव सम्पन्ना स्यात्।

एवं सत्या शिक्षाबहिरङ्गसाधनसम्पत्तौ, याऽन्तरङ्ग—शिक्षा तत्तद्विषयाणां तत्प्रतिपादकानां ग्रन्थानां वा शिक्षा सापि न ग्रन्थाध्यापनद्वारा सम्पाद्या, अपितु तत्तद्विषयाध्यापनद्वारा। ग्रन्थद्वारा दीयमानायां शिक्षायां कतिचिद्ग्रन्थाध्ययने एव समाप्तिमेति भूयान् कालो न चैकस्यापि विषयस्य सम्यग्ज्ञानं सम्पद्यते। विषया-ध्यापने तु सारल्येन तत्तद्विषयसिद्धान्तानां तदीयमार्मिकरहस्यानाञ्च शिक्षायाः स्वल्पे एव काले सम्भवात् परीक्षासु पाठ्यक्रमे च विषया एव सन्निवेश्याः। यथा भूगोलेतिहास-

राजनीतिज्यौतिषदर्शनधर्मशास्त्रवार्ताशास्त्रादयः। विषयज्ञानार्थं तत्प्रतिपादकग्रन्थानामुपयोगो विधेयः। परीक्षास्वपि तत्तद्विषयविषयिण एव प्रश्नाः प्रष्टव्या न तु ग्रन्थविषयकाः। अद्यत्वे तु न नव्यव्याकरणादिविषयाः परीक्षायां निर्धारिताः, किन्तु केचिद् ग्रन्थविशेषा एव। यदि ते ग्रन्थविशेषा विषयप्रतिपादकाः स्युस्तदा नास्ति काऽपि हानिः। किन्तु ते ग्रन्था विषयनिरूपणविरहिताः केवलं वादपराः। यथा व्याकरणे भट्टोजिदीक्षितनागेशप्रभृतीनां ग्रन्थाः। न्याये च गदाधरजगदीशप्रभृतीनां ग्रन्थाः। न शब्देन्दुशेखरमनोरमादीनामध्ययनेन शब्दसाधुत्वज्ञानरूपं व्याकरणप्रयोजनं, न वा व्याप्तिपञ्चलक्षणसामान्यनिरुक्त्यवच्छेदकत्वनिरुक्तिकेवलान्वय्यादीनामध्ययनेन पदार्थज्ञानरूपं कथानियमनिरूपणपरं वा न्यायशास्त्रप्रयोजनं सिद्ध्यति। पाठ्यक्रमे परीक्षासु च तत्तद्विषया निर्धार्याः केवलं तत्तद्विषयप्रतिपादका ग्रन्थाः सहायतार्थं निर्धार्याः। यदि न सन्ति तत्तद्विषयमात्रप्रतिपादकाः सरला ग्रन्थास्तर्हि ते नूतना निर्मेयाः। सन्ति हीदानीं ध्वंसावशेषेऽपि संस्कृतसाहित्ये ते समेऽपि विषयाः समासतो व्यासतो वा तत्र तत्र प्रतिपादिताः। यत उद्धृत्य तत्तद्विषयकाभिनवग्रन्थनिर्माणाय पर्याप्ता सामग्री उपलब्धुं सुशका।

भौगोलिकी ऐतिहासिकी च सामग्री पुराणेषु, भागवते, वेदे, अन्यत्र च रामायणमहाभारतादिषु पर्याप्तमुपलभ्यते। एवं राजनीतिवार्तादीन्यपि शास्त्राणि विस्तरत उपलभ्यन्त एवेति नाभावः कस्यापि विषयस्य। एषा सामग्री पर्याप्ताऽभिनवग्रन्थरचनायै। किञ्च ये तत्तद्विषयका अभिनवा आधुनिका विचारास्तेऽपि संस्कृतसाहित्ये अनुवाद्याः। तथा ज्यौतिषे, आयुर्वेदे, पदार्थविद्यायां, विज्ञाने, वार्तायां च समयानुसारं नवीनानामाविष्काराणां समावेशो विधेयः, तत्प्रायोगिकज्ञानाय च विधेयो नूतनाविष्कृतानां यन्त्राणामुपयोगः। एवं चेत् प्रयत्येत मन्ये पुनरपि स्यात् स्वल्प उद्धारः संस्कृताध्येतॄणामन्यथा तु महती विनष्टिरेव। इति शम्।